लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा १६३२ में डाक्टर ऑफ फिलॉसफी की उपाधि के लिए अनुमोदित प्रबन्ध

अंग्रेजी प्रथम संस्करण : १६३३
अंग्रेजी द्वितीय संस्करण : १६५४
हिन्दी प्रथम संस्करण : १६५७

मूल्य : १२॥)

राधेमोहन अग्रवाल, मैनेजिंग डायरेक्टर, शिवलाल अग्रवाल एण्ड कम्पनी (प्राइवेट) लि०, हास्पिटल रोड, आगरा द्वारा प्रकाशित। जिनेन्द्रकुमार जैन द्वारा जनता प्रेस, प्रतापपुरा, आगरा में मुद्रित।

गुरुवर
प्रोफेसर डाक्टर कानूनगो
के
चरण कमलों में

आमुख

समस्त १८वीं सदी के उत्तर भारतीय इतिहास में अवध के नवाबों का भाग बहुत महत्वशाली रहा, जब दिल्ली की केन्द्रीय सरकार के कार्यों में उनका स्थान प्रायः विवर्तन कीली का था। बाजीराव की सेना में मराठा लुटेरों को, जिनको कोई दूसरा शाही सेनापति सफलता से सामना न कर सकता था, पराजित करने में सग्रादतखाँ की वीरता, करनाल के रण-क्षेत्र में उसका प्रतिस्पर्धा-रहित साहस, पाँच वर्ष से ऊपर तक वज़ीर के रूप में साम्राज्य पर सफ़दर जंग का अधिकार, और अन्त में अहमदशाह दुर्रानी के हित में शुजाउद्दौला का हस्तक्षेप, (जिससे पानीपत के अभियान में सफलता की सम्भावना पूर्णतया मराठों के विरुद्ध हो गई) और उदीयमान् ब्रिटिश भारतीय साम्राज्य को उसकी चुनौती—ये सब भारत के सामान्य इतिहास में नवाबों के समय में अवध के इतिहास के भाग को अविस्मरणीय बना देते हैं। और अन्तिम शासक के साथ इसका महत्व समाप्त नहीं हो जाता। १६ वीं सदी में भी १८१४-१५ के गोरखा युद्ध में अवध भोजन-सामग्री के एकत्रीकरण में, यातायात में, और धन में (दो करोड़ रुपयों का ऋण), ब्रिटिश कार्यवाहियों का सर्वाधिक उपयोगी केन्द्र था। १८०३-४ के मराठा युद्ध में अवध के स्वतन्त्र प्रदेश पर ब्रिटिश निग्रह के कारण वेलेज़ली फ्रेञ्च शिक्षित पूर्बिया पैदल सेना पर, जो सिन्धिया की सेना का दृढ़तम भाग थी, दुर्निवार्य प्रभाव डाल सका।

इस राजवंश के अभ्युदय का समालोचक इतिहास लिखने में डा० आशीर्वादीलाल की पुस्तक प्रथम प्रयास है और इस पुस्तक ने श्रेष्ठता का उच्च स्तर प्राप्त कर लिया है। समस्त प्राप्य उद्गम ग्रन्थों का उपयोग किया गया है और फ़ारसी के इतिहासों और पत्रों के मौलिक स्रोत-स्थानों से उन्होंने पूरा लाभ उठाया है। परिणामस्वरूप यह वैज्ञानिक इतिहास है जिसको भविष्य में बहुत समय तक विद्वान् विशिष्ट प्रमाण ग्रन्थ मानेंगे। इस धीर और सूक्ष्म अनुसन्धान से (जिसका कुछ भाग मेरी देख-रेख में हुआ) डा० आशीर्वादीलाल इस कार्य में समर्थ हुए हैं कि पूर्व लेखकों की बहुत

सी गलतियों को शुद्ध कर दें और सत्य तथ्यों को अकमय आधार पर स्थापित कर दें। अवध के आन्तरिक विषयों का प्रगाढ़ अध्ययन इस पुस्तक का अति मूल्यवान् लक्षण है, क्योंकि यह अस्पृष्ट क्षेत्र है जो विद्यार्थियों को प्रायः अज्ञात है। जनता की दशा पर अध्याय १८ उसी प्रशंसा का पात्र है। बनारस अवध के राजवंश के अधीन था, और जब १७४९ में वहाँ के मराठा ब्राह्मण प्रमुखों (दक्षिणीय कायस्थों) का व्यवसाय-बहिष्कार कर रहे थे, उन्होंने अपने जाति-भाई नवलराय से सहायता की प्रार्थना की। अच्छा होता यदि इस कहानी को यहाँ पर स्थान मिलता।

इस नवयुवक लेखक की जिस बात की मैं सर्वाधिक प्रशंसा करता हूँ, वह उसकी निष्पक्ष वृत्ति है। वह जीवनी-लेखक के सर्वसाधारण दोष अन्धनायक-पूजा से मुक्त है और उसने लखनऊ के पक्षपातीय लेखकों के विरुद्ध, जिन्होंने इतिहास को असत्य बनाने का प्रयत्न किया है, बहुत-सी कठोर बातें कही हैं। 'डाक्टर' की उपाधि प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखी हुई पुस्तकों में यह ग्रन्थ श्रेष्टता की पराकाष्ठा को प्राप्त है और इसका श्रेय समान रूप से, लेखक को जिसने इसको लिखा और लखनऊ विश्वविद्यालय को जिसने लेखक को प्रेरित किया, है।

दार्जिलिंग
१५ जून, १९३३

जदुनाथ सरकार

द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना

इस पुस्तक का प्रथम संस्करण, यद्यपि वह जून १६३३ में प्रकाशित हुआ, लिखित रूप में १६३०-३१ में पूरा तैयार हो चुका था और फ़ारसी, मराठी, हिन्दी, उर्दू, राजस्थानी और इङ्गलिश में समस्त प्राप्य समकालीन उद्भव ग्रन्थों के आधार पर १८वीं सदी के पूर्वार्ध में भारतीय इतिहास के अन्वेषण का प्रतिनिधि रूप से प्रथम प्रयास था जिसमें विनम्रता से यह कहा जा सकता है महान् इतिहासज्ञ सर जदुनाथ सरकार के 'मुग़ल साम्राज्य का पतन' प्रथम जिल्द का प्रथम संस्करण भी शामिल है (जिसकी रूप-रेखा और पाण्डुलिपि इस ग्रन्थ की अपेक्षा पीछे से तैयार हुई, परन्तु जो ६ मास पूर्व अर्थात् दिसम्बर १६३२ में प्रकाशित हुआ)। गत २३ वर्षों में बहुत-सा ऐतिहासिक साहित्य हम को प्राप्य हो गया है। इसमें ये शामिल हैं—

१—नवलराय के चरित से सम्बन्धित कुछ फ़र्मान (आज्ञायें) और सनदें (प्रमाण-पत्र), और फ़ारसी में एक दुष्प्राप्य ग्रन्थ—यादगार बहादुरी।

२—पेशवा दफ़्तर संग्रह के अन्तिम ५ खण्ड (३१-४५); पुरन्दरे दफ़्तर (३ खण्ड) और मराठी में हुल्कर शाहीच्या इतिहासांची साधनें (२ खण्ड) और

३—हिन्दी में समकालीन ग्रन्थ भगवन्तसिंह का रासो, सदानन्द कृत।

दूसरे संस्करण के तैयार करने में इन सब का उपयोग किया गया है और यद्यपि इनसे बहुत नवीन ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ है, उनकी सामग्री से वास्तविक स्थिरीकारक प्रमाण प्राप्त हो गये हैं और प्रथम संस्करण के मेरे कुछ निश्चय दृढ़ हो गये हैं जिनका आधार यथार्थ समकालीन प्रमाण की अनुपस्थिति में अप्रधान ग्रन्थों पर था। उदाहरणार्थ—मेरा तर्क कि अपनी मृत्यु के समय सम्रादतखाँ ६० वर्ष से अधिक आयु का था, विलियम होये के अप्राप्य 'अज्ञात समकालीन' पर निर्भर था, जिसकी परीक्षा के लिए मेरे पास कोई साधन न थे, परन्तु अब यह इस विषय पर सदानन्द

के नियत कथन के कारण निश्चित तथ्य है (भगवन्तसिंह का रासो—देखो, नागरी प्रचारिणी पत्रिका, खण्ड ५, १६८१ वि०, पृ० १२८)। वही लेखक यह निश्चित करता है कि सआदत खाँ कठोर, निःशंक, कूटनीतिज्ञ और पर-राज्यापहारक था। यदि वह एक बार किसी परतन्त्र व अर्धस्वतन्त्र सरदार के समस्त या कुछ प्रदेश पर अपना अधिकार स्थापित कर लेता, तो वह कभी उसको अपने वश के बाहर न जाने देता था।

दिल्ली में मराठा वकील महादेव भट्ट हिंग्ने और सआदत खाँ में कलह जिसके कारण संघर्ष और अन्त में हिंग्ने की मृत्यु हो गई, और नवल-राय के जीवन और कार्यों से सम्बन्धित कुछ नवीन तथ्य—केवल ये ही महत्त्वशाली सकलन इस संस्करण में किये गये हैं। समस्त पुस्तक की सावधानी से आवृत्ति की गई है। कुछ निजी संज्ञाओं का शुद्ध आधुनिक अक्षर-विन्यास—उदाहरणार्थ अउध के स्थान पर अवध, गैंजीज़ के स्थान पर गङ्गा, जमुना के स्थान पर यमुना आदि का प्रयोग किया गया है, और अनुक्रमणिका विस्तृत और अधिक सहायप्रद बनाई गई है। प्रथम संस्करण के पुस्तक के अन्त में दिये हुए फ़ारसी पत्र स्थान की मितव्ययिता के कारण यहाँ नहीं दिये गये हैं।

आगरा कालेज, आगरा।
मई १८, १९५४

ए. एल. श्रीवास्तव

प्रथम संस्करण की प्रस्तावना

लखनऊ विश्वविद्यालय के भारतीय इतिहास विभाग के अध्यक्ष डा० राधाकुमुद मुकर्जी एम० ए०, प्रे० रा० स्का०, पी-एच०डी० ने लगभग पाँच वर्ष पहिले यह सुझाव दिया कि मैं संस्थापक सआदत ख़ाँ से उस वंश के अन्तिम शासक वाजिद अली शाह तक एक पुस्तकावली का निर्माण करूँ। प्रस्तुत पुस्तक प्रस्तावित पुस्तिकावली की प्रथम जिल्द है।

१८वीं सदी के अवध का इतिहास केवल स्थानीय रुचि का विषय नहीं है। भारत के सामान्य इतिहास के विद्यार्थी के लिए यह समान महत्व का है क्योंकि अवध के नवाब उस सदी के हिन्दुस्तान के इतिहास के निर्माताओं में थे। यह पुस्तक, जिसका सम्बन्ध प्रथम दो नवाबों से है, समालोचक अध्ययन है जिसका आधार फ़ारसी, मराठी, उर्दू, हिन्दी और इङ्गलिश में प्राप्य समस्त उद्गम ग्रन्थ हैं, जिनकी खोज में उत्तर भारत के प्रायः समस्त प्रसिद्ध हस्तलिखित पुस्तकागारों में मुझे जाना पड़ा। जुलाई १६२६ में उदयपुर में इस पुस्तक का आरम्भ हुआ, और नवम्बर १६३१ में यह पाण्डुलिपि से संशोधित मुद्रण के लिए प्रस्तुत थी जबकि जनवरी १६३२ में लखनऊ के विश्वविद्यालय ने मुझे अनुमति दी कि डाक्टर आफ फिलौसफ़ी की उपाधि के लिए मैं इसको अपनी पुस्तक के रूप में उपस्थित करूँ। इससे इसके प्रकाशन में क़रीब डेढ़ वर्ष का विलम्ब हो गया।

अन्त में उस अकाम सहायता के लिए जो उन्होंने मुझे सदैव दी है, मैं डा० राधाकुमुद मुकर्जी के प्रति अपनी कृतज्ञता के भावों को व्यक्त करना चाहता हूँ। ढाका विश्वविद्यालय के डा० का०रं० क़ानूनगो एम.ए., पी-एच० डी० के प्रति मैं बहुत ऋणी हूँ। जब मैं लखनऊ विश्वविद्यालय का विद्यार्थी था, उन्होंने मुझे ऐतिहासिक अनुसन्धान के प्रेम से प्रेरित किया और उस समय से अद्य पर्यन्त प्राचीन भारत के सद्गुरु सदृश वह मेरा मार्गदर्शन करते रहे हैं और मुझे सहायता देते रहे हैं। भारतीय इतिहास पर महत्तम प्रमाण-व्यक्ति सर जदुनाथ सरकार मेरे सर्वोत्तम

धन्यवाद के पात्र हैं जिन्होंने अप्रैल १६३० में मेरे दार्जिलिंग में निवास के समय मुझे एक पारिवारिक व्यक्ति-सदृश्य कृपापूर्वक अपने घर में स्थान दिया, अपने समस्त बहुमूल्य पुस्तकालय को मेरे इच्छाधीन कर दिया और अपने दुष्प्राप्य फारसी हस्तलिखित ग्रन्थों का स्वतन्त्र उपयोगाधिकार मुझे दिया। उन्होंने मेरे 'सफ़दर जंग' के करीब ६० पृष्ठों को पढ़ने की भी महती कृपा की है। ये पृष्ठ मैंने अप्रैल १६३१ में उनके पास उनकी सम्मति के लिए भेजे थे। बंगाल पर मराठा आक्रमण के अध्याय में कुछ दिनांकों को उन्होंने शुद्ध किया है। उनके बहुमूल्य सुझावों के लिए, पुस्तक को पढ़ने केलिए और आमुख लिखने के लिए मैं उनका और भी आभारी हूँ।

उदयपुर,
जून १७, १६३३। } आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

विषय-सूची

प्रथम खण्ड

सआदतखाँ बुर्हानुलमुल्क

द्वितीय खण्ड

अबुलमन्सूरखाँ सफ़दर जंग (१७०८—१७५४)

२५. मग्रदन—मग्रदनुस्सग्रादत ।

२६. मन्सूर या मक्तूबात—मन्सूरुलमक्तूबात ।

२७. म० उ०—मग्रासिरुलुमरा ।

२८. मीरात—मीराते ग्रहमदी ।

२९. मिर्ज़ा मुहम्मद—मिर्ज़ा मुहम्मद की तारीख़ या इब्रतनामा ।

३०. पत्रे यदि ग्रादि—इतिहासिक पत्रें यदि वगारा लेख ।

३१. क़ासिम—मुहम्मद क़ासिम लाहौरी का इब्रतनामा ।

३२. राजवाड़े—मराठाची इतिहासाचें—राजवाडे ग्रौर ग्रन्यों । सम्पादित ।

३३. रुस्तमग्रली—रुस्तम ग्रली की तारीखे हिन्दी ।

३४. सरदेसाई—सरदेसाई की मराठी रियासत ।

३५. सवानेहात—सवानेहाते-सलातीन-ग्रवध ।

३६. शिव—शिवदास का शाहनामे मुनव्वर कलाम ।

३७. सियार—सियारुलमुताखरीन ।

३८. सुजान चरित—सूदन का सुजान चरित्र ।

३९. तब्सीर—तब्सीरातुल नाज़िरीन ।

४०. ता० ग्रहमद शाही—तारीख़ ग्रहमद शाही ।

४१. ता० ग्रली—तारीख़ ग्रली ।

४२. ता० म०—तारीखे मुज़फ़्फ़री ।

४३. वारिद—मुहम्मद शफी वेहरानी की मीरातुलवारिदात ।

४४. वलीउल्ला—मुहम्मद वलीउल्ला की तारीख़ फ़र्रुखाबाद ।

प्रथम खण्ड

सआदतखाँ बुर्हानुल्मुल्क

अध्याय १

किशोरावस्था और प्रारम्भिक चरित्र

१६६०-१७२० ई०

सम्रादत खाँ के पूर्वज

चारसौ वर्ष से अधिक हुये कि इराक़ देश के पवित्र नगर नजफ़ में एक मीर शमसुद्दीन नामक एक सदाचारी वृद्ध सैयद रहता था जो अपनी विद्वत्ता और भक्तिमत्ता के लिये समान रूप से प्रसिद्ध और अपने नगर-वासियों के अपवाद रहित सम्मान और सत्कार का पात्र था। ईरान की गद्दी पर उसके समकालीन राजपुरुष शाह इस्माईल सफ़वी ने (१४६६-१५२३ ई०), जो अपनी वीरता और दयालुता के लिये विख्यात था, सैयद को नजफ़ से आमन्त्रित किया और उसको खुरासान के प्रान्त में निशापुर का क़ाज़ी नियुक्त किया। क़ाज़ी स्थायी रूप से निशापुर में बस गया जहाँ पर उसके राजकीय आश्रयदाता ने उसे एक विस्तृत और उर्वरा जागीर भेंट की*।

मीर शमसुद्दीन कुलीन प्रतिभावान् सैयद परिवार का वंशज था। कहा जाता है कि मूसा काज़िम की वंश परम्परा में वह २१ वाँ था जो अली के वंश का ७ वाँ इमाम (आध्यात्मिक गुरु) था†।

मीर के कई पुत्रों में ज्येष्ठ सैयद मुहम्मद आक़र था। उसके दो पुत्र हुए—मीर मुहम्मद अमीन और सैयद मुहम्मद जिनके शाह अब्बास द्वितीय (१६४१-१६६६ ई०) के राजत्व काल में क्रमशः मीर मुहम्मद नसीर और मीर मुहम्मद युसुफ़ उत्पन्न हुये। कहा जाता है कि एक दिन जब शाह शिकार पर था एक सिंह के अकस्मात प्रकट होने से राजकीय परिचरों में कुछ कोलाहल पैदा हो गया और राजा स्वयं घोड़े से गिर गया। ठीक

---

*इमाद ५ और १०; सवानेहात १ बा.।

†इमाद १०।

उसी समय मीर मुहम्मद यूसुफ, जो समीप ही खड़ा हुआ था, साहसपूर्वक आगे बढ़ा और उस क्रुद्ध पशु का अपनी तलवार के एक ही वार से अन्त कर दिया। नवयुवक के कृत्य पर प्रसन्न होकर शाह ने सैयद परिवार को सम्मानित करने का निश्चय किया और अपने वज़ीर एक क़िज़लबाश तुर्क रज़ा कुली बेग को अपनी कन्या का मीर मुहम्मद नसीर से विवाह कर देने को कहा*। नव दम्पति का विवाह संस्कार कुछ समय पश्चात् उपयुक्त शोभा से सम्पन्न हुआ। इस वैवाहिक सम्बन्ध से दो पुत्रियाँ और दो पुत्र हुये—मीर मुहम्मद बाक़र और मीर मुहम्मद अमीन। यही दूसरा व्यक्ति अवध के राजवंश का संस्थापक भावी नवाब सआदत खाँ बुर्हानुल्मुल्क था।

किशोरावस्था और शिक्षा (१६८०–१७०७ ई०)

किसी इतिहासकार—समकालीन या अपरकालीन ने मीर मुहम्मद अमीन की निश्चित जन्म-तिथि या उसके प्रारम्भिक जीवन की किसी घटना को दिनांकगत लेखबद्ध करने की चिन्ता न की। परन्तु हम जानते हैं कि अपनी मृत्यु के समय, जो ६ ज़िल्हिज ११५१ हि०† तदनुसार १६ मार्च १७३६ ई० को हुई, वह लगभग ६० चान्द्र वर्ष की आयु का था‡।

*इमाद ५ कहता है कि मीर मुहम्मद नसीर और मीर मुहम्मद युसुफ की माँ एक थी परन्तु पिता अलग-अलग थे—अर्थात् मीर मुहम्मद अमीन और सैयद मुहम्मद।

†जौहर २६ अ।

‡१७३५ ई० के अन्त के समीप सआदत खाँ सफ़ेद लम्बी दाढ़ी का वृद्ध पुरुष था (सियार II ४६६)। विलियम होवे के 'दिल्ली के संस्मरण' में परिशिष्ट पृ० २ पर एक अज्ञात समकालीन कहता है—"६० वर्ष की आयु पर भी जब सआदत खाँ की दाढ़ी बिल्कुल सफेद होगई थी उसके मस्तिष्क पर एक भी झुर्री न थी," इससे यह पता चलता है कि ६० वर्ष की या उसके आस पास की आयु पर सआदत खाँ का देहान्त हुआ। वह ६० वर्ष से बहुत अधिक न था, निश्चित है। निज़ामुल्मुल्क, जो मुहम्मद शाह के दरबार का सबसे वृद्ध सामन्त था, १७३६ ई० में, जिस वर्ष सआदत खाँ का देहान्त हुआ, केवल ६६ चान्द्र या ६७ सौर्य वर्ष का था। उसका जन्म १०८२ हि० में हुआ था (देखो ल० म० I २७० ब,)। दूसरा

अतः १६६० ई० में या उसके आस-पास ही उसका जन्म हुआ होगा। यह भी उतना ही निश्चित है कि अपने जीवन के प्रारम्भिक वर्ष उसने साहित्य के अध्ययन में लाभ पूर्वक व्यतीत किये। इमादुस्सादत ग्रन्थ का लेखक कहता है—"सर्व शक्तिमान ने उस सम्मान और गौरवान्वित वंश के रत्न का शैशव से युवावस्था की प्राप्ति के समय तक शिक्षा और सुपालन के पालने में उसका लालन पालन किया*। सामन्त होने के कुछ वर्ष पूर्व ही मीर मुहम्मद अमीन ने सैनिक गुण सम्पन्न सुशिक्षित और सुशील सज्जन की ख्याति का आनन्द लब्ध कर लिया था†। व्युत्पत्तियाँ जो उन थोड़े से वर्षों के अन्तर में सम्भवतया अर्जित नहीं हो सकती थीं, जो उसके भारत में आगमन पश्चात् व्यतीत हुआ था। चूँकि उन दिनों किसी उपनाम से तुकबन्दी करने की प्रथा थी, वह भी अमीन के उपनाम से कविता लिखता था‡। उसके जन्मजात और प्रयत्न प्राप्त उच्च सैनिक गुणों की साक्षी में इतिहासकार एक मत हैं§। सुपुष्ट शरीर, विशाल शारीरिक बल और निःशंक वीरता—प्रकृति ने उसको उपहार में दिये थे। भारत में और उसकी अपनी जन्म भूमि में दीर्घकाल तक भोगित विपत्तियों ने उसमें साहस आत्म-विश्वास और धैर्य के गुणों को जाग्रत और विकसित कर दिया था। इन प्राकृतिक उपहारों ने किसी न किसी प्रकार के सैनिक शिक्षण के साथ साथ, जिसके विशेष रूप से हम पूर्णतया अपरिचित हैं—उसको उत्तम योद्धा बना दिया था और उसको उस कार्य सम्पादन के लिये तैयार कर दिया था जिसको भारतीय इतिहास के

वृद्धतर सामन्त खाँ दौराँ ६६ चान्द्र वर्ष का था। सआदत खाँ, जो उन दोनों से छोटा था और खाँ दौराँ के देहान्त पर जिसकी मनोकामना मीर बख्शी के पद को प्राप्त करने की थी, ६० वर्ष से बहुत अधिक आयु का नहीं हो सकता है—यदि इतना हुआ भी। अतः अज्ञात समकालीन का कथन केवल इस बात पर बल नहीं देता है कि सआदत खाँ का मृत्यु-पर्यन्त असाधारण रूप से अच्छा स्वास्थ्य रहा, परन्तु उसकी मृत्यु के समय उसकी अनुमानिक आयु का पता भी देता है जो अक्षरशः शुद्ध नहीं हो सकता है।

*इमाद ५।

†कासिम २१३; हादिक ३६५।

‡इमाद ५।

§सियार II ४७५; कासिम पूर्ववत्।

१६ वीं शती के पूर्वार्ध में करने के लिये वह विधि द्वारा नियुक्त किया गया था।

भारत की ओर प्रस्थान (१७०८–६ ई०)

१७ वीं शती के अन्त के समीप ईरान का सफवी राजवंश लग-भग डेढ़ शती के गौरवशाली राज्य काल के पश्चात्, अन्तिम शाहों के चरित्र में क्रमशः ह्रास के परिणाम स्वरूप अवनत होने लगा था और उस समय अपने विलय के समीप पहुंच गया था। इस वंश के अन्तिम राजा शाह हुसैन (१६६४–१७२२ ई०) के निर्जीव शासन काल में, जिसने प्राचीन सामन्त वर्ग को पूर्णतया विरुद्ध और अपमानित कर दिया था,* सैयद शमसुद्दीन के वंशज, जो राजकीय छत्रछाया में सानन्द जीवन व्यतीत कर रहे थे, साधनहीनता और दरिद्रता की दशा को प्राप्त हो गये। अतः मीर मुहम्मद अमीन के पिता मीर मुहम्मद नसीर ने हिन्दुस्तान में भाग्य परीक्षा का निश्चय किया। उसके इस उद्योग के लिये समय बहुत अनुकूल प्रतीत होता था। वयोवृद्ध शाहंशाह औरंगज़ेब, जिसका जीवन शिया मत के भिन्न विश्वास को और हिन्दू मूर्ति पूजा को समान रूप से नष्ट करने का सतत् प्रयत्न था, अपनी प्रजा के बहुत बड़े भाग के सौभाग्य से अपनी समाधि में विश्राम के लिये प्रवेश कर चुका था। उसका पुत्र और उत्तराधिकारी बहादुरशाह नम्र और अवगुण की सीमा तक दयालु था और शिया मत की ओर अधिक झुकाव रखने के लिये विदित था।‡ वह रसूल का वंशज होने का भी दावा करता था और अपनी अन्य उपाधियों के साथ "सैयद" शब्द को जनसमक्ष धारण करता था।† इन तथ्यों का ज्ञान ईरान से शिया पुरुषार्थियों के धारा प्रवाह को इस देश की ओर उत्साहित करने के लिये पर्याप्त था।‡

अपने ज्येष्ठ पुत्र मीर मुहम्मद बाकर को साथ लेकर मीर मुहम्मद नसीर ने, जो उस समय अपने जीवन की सायं बेला में था, अपने पैतृक

*मैल्कम का फारस का इतिहास-जिल्द I, पृ० ४०० ।

‡ल० म० I, १३० ।

†ल० म० १३०-१३६ ।

‡मिरात II, २६ अ–२७ ब ।

निवास स्थान को १७०७ ई०§ के अन्त के आस पास छोड़ दिया और आजीविका की खोज में भारत के लिये प्रस्थान किया। एक लम्बी और कष्ट साध्य भूमि यात्रा ने उनको अपने देश की दक्षिणी सीमा पर पहुँचा दिया। यहाँ किसी एक बन्दरगाह—सम्भवतया बन्दर अब्बास—पर पिता और पुत्र एक पोत में, जो भारत आ रहा था, चल पड़े और बंगाल पहुँचे। बंगाल से वे बिहार गये और अन्त में पटना नगर में बस गये।* यहाँ पर आदरणीय सैयद को बंगाल और बिहार के योग्य दीवान (मुख्य मंत्री) मुर्शिद कुलीखाँ ने अपने जामाता शुजाखाँ—उर्फ शुजा-उद्दौला† के अनुरोध पर निर्वाह योग्य जीविका प्रदान की। शुजाखाँ के पूर्वज स्वयं ईरान से आये थे और वह असहाय विदेशियों विशेष कर ईरान से आने वालों के मित्र रूप में सर्व विदित था।‡

मीर मुहम्मद अमीन, मीर मुहम्मद नसीर का दूसरा, परन्तु अधिक होनहार पुत्र, जिससे इस इतिहास का मुख्यतया सम्बन्ध है, अपने जन्मस्थान निशापुर ही में रह गया था। वह अपने चाचा और श्वसुर मीर मुहम्मद

---

§इमाद पृ० ५ ठीक कहता है कि वह बहादुर शाह के राज्य काल में आया, परन्तु वह मुहम्मद नसीर के आगमन का वर्ष १११६ हि० देता है, जो असम्भव है। बहादुर शाह की सरकारी ताजपोशी की तिथि वास्तव में १६ जिल्हिज १११६ हि० थी जब उसको अपने पिता की मृत्यु का समाचार मिला था, परन्तु वह ३० मुहर्रम १११६ हि० (२ मई १७०७ ई०) को राजगद्दी पर बैठा और आज़मशाह पर विजय के पश्चात् १ रबी १११६ हि० को उसकी सर्वजनिक राजगद्दी हुई। मुहम्मद नसीर कुछ मास पीछे ही चला होगा।

*इमाद ५

†इमाद ५ गलत कहता है कि बंगाल के राज्यपाल शुजा खाँ ने मीर मुहम्मद नसीर को निर्वाह योग्य आजीविका प्रदान की। शुजाखाँ १७२५ ई० तक राज्य पाल नहीं बन पाया था जब सआदतखाँ स्वयं अवध पर शासन कर रहा था और उसके पिता के देहान्त के बहुत दिन हो चुके थे।

‡सियार II, ४६६। इर्विन—भारत का बाग पृ० ७७ कहता है कि मीर मुहम्मद नसीर बहादुर शाह की नौकरी में था, परन्तु कोई फारसी लेखक इस का प्रमाण नहीं देता है।

यूसुफ के साथ रहता था। शायद यही कारण था कि वह अपने पिता और बड़े भाई के साथ भारत नहीं आया था। इतिहासकार कमालुद्दीन हैदर लिखता है कि एक दिन मीर मुहम्मद अमीन की पत्नी ने उसे चिढ़ाया कि वह उसके पिता के घर का आजीवी है। मीर जिसमें आत्मसम्मान था इसको बुरा मान गया और अपनी पत्नी के घर को क्रोध में छोड़ हिन्दुस्तान के लिये प्रस्थान कर दिया§। यह प्राचीन दन्त कथा कि एक स्त्री का उपालम्भ मीर की जीवन-गति को तुरन्त मोड़ देने में सफल सिद्ध हुआ—सम्भव है कि 'सवाने हात सलातीन अवध' (अवध के नवाबों की कहानी)* के लेखक का आविष्कार हो, जो ग्रन्थ मीर मुहम्मद अमीन के देहान्त के ११० वर्ष पीछे लिखा गया था। गुलामअली, अधिक सुपरिचित और तार्किक इतिहासकार, केवल इतना कहता है कि मीर मुहम्मद अमीन अपने पिता और बड़े भाई से मिलने हि० ११२० (१७०८-९ ई०) में अज़ीमाबाद-पटना आया† परन्तु उसका पिता उस के आगमन के कुछ मास पूर्व ही चल बसा था और अपने नये घर से कुछ दूर गाड़ भी दिया गया था‡ सो दोनों भाई मीर मुहम्मद बाक़र और मीर मुहम्मद अमीन पटना

---

§सवानेहात II।

*भारतीय लोक-गाथा में यही रोमाञ्चक कहानी प्रत्येक दीनावस्थागत महत्वाकाँक्षी नवयुवक के बारे में कही जाती है जो रोज़ी की खोज में घर छोड़ कर बाहर जाता है और अन्त में धन-सत्ता और यश का लाभ करता है।

†इमाद ५; 'सवानेहात ५ब; ख खा II ६०२, आजाद ७६ अ; हादिक ३६५ और म०उ० I ४६३। कुछ कहते हैं कि वह बहादुर शाह के राज्य-काल में आया, और दूसरे कहते हैं कि वह फ़र्रुख़सियर के राज्य के आरम्भ के पहिले भारत में था। सर हेन्री लारेन्स (१९६१ का कलकत्ता-रिव्यू पृ०, ५३६) ग़लत कहता है कि वह १७०५ ई० में आया। वह मीर मुहम्मद अमीन को जो उस समय २८ या २९ वर्ष का था ग़लती से नव-युवक कहता है।

‡सफदर जंग इस क़बर पर प्रार्थना करने गया जब १७४२ ई० में मराठा आक्रान्ताओं के विरुद्ध वह अलीवर्दी खाँ की सहायता करने भेजा गया था।

में कुछ दिन ठहर कर नौकरी की खोज में—सम्भवतया हि० ११२१ (१७०६ ई०) के आरम्भ में दिल्ली की ओर चल पड़े§

मीर मुहम्मद अमीन सरबुलन्द खां की सेवा में। (१७१०–१७१२ ई०)

प्रारम्भ में प्रायः १ वर्ष तक मीर मुहम्मद अमीन ने एक अज्ञात आमिल की सेवा स्वीकार करली और अपना समय दुःख और दरिद्रता

---

§इमाद ५ अलेक्जान्डर डाउ मुहम्मद अमीन के विषय में कहता है—'एक अपने से अधिक बदनाम ईरानी बिसाती का बदनाम पुत्र'। कोई भी ईरानी लेखक कहीं पर भी ऐसा आश्चर्यकारी वर्णन नहीं देता है। मीर के पूर्वजों के विषय में समकालीन या पीछे के ईरानी इतिहासकारों में वास्तव में कोई मतभेद नहीं है। खफीखाँ और अन्य कहते हैं कि वह निशापुर के एक आदरणीय सैयद परिवार का वंशज था। (देखो खं खा II ६०२)। यह कोई नहीं कहता है कि वह या उसका पिता व्यापारी था। बिसाती की तो कोई बात ही नहीं। अवध पर अपने विद्वत्तापूर्ण लेख में सर हेनरी लारेन्स ने (१९९१ का कलकत्ता रिव्यू) डाउ और एलफिस्टन को शुद्ध करने का प्रयत्न किया (भारत का इतिहास—पञ्चम संस्करण पृ० ६६५)। परन्तु स्पष्ट है कि उसकी ओर कोई ध्यान न दिया गया क्योंकि इतिहासकार एच० बेवेरिज ने कुछ नम्र स्वर में वही गलती दुहराई और मीर मुहम्मद अमीन को व्यापारी कहा (भारत का बृहत् इतिहास, जिल्द १ पृ० ३६२)। अतः एच० सी० इर्विन को (भारत का बाग़ पृ० ७७) डाउ के असत्य आविष्कार के द्वेष-पूर्ण प्रयोजन की व्याख्या करनी पड़ी। परन्तु 'अवध का बयान' ने उस खण्डित कल्पित कथा का प्रचार किया जिसने १८५७ के ग़दर के बाद एक पीढ़ी तक अवध के बालकों को पढ़ाया कि सआदतखाँ (मीर मुहम्मद अमीन) एक बिसाती का पुत्र था। फ़ारसी लेखकों के बावजूद अवध के आधुनिक वृद्धपुरुष इसको अब भी ऐतिहासिक तथ्य मानते हैं। इतिहास के विद्यार्थियों ने और गजेटियर के संग्राहकों ने अपने ज्ञान को फ़ारसी ग्रन्थों के प्रकाश में अब भी संशोधित करने की चिन्ता नहीं की है। देखो नवेले का लखनऊ गज़ेटियर (१६०४) पृ० १४६।

में व्यतीत किया। कुछ दिनों पश्चात् जुलाई १७१० ई० के समीप† वह और उसका भाई सरबुलन्द ख़ाँ की सेवा में आगये जो इलाहाबाद के सूबा में कड़ा मानिकपुर का फौजदार था और उनकी तरह ईरानी और सैयद भी था। मीर मुहम्मद अमीन का नया स्वामी, जिसने उसको अपना शिविराध्यक्ष नियुक्त किया, बादशाह बहादुरशाह (२२ मार्च १७०७–२७ फर्वरी १७१२ ई०) के द्वितीय पुत्र अज़ीमुश्शान का कृपा-पात्र था जिसने उसको कड़ा की फौजदारी दी थी। १७ मार्च १७१२ को अज़ीमुश्शान की पराजय और मृत्यु पर सरबुलन्द ख़ाँ साधारण भाग्यानुसारी सैनिक के समान शीघ्रता से पंजाब की ओर बढ़ा कि विजयी जहाँदार शाह (बहादुर शाह का ज्येष्ठ पुत्र) से जा मिले जो साम्राज्य की राजधानी की ओर शनैः शनैः अग्रसर हो रहा था। लाहौर और सरहिन्द के बीच दौराह पर (मई १७१२ ई०) सरबुलन्द ख़ाँ ने जहाँदार शाह से सादर भेंट की और गुजरात की उपराज्यपालता से* पुरस्कृत किया गया क्योंकि अपने भूतपूर्व संरक्षक के पुत्र फर्रुख़सियर की अपेक्षा—जो अपने विजयी चाचा के विरुद्ध सशस्त्र युद्ध में अपना सर्वस्व जुटाने की तैयारी कर रहा था—वह नये बादशाह से आमिला था। जहाँदार शाह के साथ दिल्ली तक जाकर और वहाँ कुछ मास ठहर कर सरबुलन्द ख़ाँ अपने नये पद का

---

†हादिक ३६३; इमाद ५; इमाद का यह विचार गलत है कि सरबुलन्द ख़ाँ इस समय गुजरात का राज्यपाल नियुक्त हुआ। यदि मुहम्मद अमीन ने गुजरात में उसकी नियुक्ति के बाद उसकी नौकरी की होती, मीर को कम से कम ३ वर्ष दरिद्रता में काटने पड़े होते जो स्वयं इमाद के कथन के विरुद्ध है। यदि मीर ने १७१२ के मध्य तक अपना समय दीनावस्था में व्यतीत किया होता तो वह फर्रुख़सियर की सेवा में चला गया होता जिसने ६ मार्च १७१२ को पटना में अपनी ताजपोशी की थी और जो गद्दी के संघर्ष के लिये सेना एकत्रित कर रहा था।

*ख़. ख़ा. I ६६३ के प्रमाण पर इर्विन ल० म० I, १८२, कहता है कि जहाँदार शाह ने सरबुलन्द ख़ाँ को गुजरात का राज्यपाल नियुक्त किया परन्तु गुजरात के विषय पर अधिकतम महत्वशाली ग्रन्थ मीराते अहमदी कहता है कि वह उपराज्यपाल नियुक्त किया गया था। राज्यपाल ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ का पिता असद ख़ां था (देखो मीरात II ५५ अ०)। मीरात का समर्थन मु० उ० III ८०२ करता है।

कार्य भार समालने गुजरात के लिये रवाना हुआ और नवम्बर १७१२ ई० में† अहमदाबाद पहुँचा। कड़ा मानिकपुर से दौराहा और दौराहा से अहमदाबाद तक अपने मालिक के साथ सफर करते हुये मीर मुहम्मद अमीन ने भाग्य के ज्वर भाटा का ध्यान से अध्ययन किया और दिल्ली के निस्तेज सामन्त वर्ग के चरित्र और उनकी दरबारी राजनीति पर मनन किया कि वह अपनी महत्वाकांक्षा का मार्ग निर्धारित कर सके।

सरबुलन्द खाँ की नौकरी में प्रवेश के बाद दो वर्ष से अधिक तक सारी गति-विधि ठीक चलती रही। मीर मुहम्मद अमीन और उसके मालिक में पूर्ण प्रेम रहा। १७१२ ई० के अन्त के समीप दोनों में अकस्मात् विच्छेद हो गया और मीर मुहम्मद अमीन ने आवेश में अपने स्थान से त्याग पत्र दे दिया। कहा जाता है कि यह विच्छेद एक तुच्छ घटना के कारण हुआ। एक दिन जब वह अपने प्रान्त में दौरे पर था सर बुलन्द खाँ का डेरा एक गाँव से कुछ दूरी पर ऊँची-नीची जमीन पर लगा हुआ था। रात में इतने ज़ोर की आँधी आई और इतना मूसलाधार पानी बरसा कि डेरे टूट कर और फट कर अलग-अलग हो गये, सारा सामान प्रायः गीला हो गया और नवाब को स्वयं वह ठण्डी रात एक बैल गाड़ी के नीचे बितानी पड़ी। दूसरे दिन प्रातः ही अपने शिविराध्यक्ष मीर मुहम्मद अमीन को सरबुलन्द खाँ ने बुलाया और उसके कर्तव्योपेक्षा पर उसको कठोर फटकार लगाई। मार इसको बुरा मान गया और अपने स्वामी के आचरण पर क्रोधित होगया जिस पर नवाब ने आवेश में कहा—आप हफ्त हज़ारी का मान रखते हैं। ऐसी छोटी चीज़ का ध्यान रखना आप की शान के नीचे है। ईरान के एक गर्वशील और भावुक पुत्र के लिये यह बहुत अधिक था। अपने स्वामी को शान्त करने की चिन्ता होते हुये भी मीर मुहम्मद अमीन क्रोध में यह प्रत्युत्तर देता हुआ सरबुलन्द खाँ से विदा हो गया—मैं हुजूर के शब्दों को अपने भविष्य के लिये शुभ भविष्यवाणी समझता हूँ। मैं हफ्त हज़ारी का पद प्राप्त करने दिल्ली जा रहा हूँ और उसके बाद आपकी सेवा में प्रस्तुत

---

†मिरात II ५५ अ०।

हुँगा* । नवम्बर १७१२ और १४ मार्च १७१३ ई० के मध्य की यह घटना है जो सरबुलन्द खाँ के अहमदाबाद आगमन और वहाँ से प्रत्यागमन की तारीखें हैं‡ ।

वास्तव में सरबुलन्द खाँ के ये शब्द मीर मुहम्मद अमीन की भावी जीवन गति पर अचेष्ट भविष्यवाणी सिद्ध हुये ।

मीर मुहम्मद अमीन—फर्रुखसियर की सेवा में (१७१३-१७१६ ई०)

बहादुर शाह की मृत्यु के उत्तर काल में दिल्ली में प्रबल राज्य क्रान्ति के समकक्ष महत्वशाली राजनैतिक परिवर्तन हो गये थे । "कामुक मूर्ख" जहाँदार शाह (२६ मार्च १७१२-१० जनवरी १७१३) के अल्पकालीन और गौरवहीन राजत्व काल ने औरंगज़ेब के वंशजों की साम्राज्य पर शासन करने की व्यक्तिगत अयोग्यता प्रकट कर दी थी । अपने को संयम में रखने में असमर्थ वह अपनी मधुर जिह्वा पासवान लाल कुँवरी और उसके नीच जाति के नातेदारों के हाथों खिलौना बन गया था । अतः राजगद्दी पर बैठने के वर्ष भर में ही वह अपने ही भतीजे फ़र्रुखसियर द्वारा पराजित हुआ और गला घोंट कर मार डाला गया । सैयद भ्राताओं—अब्दुल्ला खाँ और हुसैन अली खाँ की सहायता से—जो इति-

*इमाद ५ । मुर्तज़ा हुसैन खाँ इस घटना का विस्तार में कुछ भेद से वर्णन करता है । वह कहता है कि करेज़ी (जो खारी के स्थान पर शायद छापा की अशुद्धि है) नदी के तट पर जहाँ उस समय सुन्दर फूल खिल रहे थे, सायं वेला व्यतीत करने की इच्छा से सरबुलन्द खाँ ने मीर मुहम्मद अमीन को आदेश दिया कि उसका डेरा वहाँ लगा दें । मीर को पड़ोस के गाँव के ज़मीदार ने सूचना दी कि नदी में साँप और बिच्छू बहुत हैं, अतः उसने कुछ दूरी पर डेरे लगाये । जब शाम को सर बुलन्द खाँ आया और देखा कि डेरे बहुत दूर पर लगे हुये हैं, वह अप्रसन्न हो गया और मीर पर इन शब्दों में फटकार लगाई—'उसको एक ग्रामीण भी धोखा दे सकता है और तब भी वह अधिकार पद प्राप्त करने की आकांक्षा रखता है । मीर ने इसको बुरा माना और अपने पद से त्याग पत्र दे दिया । देखो हादिक ३८३ । मुझे इमाद का कथन जो अधिक सम्भव है, अपेक्षित है ।

‡मीरात ५५ अ और ब ।

हास में राज निर्माता के नाम से प्रसिद्ध हैं—फर्रुखसियर १२ जनवरी १७१३ को राजसिंहासनासीन हुआ। सिंहासनारूढ़ होने के एक मास में ही नये बादशाह ने सैयदों को उखाड़ फेंकने के लिये अपना एक दल बना लिया। परिणामस्वरूप हेय षड्यन्त्र और अक्षम्य विश्वासघात राज-दरबार के वायु-मण्डल में व्याप्त हो गये।

इसी समय मीर मुहम्मद अमीन का दिल्ली में आगमन हुआ और वह वालाशाही दल में एक भाग के अधिकार सहित हजारी का पद (मनसब) प्राप्त करने में सफल हुआ*। दरबार में प्रवेश प्राप्त करने में वह मुहम्मद जाफ़र की दयालुता से† सफल हुआ जो पहिले से ही फर्रुख-सियर का मित्र था। तक़र्रुब ख़ाँ 'वालाशाह' उपाधिधारी मुहम्मद जाफ़र वही चालाक ईरानी था जिसने ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ और उसके वृद्ध पिता को धोखे से प्राण दण्ड दिलाया था। उसका प्रचलित नाम गञ्जअली ख़ाँ सम्भवतया इस आधार पर पड़ गया था कि वह फर्रुख़सियर के राजत्व काल के प्रारम्भिक भाग में गञ्ज का करोड़ी अथवा राजधानी के बाज़ारों का अध्यक्ष था‡। मीर मुहम्मद अमीन उस समय गञ्जअली ख़ाँ के नाते-दार के रूप में प्रसिद्ध था§। उसी दयालु संरक्षक ने कुछ समय पीछे उसको नायब करोड़ी की‖ जगह दिलवाई—क्योंकि अपने कार्यालय का मुख्य पुरुष वही था। १ अप्रैल १७१६ को¶ उसकी मृत्यु ने मीर मुहम्मद

*मा. उ. II ६०२; म. उ. I ४८३; सियार II ४८३।

†हादिक ३८४ कहता है हुसैन अली ख़ां के द्वारा जो इतनेथोड़े समय में असम्भव प्रतीत होता है। इमाद पृ. ६ कहता है अब्दुल ख़ाँ के दीवान रतनचन्द के द्वारा। मुझे म. उ. का कथन ठीक जंचता है जिसका तात्पर्य है—मुहम्मद जाफ़र के द्वारा।

‡म उ. ४६३। डा. प. शरण (देखो–मुगल काल की प्रान्तीय सरकारें पृ. २६७) का मत है कि गञ्ज का अर्थ है—खज़ाना वा माल न कि बाजार। परन्तु १७ वीं और १८ वीं शती में इस शब्द का अर्थ बाज़ार ही था।

§क़ासिम २१३।

‖मिर्ज़ा मुहम्मद १०६; ल. म. I २५० ब.।

¶म. उ. I पूर्ववत्।

अमीन को दरबार में एक शक्तिशाली सहायक से वंचित कर दिया। अतः साढ़े तीन वर्ष तक और कोई उच्च पद उसे प्राप्त न हो सका।

मीर मुहम्मद अमीन—हिन्डवान और बयाना का फ़ौजदार (६ अक्तूबर १७१६-१४ अक्तूबर १७२० ई०)

इस बीच शक्तिशाली सैयदों और कायर बादशाह का झगड़ा अपनी चरम सीमा को पहुँच गया था। फर्रुखसियर गद्दी से उतार दिया गया, वह अंधा किया गया, और पाशविक और घृणित ढंग से मार डाला गया (२७ अप्रैल १७१६ ई०)। हिंदुस्तान में प्रति पक्षी रहित राजनिर्माताओं ने एक दूसरे के बाद दो रुग्ण युवकों को राज गद्दी पर बिठाया—रफ़ीउद्दरजात और रफ़ीउद्दौला जिन्होंने नाम मात्र की राज सत्ता का क्रमशः ३ मास ६ दिन और ४ मास १६ दिन भोग किया। इसके बाद सैयदों ने राजगद्दी शाहज़ादा रोशन अख्तर को दी जो जहाँदार शाह का पुत्र और बहादुर शाह प्रथम का पौत्र था और जो आगरा के पास मुहम्मद शाह की उपाधि से २६ सितम्बर १७१६ ई० को राजगद्दी पर बैठा। अब सैयद अपनी शक्ति की पराकाष्ठा को पहुँच गये थे। उनके विपरीत कोई संगठित विरोध नहीं था। उस समय का शान्त वातावरण इङ्गलैन्ड के उस शान्त वातावरण के सदृश था जो रिचर्ड क्रामवेल के सत्तारूढ़ होने पर पाया जाता था और जब एक अंग्रेज ने लिखा था—"एक कुत्ता भी अपनी ज़ुबान नहीं हिलाता है। ऐसी शान्त अवस्था में हम रह रहे हैं"।

मीर मुहम्मद अमीन इस समय अकर्मण्य नहीं था। तक़र्रुब खाँ की मृत्यु के पश्चात् वह (जो अपनी स्वार्थसिद्धि अभीष्ट होने पर अन्तःकरण के सूक्ष्म उद्वेगों से अपीड़ित रहता था) अपने मृत संरक्षक के विरोधियों—सैयदों से जा मिला। सैयद और उनकी तरफ़ शिया होने के कारण उसको उनकी आत्मीय मन्डली में प्रवेश प्राप्त करने में कोई कष्ट न हुआ। वह सैयदों के परिचरों में था जब अब्दुल्ला खाँ रफ़ीउद्दौला के साथ आगरा की ओर आमेर के राजा जयसिंह कछवाहा के विरुद्ध लड़ने जारहा था। उसके सुसंस्कृत स्वभाव, सुन्दर चाल ढाल और जन्म जात सैनिक गुणों ने शीघ्र ही उसके लिये सैयद हुसैन अली खाँ की संरक्षता प्राप्त करली। शाही बख्शी ने, जो स्वामिभक्त और वीर

योद्धाओं का मित्र था, मीर मुहम्मद अमीन के लिये हिन्डवान और ब्याना के फौजदार की जगह प्राप्त करली जो उस समय आगरा प्रान्त का जिला था। ६ अक्टूबर १७१६ को* बादशाह मुहम्मद शाह के राज्यारोहण के कुछ दिन पीछे ही उसकी विधिपूर्वक नियुक्ति भी हो गई।

नवीन नियुक्ति से एक पक्ष भी न व्यतीत हुआ था कि सैयदों ने एक और सम्मान मीर मुहम्मद अमीन को दिया। हुसैन अली खाँ ने उसको शाही हरावल का आज्ञापक (कमाण्डर) नियुक्त किया जो इलाहाबाद के विद्रोही राज्यपाल राजा गिरिधर बहादुर से लड़ने को तैयार था। परन्तु मीर मुहम्मद अमीन से चूक हो गई कि उसने सैयद हुसैन अली से वज़ीर के दीवान रतन चन्द के खिलाफ शिकायत कर दी जो मीर जुमला की सदरुस्सदर के स्थान पर तत्काल की हुई नियुक्ति (२१ सितम्बर १७१६) की शाही आज्ञा निकालने में विलम्ब कर रहा था। अप्रसन्न होकर रतनचन्द ने अब्दुल्ला खाँ के मन पर ऐसा प्रभाव डाला कि उसने मीर मुहम्मद अमीन की नियुक्ति रद्द कर दी और हरावल का कार्य भार हैदर कुली खाँ† को सिपुर्द किया।

शाही शिविर से जो उस समय आगरा के पास था, मीर मुहम्मद अमीन नवम्बर १७१६ के आरम्भ में अपने नये कार्य भार पर गया। हिन्डवान और बयाना जो राजस्थान के भरतपुर और जयपुर ज़िलों में आगरा से ५०-६० मील की दूरी पर दक्षिण पश्चिम में स्थित हैं—उस समय अकबराबाद (आगरा)‡ के सूबे के एक अत्यन्त महत्वशाली ज़िला थे। भरतपुर की बढ़ती हुई जाट शक्ति और महत्वाकांक्षी और षड्यन्त्रकारी जयपुर के राजा के भू-भागों के अति-सामीप्य में स्थित होने के कारण—ये महल उस समय किसी प्रकार सुप्रबन्ध्य नहीं थे। उनके अन्दर ही जोशीले राजपूत और उपद्रवी जाट ज़मींदारों की उपस्थिति ने समस्या को और भी जटिल बना दिया था। स्थिति का सामना करने के लिये मीर मुहम्मद अमीन ने अपनी छोटी सेना को नये सैनिक भरती कर

---

*कमवर II ३१२ अ; इमाद ६, ग़लत तारीख देता है—अर्थात् ११२६ हि०।

†कमवर II ३१३ ब।

‡ये दोनों क़स्बे अब पश्चिम रेल्वे के स्टेशन हैं और आगरा और कोटा के बीच में हैं।

बढाना प्रारम्भ किया। उसने शाही सेना से कुछ सैनिक माँगने के लिये वज़ीर से भी प्रार्थना की। इस अपील पर तुरन्त अनुकूल उत्तर प्राप्त हुआ। शाही सहायक सेना की सहायता से मीर मुहम्मद अमीन ने अपने ज़िले में अनियमता का दमन कर दिया। बाग़ी ज़मींदारों पर—एक एक करके—उसने आक्रमण किये, उनको आज्ञा पालन पर विवश किया और ६ मास के अल्पकाल में* हिन्डवान और बयाना में उसने शासन को पुनः स्थापित कर दिया। इस सफलता से सुयोग्य सैनिक और कुशल पुरुष के रूप में मीर की ख्याति स्थिर हो गई और शाही नौकरी में १५ सदीज़त (डेढ़ हज़ारी) के पद पर† उसको उन्नति दी गई।

मीर मुहम्मद अमीन और सैयद बन्धु

१७१६ ई० में सैयद बन्धु अपने भाग्य के शिखर पर पहुँच गये थे। परन्तु एक वर्ष के अन्दर ही भारत के राजनैतिक क्षितिज पर उनका सदृश्य उनकी जीवन गति समाप्त हो गई। उनके खुले विरोध से क्रुद्ध होकर नर्मदा नदी के दक्षिण में निज़ामुलमुल्क अपनी सत्ता को वहाँ सुदृढ करने के लिये वापस चला गया। असीरगढ़ के अजेय दुर्ग को उसने माल ले लिया, सैयद हुसैन अली खाँ के बख्शी दिलावर अली खाँ को बुर्हानपुर के पास १६ जून १७२० को उसने परास्त किया और मार डाला और राज निर्माताओं के भतीजे सैयद आलम अली खाँ को १० अगस्त १७२० को बालापुर उपनगर के पास उसने बिलकुल कुचल डाला। इन विपत्तियों के समाचार ने (दो मास के अल्प काल में एक दूसरे के पीछे आने वाले) सैयदों को भारी दुख और आश्चर्यमय भय में डुबो दिया। बहुत हिच-किचाहट और लम्बे वाद-विवाद के बाद उन्होंने निश्चय किया कि दक्षिण की निज़ामुलमुल्क के विरुद्ध हुसैन अली खाँ प्रस्थान करें और अब्दुल्ला खाँ राजधानी और साम्राज्य के उत्तरार्ध को सम्भालने दिल्ली वापस जाये। अतः सैयदों और बादशाह ने आगरा के समीपवर्ती देश को ११ सितम्बर को छोड़ा और आगरा से १४ मील दक्षिण पश्चिम स्थित किरौली (करौली) १२ ता० को पहुँचे जहाँ पर दूसरे ही दिन अब्दुल्ला खाँ को नियमित आज्ञा दिल्ली की ओर प्रस्थान करने की दी गई।

*अमवर II ३१५ ब।
†ए. खाँ. II ६०२; सियार II ४३४।

कई मञ्ज़िलों की यात्रा के बाद २६ ज़िकाद ११३२ हि* (१ अक्तूबर १७२०) को मुहम्मद शाह हिन्डवान से ४ मील उत्तर बहादुरपुर के क़स्बे में पहुँचा। इस तारीख के कुछ दिन पूर्व ही मीर मुहम्मद अमीन† शिविर को आ गया था और बादशाह की तथा अपने संरक्षक सैयद हुसैन अली-खाँ को अपना सादर सत्कार भेंट किया था। चूँकि बादशाह उसके ज़िला हिन्डवान और बयाना में से गुज़र रहा था, सामयिक व्यवहार के नियमों के अनुसार उसकी उपस्थिति आवश्यक थी जब तक कि शाही परिचर दल को अपने अधीनस्थ प्रदेश से कुछ मञ्ज़िल आगे वह न पहुँचा दे। उसकी गुप्त महत्वाकाँक्षा से अपरिचित हुसैन अली खाँ ने, जिसको उसकी राज भक्ति में बहुत विश्वास था, उसको शिविर में रहने का और अपने साथ दक्षिण जाने का निर्देश दिया। मार्गगामी अथवा शिविरस्थ मीर ने प्रत्येक दिन अपनी छोटी-सी परन्तु सुसज्जित और सुव्यवस्थित टुकड़ी का प्रदर्शन हुसैन अलीखाँ के दल से कुछ दूर करना रहा और प्रदर्शन का इतना अच्छा प्रबन्ध किया कि मीर बख्शी का ध्यान आकृष्ट कर लिया। ऐसी चतुर चालों के द्वारा उसने अपने संरक्षक में अपने सैनिकों की वीरता और स्वामि भक्ति के प्रति और सैयदों के पक्ष में अपने उत्साह के प्रति विश्वास उत्पन्न कर दिया। उससे प्रसन्न होकर मीर बख्शी ने उसकी सब प्रार्थनाओं को मंजूर कर लिया§ जो धन, अस्त्र-शस्त्र और अपने तथा अपने सैनिकों के हित में जागीरों से सम्बन्ध रखती थीं।

आगरा के पास से मुहम्मद शाह के प्रस्थान की तारीख से शाही शिविर में सैयद हुसैन अलीखाँ के प्राणहरण के उद्देश्य से प्रबल षड्यन्त्र चल रहा था। मुख्य षड्यन्त्रकारी मुग़ल नेता मुहम्मद अमीन खाँ एतिमा-

---

*कमवर II ३२३ ब।

†इर्विन—ला० मु० II ५५—इस समय के विषय में कहता है कि मीर मुहम्मद अमीन 'कुछ सप्ताह पूर्व हिन्डवान और बयाना का फ़ौजदार नियुक्त हुआ था।' वह उस स्थान पर ६ अक्तूबर १७१६ को (२३ जिकाद ११३१ हि०) नियुक्त हुआ था—उस तारीख के कुछ सप्ताह पूर्व नहीं—परन्तु क़रीब एक वर्ष पूर्व।

§क़ासिम २१३।

दुद्दौला* निजामुलमुल्क का चाचा था जिसके आग्रह पर एक से अधिक प्रयत्न सैयदों ने हाल में किये थे। हैदर कुलीखाँ—महत्वाकाँक्षी और कर्तव्यपरायण ईरानी जो हाल में शाही तोपखाना का अध्यक्ष (मीर आतिश) नियुक्त हुआ था, और शाह अब्दुल गफ़ूर जो साधु वेश में पूर्ण धूर्त था और जिसने अपनी घृणित योजना के प्रति राजमाता की सहानुभूति और उसका पक्षपात सफलतापूर्वक वार्तालाप द्वारा प्राप्त कर लिया था—ऐसे कुछ विश्वास पात्र व्यक्ति षड्यन्त्र में भाग लेने के लिये उसने (मुगल नेता ने) सफलतापूर्वक प्राप्त कर लिये थे। उसके सारे उपकारों को भूल कर मीर मुहम्मद अमीन, जो सैयदों के प्रति बहुत कृतज्ञ था, उनके शत्रुओं से जा मिला। उत्साह के बाह्य प्रदर्शन से हुसैन अलीखाँ के सन्देह को स्वप्निल करके उसने अपने संरक्षक के प्राणों के विरुद्ध षड्यन्त्र में गुप्त रुप से आदि से अन्त तक मुख्य भाग लिया।†

कुछ इतिहासकारों ने—प्रत्येक है उसके प्रति क्षमा-याचकों ने उसके स्वामिघातक चरित्र की रक्षा का प्रयत्न एक झूठा बहाना गढ़ के किया है। जबकि कुछ दूसरों को-स्वामिभक्त पक्षपातियों की तरह जो कि वास्तव में वे हैं—इस षड्यन्त्र में उसका भाग लेना सर्वथा अमान्य है। खाने खाँ मुन्तखबउल्लुबाब का लेखक कहता है कि मीर इस षड्यन्त्र में भाग लेने को

---

*निज़ाम और मुहम्मद अमीन खाँ के बीच नाते के सम्बन्ध में इर्विन (ल० म० I, २६४, २६८, २७१ और जिल्द II, १६, ३७) भ्रांति में फँस गया है। कभी वह उनको भतीजे कहता है और कभी चाचा-भतीजे। निज़ाम मुहम्मद अमीन खाँ का भतीजा था जैसाकि निम्न नक्शे से प्रकट होगा:—

आलम शेख
- ख्वाजा आबिद
  - गाज़ीउद्दीनखाँ फ़िरोज़ जंग
    - निज़ामुलमुल्क
- मीर बहाउद्दीन
  - मुहम्मद अमीनखाँ

†क़ासिम २१३; वारिद १६५ अ।
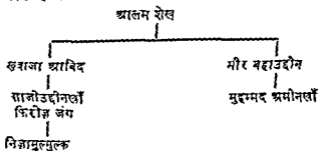
उत्पन्न हुआ क्योंकि वह अस्वामिभक्त सैयद बन्धुओं से बहुत अप्रसन्न था जिन्होंने शहीद बादशाह फर्रुखसियर (शहीद मज़लूम)* का रक्त बहाया था। हरिचरन दास को अपने आश्रयदाता शुजाउद्दौला के नाम से प्रसिद्ध अपनी पुस्तक चहार गुलजारे शुजाई में इस विषय पर पूर्ण मौन धारण करना अकष्ट साध्य प्रतीत हुआ†। लखनऊ का गुलाम अली एक क़दम और आगे जाता है। वह हम से यह मनवाना चाहता है कि मीर मुहम्मद अमीन उस समय शिविर में उपस्थित ही नहीं था और यह कि हुसैन अलीखाँ की हत्या के कुछ दिन पश्चात्‡ वह मुहम्मद शाह की सेवा में पहुँचा। मुग़ल इतिहास के और मीर मुहम्मद अमीन के व्यक्तित्व का अति अल्प ज्ञान ऊपर के सिद्धान्तों के जाल को छिन्न-भिन्न करने के लिये पर्याप्त है जो कि दलगत ईर्षा और पक्षपात द्वारा बुना गया है। चाहे जितना सुसंस्कृत वह क्यों न हो, मीर राजनीति में सदा धोखेबाज था। उसके पास कोई कारण नहीं था कि वह फर्रुखसियर के प्रति सैयद हुसैन अली की अपेक्षा अधिक स्वामिभक्त हो जिसके कारण संसार में उसका अभ्युदय हुआ था। मुहम्मद क़ासिम§ जो ईमानदार इतिहासकार है, जो इस योजना में मीर मुहम्मद के सक्रिय भाग का ब्यौरावार विवरण देता है, और जिसको अधिकांश समकालीन लेखकों का समर्थन प्राप्त है स्वयं उस समय राजकीय शिविर में उपस्थित था। वह गुलाम अली से अधिक विश्वासयोग्य है जिसने अपना वर्णन मीर मुहम्मद अमीन के परनप्ता सआदत अलीखाँ के दरबार में तीन पीढ़ी पीछे लिखा था।

---

*ए खा II ६०२। उसकी नक़ल त० म० (पृ० १७ अ); मादन (जिल्द IV, ७४ अ) अहवाल (पृ० १५५ अ) और अन्यों ने की है।

†हरिचरन ३५१ ब—३५२ अ।

‡इमाद ७। शायद गुलाम अली ने अपने वर्णन का कुछ अंश जौहर पृ० ६१ से उद्धृत किया है। जौहर के लेखक को, जो मीर मुहम्मद अमीन के प्रतिद्वन्दी खाँ दौराँ का कृपा-पात्र था, उसका ज्ञान अवश्य ही बाजार की गपशप से प्राप्त हुआ होगा। इससे प्रकट है कि गुलाम अली के बहुत पहिले स्वार्थी लोगों ने इस असत्य अर्थहीन वर्णन का आविष्कार किया था कि सार्वजनिक निन्दा से मीर की रक्षा की जावे।

§क़ासिम २१३।

अपने महान् आश्रयदाता के प्रति मीर मुहम्मद अमीन के विश्वासघाती चरित्र का वास्तविक कारण क्या था, इस विषय पर कोई समकालीन लेखक कोई प्रकाश नहीं डालता है। परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सांसारिक वैभव और सत्ता के प्रति उसकी असाधारण लिप्सा इस षड्यन्त्र में उसके सम्मिलित होने के लिये उत्तरदायी हैं। चतुर और साहसी जैसा कि वह था, उसको राज्य परिवर्तन में अपने व्यक्तिगत लाभ की सम्भावना प्रत्यक्ष प्रतीत हो गई होगी। तारीखे-हिन्दी का लेखक शाहाबाद का रुस्तम अलीखाँ एक तुच्छ घटना का वर्णन करता है जिसने उसको मुहम्मद अमीन खाँ और उसके साथियों से जा मिलने के लिये अवश्य ही प्रेरित किया होगा। वह लिखता है कि एक दिन जब शाही सेना कूच कर रही थी सैयद हुसैन अलीखाँ के पास समाचार आया कि मीर मुहम्मद अमीन ने एक अत्यन्त दरिद्र किसान से एक भैंस ज़बरदस्ती छीन ली। मीर बख़्शी ने जो किसानों के प्रति सहानुभूति रखता था मीर के नायब को आज्ञा दी कि वह उक्त किसान से अभियोग मुक्ति लावे, अन्यथा उसके मालिक के प्रति उचित कार्यवाही की जावेगी। इस पर भयभीत होकर मीर मुहम्मद अमीन ने उस आदमी की भैंस वापस कर दी, परन्तु उस आदमी ने किसी अभियोग मुक्ति पत्र पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया जब तक मीर मुहम्मद अमीन उसको ५० भैंसों के दाम न देवे।

षड्यन्त्रकारी प्रायः परस्पर मिलते रहते और पूर्ण गुप्त रूप से अपनी योजना के अंगों पर और उसको कार्यान्वित करने की विधि पर बातचीत करते रहते। फतेहपुर सीकरी से शाही पड़ावनियों के चले जाने के बाद एक स्थान पर अँधेरी रात में मीर मुहम्मद अमीन मुहम्मद अमीन खाँ एतिमादुद्दौला के डेरे पर गया। उसके, एतिम दुद्दौला और कमरुद्दीन खाँ के बीच परामर्शों के परिणामस्वरूप यह निश्चय किया गया कि दूसरे ही दिन प्रातःकाल जब सेना कूच कर रही हो मीर बख़्शी के घोड़े को अपनी टुकड़ियों द्वारा अकस्मात् घेर कर और उस गड़बड़ में उसको मार कर अपनी योजना को वे कार्यान्वित करें। परन्तु उस दिन उसके दुर्भाग्य से हुसैन अलीखाँ घोड़े के बजाय हाथी पर सवार हुआ जिससे उनका उस पर यकायक सफल आक्रमण करना असम्भव हो गया। अतः किसी दूसरे दिन के लिए योजना का सम्पादन स्थगित करना पड़ा।*

---

* ल० म० II ५७।

७-८ अक्टूबर की रात को षड्यन्त्रकारियों का सम्मेलन हुआ और उनका अन्तिम निश्चय हुआ कि दूसरे ही दिन योजना कार्यान्वित की जाये। ८ अक्टूबर (६ जिल्हज) को जल्दी ही प्रभात में बादशाह ने महुआ और महक्मपुर के गाँवों से कूच किया और क़रीब ११ बजे जुहन और न्यूँद के गाँवों के बीच में पहुंचा (इस समय जयपुर ज़िले में टोडा-भीम* से क़रीब ४ मील पूर्व और आगरा के दक्षिण पश्चिम में क़रीब ७५ मील पर) जहाँ पर डेरे पहिले ही लग चुके थे यथापूर्व हुसैन अलीखाँ और दूसरे सामन्तों ने बादशाह को शाही डेरे के द्वार तक पहुँचा दिया और तब अपने अपने डेरों को जाने की आज्ञा प्राप्त कर ली। मुहम्मद अमीनखाँ एतिमादुद्दौला, मीर मुहम्मद अमीन और कुछ अन्य षड्यन्त्रकारी† भी उपस्थित थे। अपनी पालकी में बैठकर हुसैन अली खाँ चलने को ही था जबकि एतिमादुद्दौला ने जिसने अपने मुँह में पहिले से ताज़ा खून भर लिया था, उल्टी करने का बहाना किया, और ज़मीन पर लेट गया‡। गुलाब-जल और बेद मुश्क दिये जाने पर रोगी को उसके ही संकेतानुसार हुसैन अली खाँ के कुछ आदमी उठाकर शाही डेरे के पास हैदरकुली खाँ के डेरे में ले गये। इससे मीर बख्शी के अनुचरों की संख्या घट गई§।

हुसैन अलीखाँ की पालकी अब केवल दो या तीन अनुचरों के साथ शाही तम्बू के द्वार से बाहर निकली। ठीक इसी समय हैदर बेग दोग़लन, जिसने अपने को अपनी इच्छा से मीर बख्शी की हत्या करने के लिये प्रस्तुत किया था, एक या दो सैनिकों के साथ, अपने हाथ में एक आवेदन पत्र पकड़े हुये और एतिमादुद्दौला के विरुद्ध शिकायत करता हुआ—प्रकट हुआ। समीप आने की अनुमति पाकर उसने सैयद के हाथ में आवेदन-पत्र पकड़ा दिया, जिसने उसको पढ़ना आरम्भ किया। उसके ध्यान को पढ़ने में डूबा देखकर हैदर बेग ने हुसैन अलीखाँ के पेट में एक ओर

*कमवर II ३२३ ब; टोडाभीम और अन्य जगहों के लिये देखो शीट ५४ ब।

†कासिम २१६। वह क्रोध में एतिमादुद्दौला और उसके साथियों को जल्लाद कहता है।

‡शाकिर १६।

§कासिम २१६-१७।

अपनी कटार से गहरा घाव कर दिया। होश सम्भाल कर घायल सैयद ने अपने हत्यारे की छाती में एक लात दी जिसने उसको पालकी से नीचे घसीट लिया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया। अब हत्यारे और हुसैन अली खाँ के मुख्य अनुचर सैयद नूरुल्ला खाँ में द्वन्द युद्ध हुआ जिसमें दोनों मारे गये। सैयद के शेष अनुचरों के साथ थोड़ा-सा झगड़ा होने के पश्चात् मुग़ल लोग विजय दर्प से सैयद हुसैन अलीखाँ के सिर को मुहम्मद अमीन खाँ एतिमादुद्दौला के पास ले गये जो चिन्तापूर्वक हैदर कुलीखाँ के तम्बू में अपने नीच और भयपूर्ण उद्योग के परिणाम की प्रतीक्षा कर रहा था।*

अपनी योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित होते देखकर मुहम्मद अमीन खाँ एतिमादुद्दौला, हैदर कुली खाँ, क़मरुद्दीन खाँ और मीर मुहम्मद अमीन शाही तम्बुओं को जल्दी से पहुँचे और बादशाह को हुसैन अली खाँ की मृत्यु का समाचार देते हुये और उससे सेना की कमान सम्भालने के लिये बाहर आने की प्रार्थना करते हुये, उन्होंने उसको ध्यानाकर्षक सन्देश भेजे। बादशाह की सुरक्षा पर भयभीता राजमाता ने उसको हरम (अन्तःपुर) में रोक लिया। मुहम्मद अमीन खाँ और दूसरे षड्यन्त्रकारी उत्कण्ठा से बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। प्रत्येक क्षण का विलम्ब भयानक परिणामपूर्ण था। बादशाह पर अधिकार प्राप्त करने के प्रयास में दिवंगत मीर बख़शी के एक चचेरे भाई सैयद ग़ुलाम अली खाँ ने अपने कुछ आदमियों को साथ लेकर अन्तःपुर में प्रवेश कर लिया और किरमिच की दीवारों को काट कर अपना रास्ता बना लिया। परन्तु मुग़लों ने उनको अपने बल से हरा दिया और मीर मुहम्मद अमीन ने उनको पकड़ कर एक शाही डेरे में बन्द कर दिया†। एक दूसरी कठोर टक्कर समीप ही थी। षड्यन्त्रकारियों का यह विश्वास ठीक था कि जो पक्ष बादशाह की शारीरिक उपस्थिति अपनी ओर प्रदर्शित कर सकेगा वही सम्भवतया विजयी होगा। परन्तु उसको बाहर लाने के लिये मर्यादा भंग कर अन्तःपुर में बलपूर्वक प्रवेश के अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय न था। अतः उन सब में साहसी मीर मुहम्मद अमीन अपने सिर

*लै० म० II ५६-६०।

†क़ासिम २२२; वारिद १६५ अ०।

पर शाल डालकर हुसैन अली खाँ के सिर को अपने हाथ में पकड़े हुये महिलाओं के निवास में बलपूर्वक घुस गया। अत्यन्त विनम्र शब्दों में प्रार्थना और क्षमा-याचना करते हुए उसने बादशाह को राजमाता की गोदी से खींच लिया, अपने हाथों में उसको उठा लिया और बलपूर्वक उसको राजद्वार पर बाहर लाया।*

एतिमादुद्दौला ने बादशाह को हाथी पर बैठाया और स्वय उसके पीछे बैठ गया। अत्यावश्यक अपीलों पर भी कोई प्रसिद्ध व उच्च पदावलम्बी व्यक्ति साम्राज्यवादियों में सम्मिलित होता न दिखाई दिया। षड्यन्त्रकारी ही मुहम्मद अमीन खाँ, एतिमादुद्दौला, क़मरुद्दीन खाँ, मीर मुहम्मद अमीन कुल मिलाकर करीब दो सौ व्यक्ति उपस्थित थे।†

बादशाह को ठीक समय पर ही बाहर लाया गया था—क्योंकि उसका परिचारी वर्ग प्राङ्गण के अन्दर ही था जब इस सैयद का एक भतीजा—ग़ैरत खाँ, ४०-५० सैनिकों की छोटी सी रक्षा मण्डली सहित वेग से भूखे शेर के समान आगे बढता हुआ दिखाई दिया। बाहर क्या घटना घटी थी, इससे सैयद दल के प्रायः सभी व्यक्तियों के समान अपरिचित वह प्रातराश के लिये बैठा ही था जब पितृव्य की हत्या का दुःखद समाचार उसको मिला। जो कौर उसने उठाया था उसको बिना खाये और बिना हाथों को धोये वह अपने हाथी पर सवार हो गया और मुहम्मदशाह के शिविर की ओर द्रुतगति से अग्रसर हुआ। राजकीय तोपखाने ने जिसने सैयद के निकट आगमन पर चलना प्रारम्भ कर दिया था, ग़ैरत खाँ के सैनिकों की संख्या जैसे ही वह मार के पेटे में पहुँचे, बहुत कम कर दी। तब भी साहसी युवक आगे बढ़ता ही गया और अपनी बाण-वर्षा से हैदरकुलीखाँ को विवश कर दिया। ठीक इसी समय अपनी स्वाभाविक वीरता से व्यक्तिगत संकट की उपेक्षा करता हुआ मीर मुहम्मद अमीन ने बलपूर्वक हैदरकुलीखाँ के निकट तक अपना रास्ता बना लिया और बढ़ते हुये शत्रु के मार्ग को रोक दिया। वह साहसपूर्वक डट गया और वीरता से लड़ा‡। युद्ध की इस स्थिति पर दोनों खाँ अपने

---

*क़ासिम पूर्ववत; वारिद पूर्ववत; ख-खा. II ६०६; सियार II ४३५; त० म० ७२ ब०।

†क़ासिम २२२; वारिद १६५; ख-खा. II ६०६; सियार II ४३५; त० म० ७२ ब०।

‡क़ासिम २२४; ख० खा०, ६०८; सियार II. ४३५।

सैनिकों सहित साम्राज्यवादियों की सहायता पर पहुँच गया। इसी बीच एक युवक हबशी गुलाम हाजीबशीर ने, जो हैदर कुली खाँ के पीछे बैठा हुआ था, अपनी टोपीदार बन्दूक से ऐसा अचूक निशाना लगाया कि गैरत खाँ तुरन्त निर्जीव होकर भूमि पर गिर गया।*

सैयद हुसैन अली खाँ के कुछ स्वामिभक्त अनुचरों और नातेदारों द्वारा सञ्चालित कुछ थोड़े से अव्यवस्थित आक्रमण आसानी से परास्त कर दिये गये। इन आक्रमणों में से एक का उल्लेखनीय रूप स्वर्गीय मीर बख्शी के बिहिश्तियों और भगियों द्वारा अभिव्यक्त आदर्श स्वामिभक्ति थी जिन्होंने बादशाह के तस्बीह खाना (ध्यानागार) तक चीड़-फाड़ कर अपना मार्ग कर लिया और अपने मृतक स्वामी की हत्या का बदला लेने के लिये हँसते-हँसते अपने प्राणों को न्योछावर कर दिया†।

हुसैन अली खाँ और उसके अनुचरों के डेरों और बहुमूल्य वस्तुओं के अपहरण की आज्ञा बादशाह ने पहिले ही दे दी थी। यह कार्य इतनी पूर्णता से सम्पादित हुआ कि कुछ ही घण्टों में सैयद के विशाल शिविर का लेशमात्र भी न दिखाई पड़ा। दरिद्र अकस्मात् धनाढ्य हो गये, चाकरों को भी—प्रत्येक को—२-३ हजार स्वर्ण मुद्रायें प्राप्त हुईं‡।

मीर मुहम्मद अमीन का सआदत खाँ की उपाधि से सामन्त वर्ग में प्रवेश (६ अक्तूबर १७२० ई०)

विजयी बादशाह ने ६ अक्तूबर १७२० ई० को दीवाने खास में विशाल दरबार समारोह किया और मुहम्मद अमीन और उसके साथियों को पुरस्कार देने का कार्य प्रारम्भ किया। एतिमादुद्दौला को ८ हजार जात और सवार सहित वज़ीर के उच्च पद पर आसीन किया गया, खाँ दौरों शमसुद्दौला को भी वही सैनिक पद दिया गया और वह मुख्य बख्शी भी नियुक्त हुआ। क़मरुद्दीन खाँ—नये वज़ीर का पुत्र—७ हजार जात और सवार के पद सहित द्वितीय बख्शी नियुक्त हुआ। हैदर कुली खाँ को

*वारिद १६५व; कामवर II ३२४ अ; कासिम २२४; ख० खा०, II ६०८।
†पूर्ववत्।
‡वारिद १६५ व।

७ हज़ार ज़ात और ३ हज़ार सवार का उन्नत पद दिया गया। मीर मुहम्मद अमीन को उसके उत्साह और सेवाओं के सम्मान में सआदत ख़ाँ बहादुर की उपाधि दी गई और ५ हज़ार ज़ात और २ हज़ार सवार के उच्च पद पर उसको उन्नति भी दी गई*।

एक वर्ष के अल्प काल में (हिन्डवान और बयाना के फ़ौजदार के पद पर उसकी नियुक्ति के बाद) सआदत ख़ाँ स्वामिद्रोह की चतुर चाल से पञ्च हज़ारी बन गया। मान्य प्रमाण का एक ईरानी इतिहासकार कहता है कि उसको सैयद शिविर की लूट का भी अपना भाग मिला। सैयद ग़ैरत ख़ाँ के डेरों, उपस्करणों और बहुमूल्य वस्तुओं पर भी उसने अधिकार कर लिया जिनको अपने पास रखने की बादशाह ने उसको अनुमति दे दी†।

और भी मान और सम्मान सआदत ख़ाँ की प्रतीक्षा में थे जिसका भाग्यग्रह उदीयमान था।

*कमवर II ३२५ अ; ख़. ख़ा. II ९११; ख़फ़ी ख़ाँ ग़लती से सआदत ख़ाँ के उन्नत पद को ५ हज़ार ज़ात और ५ हज़ार सवार बताता है। वह वैसी ही ग़लती हैदर कुली ख़ाँ की कोटि के बारे में करता है।

†हादिक १३४।

अध्याय २

सआदत खाँ—आगरा का राज्यपाल

(१७२०-१७२२ ई०)

सआदत खाँ की आगरा में नियुक्ति (१५ अक्टूबर १७२० ई०)

सैयद हुसैन अली खाँ की हत्या के पश्चात् दक्षिण पर आक्रमण आवश्यक न रह गया। अतः बादशाह मुहम्मदशाह ने अपने राज दरबार सहित ११ अक्टूबर १७२० ई० को राजधानी की ओर अपनी प्रति यात्रा प्रारम्भ कर दी। मार्ग में थोड़े से प्रसिद्ध व्यक्ति शाही दल में आ मिले और बहुतों को उच्च पद दिए गए (उनकी पद वृद्धि की गई)। सआदत खाँ को विशेषकर अनेक शाही कृपायें प्राप्त हुईं। २३ जिल्हज ११३२ हि० (१५ अक्टूबर १७२०) को शाही दरबार के गोपालपुर पहुँचने पर और वहाँ छावनी डालने के पश्चात् ६ हजार ज़ात और ५ हजार सवार के पद पर उसको पद वृद्धि दी गई और गिर्द (समीपस्थ) अर्थात् उसमें सम्मिलित परगनों की † फौजदारी के साथ उसको अकबराबाद (आगरा) प्रान्त का राज्यपाल नियुक्त किया गया। एक विशेष सम्मान वस्त्र, एक घोड़ा, एक हाथी, एक झण्डा और नगाड़ा भी उसको दिये गए। नये नवाब ने नीलकण्ठ नागर को अपना प्रतिनिधि नामजद किया, उसको अपने नये प्रान्त का प्रशासन सम्हालने आगरा भेज दिया और वह स्वयं सैयद अब्दुल्ला खाँ से लड़ने के लिए बादशाह के साथ रहा।

---

†कमवर II ३२५ ब; कासिम २२६; शियार II ४५१ का विचार गलत है कि वह २२ रबी द्वितीय ११२३ हि० (१६ फर्वरी १७२१) को नियुक्त किया गया था। उस तारीख को उसे आगरा जाने की आज्ञा दी गई थी। इमाद ७ भी गलती करता है। वह कहता है कि अब्दुल्ला खाँ की पराजय के बाद उसकी नियुक्ति आगरा में हुई थी।

१—हसनपुर का युद्ध (१३-१४ नवम्बर १७२० ई०)

कस्बा कामा, नन्द गाँव और बरसाना होकर मुहम्मद शाह हसनपुर के गाँव को पहुँचा और उसके पास छावनी डाल दी। यह गाँव यमुना के दाहिने किनारे पर होडल के उत्तर पश्चिम में ६३ मील की दूरी पर स्थित है। बादशाह अपने भूतपूर्व वज़ीर से होने वाली लड़ाई की तैयारी करने लगा। सराय छठ पर ६ अक्तूबर की अर्धरात्रि में अपने छोटे भाई की दुःखद हत्या का समाचार पाकर सैयद अब्दुल्लाखाँ, जो दिल्ली की ओर शीघ्रता से प्रस्थान कर चुका था, रफी उश्शान के ज्येष्ठ पुत्र राज्याभियोगी सुल्तान इब्राहीम (जिसका सैयद की आज्ञा पर १५ नवम्बर को अभिषेक किया गया था) को साथ लेकर, एक लाख के ऊपर अनुमानित अव्यवस्थित जन समूह का नेतृत्व करता हुआ वापस आया, हसनपुर से ६ मील उत्तर बिलोचपुर गाँव तक बढ़ आया और नदी के समीप ही छावनी डाल दी।

१३ नवम्बर १७२० ई० को प्रातः ही युद्ध आरम्भ हुआ। तोपखाना के अध्यक्ष और शाही हरावल के नेता हैदरकुलीखाँ ने अपनी तोपों को सामने लगाकर सैयद हरावल के नेता नज्मुद्दीन खाँ पर आक्रमण कर दिया, और इस प्रभाव से अग्नि उगलता गया कि पदच्युत वज़ीर की तोपें कुछ अंश में चुप हो गईं। हैदरकुलीखाँ को खाँ दौराँ की सबल सहायता प्राप्त थी जिसके सैनिक ठीक उसके पीछे अपने स्थान पर नियुक्त थे। सआदत खाँ और मुहम्मद खाँ बंगश अपने स्थानों से आगे बढ़े, उन्होंने बाईं ओर अलग रण आरम्भ कर दिया और शत्रु पर भयानक आक्रमण किये।* सामूहिक आक्रमण को सैयद योजना के पूर्णतया असफल होने पर उसके सैनिक अपनी तोपों के पीछे रक्षार्थ अब खड़े हो गए। ये तोपें एक निर्जन गाँव के शीर्ण गृहों और वृक्षों के आश्रय में एक ऊँचे टीले पर लगी हुई थीं। लगभग सायङ्काल तक अब्दुल्ला खाँ के कच्चे स्वार्थी सैनिकों ने अपने स्वामी का साथ छोड़ दिया और रात्रि आने पर दो तीन हज़ार से अधिक सैनिक उसके पास न रह गए थे।

दूसरे दिन प्रातः युद्ध पुनः आरम्भ हुआ। रात भर शाही तोपखाना अपना विनाशक कार्य इतनी अच्छी तरह करता रहा कि पद-

*कमवर II ३२८ ब।

अध्याय २

सआदत खाँ—आगरा का राज्यपाल

(१७२०-१७२२ ई०)

सआदत खाँ की आगरा में नियुक्ति (१५ अक्टूबर १७२० ई०)

सैयद हुसैन अली खाँ की हत्या के पश्चात् दक्षिण पर आक्रमण आवश्यक न रह गया। अतः बादशाह मुहम्मदशाह ने अपने राज दरबार सहित ११ अक्टूबर १७२० ई० को राजधानी की ओर अपनी प्रति यात्रा प्रारम्भ कर दी। मार्ग में थोड़े से प्रसिद्ध व्यक्ति शाही दल में आ मिले और बहुतों को उच्च पद दिए गए (उनकी पद वृद्धि की गई)। सआदत खाँ को विशेषकर अनेक शाही कृपायें प्राप्त हुई। १३ जिल्हज ११३२ हि० (१५ अक्टूबर १७२०) को शाही दरबार के गोपालपुर पहुँचने पर और वहाँ छावनी डालने के पश्चात् ६ हजार ज़ात और ५ हजार सवार के पद पर उसको पद वृद्धि दी गई और गिर्द (समीपस्थ) अर्थात् उसमें सम्मिलित परगनों की [1] फौजदारी के साथ उसको अकबराबाद (आगरा) प्रान्त का राज्यपाल नियुक्त किया गया। एक विशेष सम्मान वस्त्र, एक घोड़ा, एक हाथी, एक झण्डा और नगाड़ा भी उसको दिये गए। नये नवाब ने नीलकण्ठ नागर को अपना प्रतिनिधि नामजद किया, उसको अपने नये प्रान्त का प्रशासन सम्हालने आगरा भेज दिया और वह स्वयं सैयद अब्दुल्ला खाँ से लड़ने के लिए बादशाह के साथ रहा।

---

[1] कमवर II ३२५ ब; कासिम २२६; सियार II ४५१ का विचार गलत है कि वह २२ रबी द्वितीय ११२३ हि० (१९ फर्वरी १७२१) को नियुक्त किया गया था। उस तारीख को उसे आगरा जाने की आज्ञा दी गई थी। इमाद ७ भी गलती करता है। वह कहता है कि अब्दुल्ला खाँ की पराजय के बाद उसकी नियुक्ति आगरा में हुई थी।

१—हसनपुर का युद्ध (१३-१४ नवम्बर १७२० ई०)

कस्बा कामा, नन्द गाँव और बरसाना होकर मुहम्मद शाह हसनपुर के गाँव को पहुँचा और उसके पास छावनी डाल दी। यह गाँव यमुना के दाहिने किनारे पर होडल के उत्तर पश्चिम में ६३ मील की दूरी पर स्थित है। बादशाह अपने भूतपूर्व वज़ीर से होने वाली लड़ाई की तैयारी करने लगा। सराय छुट पर ६ अक्तूबर की अर्धरात्रि में अपने छोटे भाई की दुःखद हत्या का समाचार पाकर सैयद अब्दुल्लाखाँ, जो दिल्ली की ओर शीघ्रता से प्रस्थान कर चुका था, रफी उश्शान के ज्येष्ठ पुत्र राज्याभियोगी सुल्तान इब्राहीम (जिसका सैयद की आज्ञा पर १५ नवम्बर को अभिषेक किया गया था) को साथ लेकर, एक लाख के ऊपर अनुमानित अव्यवस्थित जन समूह का नेतृत्व करता हुआ वापस आया, हसनपुर से ६ मील उत्तर बिलोचपुर गाँव तक बढ़ आया और नदी के समीप ही छावनी डाल दी।

१३ नवम्बर १७२० ई० को प्रातः ही युद्ध आरम्भ हुआ। तोपखाना के अध्यक्ष और शाही हरावल के नेता हैदरकुलीखाँ ने अपनी तोपों को सामने लगाकर सैयद हरावल के नेता नज्मुद्दीन खाँ पर आक्रमण कर दिया, और इस प्रभाव से अग्नि उगलता गया कि पदच्युत वज़ीर की तोपें कुछ अंश में चुप हो गईं। हैदरकुलीखाँ को खाँ दौराँ की सबल सहायता प्राप्त थी जिसके सैनिक ठीक उसके पीछे अपने स्थान पर नियुक्त थे। सआदत खाँ और मुहम्मद खाँ बंगश अपने स्थानों से आगे बढ़े, उन्होंने बाईं ओर अलग रण आरम्भ कर दिया और शत्रु पर भयानक आक्रमण किये।* सामूहिक आक्रमण की सैयद योजना के पूर्णतया असफल होने पर उसके सैनिक अपनी तोपों के पीछे रक्षार्थ अब खड़े हो गए। ये तोपें एक निर्जन गाँव के शीर्ण गृहों और वृक्षों के आश्रय में एक ऊँचे टीले पर लगी हुई थीं। लगभग सायङ्काल तक अब्दुल्ला खाँ के कच्चे स्वार्थी सैनिकों ने अपने स्वामी का साथ छोड़ दिया और रात्रि आने पर दो तीन हज़ार से अधिक सैनिक उसके पास न रह गए थे।

दूसरे दिन प्रातः युद्ध पुनः आरम्भ हुआ। रात भर शाही तोपखाना अपना विनाशक कार्य इतनी अच्छी तरह करता रहा कि पद-

*कमवर II ३२८ ब।

च्युत वज़ीर के अधिकांश सैनिक अँधेरे में भाग गए और जब वह प्रातः रणक्षेत्र में उपस्थित हुआ उसके निकट एक हज़ार के लगभग ही सैनिक थे। वीरोचित साहस से जो उसके वंश की विशेषता थी, उसने बादशाह के पास पहुँचने का भयङ्कर प्रयास किया। परन्तु उसको अपनी निर्भयता के दाम बहुत मँहगे चुकाने पड़े। ख़ाँ दौराँ, सआदत ख़ाँ और मुहम्मद ख़ाँ बंगश के सैनिकों ने प्रत्येक ओर से उसके समीप ही उसको विवश कर दिया, उनको घेर लिया और उसको जीवित ही बन्दी बनाने का प्रयत्न किया। रण की उग्रता में अब्दुल्ला ख़ाँ अपने हाथी से नीचे उतर कर पैदल लड़ने लगा। इस पर उसके सैनिकों ने, जो समयोचित बहाने की प्रतीक्षा कर रहे थे, अत्यन्त अव्यवस्था में रणक्षेत्र छोड़ दिया। अपने शत्रुओं के भारी झुण्ड में अब्दुल्ला ख़ाँ प्रायः अकेला रह गया। दो घावों के होते हुये भी, जो उसके लगे हुये थे, वह वीरता से लड़ता रहा यहाँ तक कि हैदरकुलीख़ाँ बढ़कर उसके पास आ गया और उससे सौजन्यता से कहा कि वह आत्म-समर्पण कर दें। अब्दुल्लाख़ाँ और नज्मुद्दीन अली ख़ाँ (जो अपने भाई की सहायता के लिए आ गया था) एक हाथी पर सवार कर लिए गए और बादशाह के सामने लाए गये। मुहम्मदशाह ने उनको उनके पकड़ने वाले की रखवाली में रख दिया। शाहज़ादा मुहम्मद इब्राहीम भी, जिसने कुछ दिनों के लिए कृत्रिम राजसत्ता का उपभोग किया था, पकड़ लिया गया और दिल्ली के लाल किले में सलीमगढ़ को बन्दी बनाकर भेज दिया गया।*

विजयी बादशाह ने १६ नवम्बर १७२० ई० को दिल्ली की ओर अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ की। कुछ दिनों के मन्दगति प्रयाण से शाही शिविर निजामुद्दीन औलिया की पवित्र समाधि तक पहुँच गया जहाँ पर २० नवम्बर (२० मुहर्रम ११३३ हि०) सआदत ख़ाँ को बहादुर जंग की उपाधि से सम्मानित किया गया और माही मरातिब† का उच्चतम विशेष चिन्ह भी उसके लिये स्वीकृत हुआ। २३ को अजमेरी फाटक से बादशाह ने विशाल जुलूस में अपने प्यारे हाथी रणजीत पर सवार होकर दिल्ली के नगर में अपना विजय प्रवेश किया। दो मास पीछे

*कमवर II ३२८व-३२६अ; वारिद १६६अ-१६७अ ; ल० म० II ८६-६१।

†सियार II ४४१; त० म० ८२ व।

बादशाह ने १४ रबी प्रथम ११३३ हि० (१७ जनवरी १७२१ ई०) को सम्रादत खाँ को शाही अङ्गरक्षकों (खवासों) का दरोगा (नेता) नियुक्त किया और उसको सम्मान वस्त्र और रत्नजटित सरपेच* भी दिया। फरवरी के अन्त के समीप अपने प्रान्त आगरा को जाने की और उसके प्रशासन को स्वयं संभालने की उसको अनुमति मिली†। अहमद कुलीखाँ को अपने प्रतिनिधि के रूप में अपने नए पद पर शाही अङ्गरक्षकाध्यक्ष के स्थान पर कार्य करने के लिए दरबार में छोड़कर सम्रादत खाँ ने सम्भवतया मार्च के आरम्भ में आगरा के लिए प्रस्थान किया।

२—आगरा के जाटों के विरुद्ध सैनिक कार्यवाही

सम्रादत खाँ की प्रथम राज्यपाली अत्यन्त परिश्रामक और कठिन उत्तरदायित्व पूर्ण सिद्ध हुई। उस नाम की वर्तमान कमिश्नरी के अधिकांश जिलों के अतिरिक्त उसके समय में आगरा के प्रान्त में फर्रुखाबाद, इटावा, और जालवन के जिले और भूतपूर्व अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली की राज्यों के सम्पूर्ण प्रदेश और जयपुर‡ और ग्वालियर की भूतपूर्व राज्यों का कुछ भाग भी सम्मिलित था। यद्यपि नाम मात्र के लिए यह मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत था, इस प्रान्त के अधिकांश भाग पर बादशाह और उसके प्रतिनिधि का कोई प्रभावक नियन्त्रण उस समय न रह गया था। भरतपुर और सिन्सानी (भरतपुर के उत्तर-पश्चिम में १६ मील पर) के प्रबल जाटों ने अपनी सत्ता का आगरा के अति-समीप तक निरन्तर प्रसार कर लिया था। आगरा और मथुरा के जिलों के जाट भी भरतपुर के अपने शक्तिशाली जाति भाइयों के साथ गुप्त रूप से मिले हुए सरकार के विरुद्ध खुली बग़ावत कर रहे थे। सम्रादत खाँ के अस्त्र शस्त्रों का भार सर्वप्रथम इन दूसरे जाटों ने ही अनुभव किया। आगरा आने के पश्चात् शीघ्र ही नये राज्यपाल ने उनके विरुद्ध एक प्रबल युद्ध शृङ्खला का सूत्रपात किया। दिल्ली के राजमार्ग पर मथुरा के समीप स्थित उनके छोटे-छोटे मिट्टी के गढ़ों में विद्रोही सरदारों और उनके

*कमवर II ३३२ अ।
†मिरात II ४५१।
‡चहार गुलशन ३०।

जाति द्वारा एकत्रित सैनिकों को ढकेलने में वह सफल हुआ। एक छोटे से घेरे के बाद जिसमें उसके ४०० सिपाही खेत रहे सआदत खाँ ने इन गढ़ों में से चार को अपने वश में कर लिया। उसने अपनी सफलता का वर्णन बादशाह को लिख भेजा जिसके उत्तर में मुबारकबादी (धन्यवाद) का फर्मान, सम्मान वस्त्र और रत्न जटित कटार* भेजे गये। इसके पहिले कि वह अपनी सफलता का और अधिक प्रसार कर सके, सआदत खाँ को दरबार में बुला लिया गया कि वह मारवाड़ के महाराजा अजित सिंह के विरुद्ध, जो उन दिनों दिल्ली में "दामाद कुश" (जामाताघ्न) के नाम से जनसाधारण में प्रसिद्ध था, सैन्य-संचालन कर सके।

सआदत खाँ को अजित सिंह के विरुद्ध प्रयाण का आमन्त्रण (सितम्बर १७२१ ई०)

अपने पैतृक राज्य मारवाड़ का वंश परम्परागत शासक होने के अतिरिक्त अजितसिंह कुछ समय से अजमेर और गुजरात के मुगल प्रान्तों का राज्यपाल भी था (नियुक्ति ५ नवम्बर १७१९ ई०)। अपने दरबारी अभिभावकों सैयद बन्धुओं के पतन पर महाराजा ने मुगल सरकार के प्रति अपना खुला विरोध प्रकट किया। दोनों प्रान्तों में उसने परम्परागत इस्लामी प्रथाओं की अवहेलना कर गोवध का निषेध कर दिया। भारतवर्ष में मुस्लिम पवित्र स्थानों में सर्वाधिक महत्वशाली केन्द्र होने के अतिरिक्त अजमेर राजस्थान की शक्तिशाली राज्यों के केन्द्र में था। मुगलनीति जिसका अनुकरण उसके उत्तराधिकारी अंगरेजी भारत सरकार ने किया यह थी कि वहां पर आकस्मिक आवश्यकता के लिए पर्याप्त सैन्य संख्या और युद्ध सामग्री एकत्रित रखी जाये। राजपूतों को मुगल शक्ति से भयभीत रखने के लिये यथासम्भव सैन्य-शक्ति के साथ प्रायः मुसलमान स्वामिभक्त और सबल व्यक्तियों को यह प्रान्त सौंपा जाता था। बाहरी मुस्लिम जगत से मैत्री सम्बन्ध रखने के लिये और व्यापार के लिये गुजरात मुगल काल में भारत का द्वार था। अतः अजितसिंह ऐसे विरोधी व्यक्ति के अधिकार में इन दो प्रान्तों में से एक भी नहीं रखा जा सकता था। परन्तु जब उसके दमन का प्रश्न दरबार में खुले वाद-विवाद के लिये प्रस्तुत हुआ तीन उच्चतम सामन्तों (निज़ामुल्मुल्क के उस समय दक्षिण में

*सियार II ४५३; त० म० ८५४।

होने पर) खां दौरां, कमरुद्दीन खाँ और हैदरकुलीखाँ में से एक भी अपने नाम को संकट में डालने का इच्छुक न पाया गया जहाँ पर शक्तिशाली औरंगजेब भी असफल रहा था। खां दौरां ने प्रस्ताव किया कि गुजरात महाराजा के अधिकार में रख दिया जाये यदि वह अजमेर पर से अपना स्वत्व छोड़ दे। परन्तु हैदरकुली खाँ इस प्रस्ताव के विरुद्ध था। उसके सुझाव पर आगरा से सआदत खाँ को आमंत्रित किया गया जिसने वीर और चतुर योद्धा के रूप में अपनी ख्याति स्थापित कर ली थी।

शाही आमन्त्रण पाते ही, यशोपार्जन के इच्छुक, सआदत खाँ ने अपने अधिकारियों और सेना को अविलम्ब अपने साथ चलने का आदेश दिया और उसने स्वयं तुरन्त दिल्ली के लिये प्रस्थान किया। मार्ग में उसको आगे बढ़ने से रोकने के लिए चूड़ामण जाट ने असफल प्रयत्न किया। अपनी यात्रा को वलपूर्वक जारी रखता हुआ सआदत खाँ राजधानी को ज़िकाद के अन्त में (मध्य सितम्बर १७२१ ई०) पहुँच गया। परन्तु उसने बड़ी निराशा और पीड़क चिन्ता से देखा कि अधिकांश ईर्षालु सामन्त अभी तक उसको नवोदयी ही समझते थे। वे सेना में भरती होने के लिये और उसके अधीन लड़ने के लिये तैयार न थे। डांवाडोल बादशाह ने भी उसको इतना धन और युद्ध सामग्री न दी जो उसने मांगी थी। अतः सआदत खाँ ने केवल घृणा के कारण इस सैन्य संचालन के भार को अस्वीकृत कर दिया।*

नीलकंठ नागर की पराजय और मृत्यु (२६ सितम्बर १७२१ ई०)

दिल्ली में होने के कारण सआदत खाँ की अनुपस्थित में जाट लोग अपने जङ्गलस्थ गढ़ों से निकल पड़े, शाही प्रदेश पर आ धमके और अपने विरुद्ध उसके पूर्व युद्धों के परिणामों को विनष्ट कर दिया। शाही राजधानी को प्रस्थान समय उसने अपने नायब नीलकण्ठ नागर को निश्चित आदेश दिये थे कि वह जाटों पर उसकी विजय का प्रसार करे और उनके पंजों से यथासम्भव प्रदेश वापस छीन ले। तदनुसार उपराज्यपाल इस उद्देश्य से फतेहपुर सीकरी की ओर बढ़ा कि उस जिले में एक प्रकार की व्यवस्था स्थापित कर दे। पड़ोस में चूड़ामण जाट के पुत्रों के हाथों से कुछ गांवों के छीनने में और बहुत से निवासियों और जानवरों को

*ख० खा० ६३६-३७; सियार II ४५४।

जाटों का दमन करने में सआदत खां के असफल होने पर, अभियान का नेतृत्व १६ अप्रैल, १७२२ को आमेर के राजा जयसिंह कछावा को दिया गया। परन्तु उसने प्रस्थान न किया जब तक वह विधिपूर्वक आगरा का राज्यपाल नियुक्त न कर दिया जावे। अतः सआदत खां से प्रान्त छीन लिया गया और पहली सितम्बर १७२२ ई० (२१ जिकाद, ११३४ हि०) को जयसिंह के सुपुर्द किया गया।*

---

†कमवर II –२३६ अ और ब।

सियार II, ४५६, गलत कहता है कि खां दौरां के षड्यन्त्रों के कारण सआदत खाँ आगरा से हटाया गया।

एच० आर० नेविले द्वारा सम्पादित आगरा जिला गजेटियर पृ० १६०, गलत लिखता है कि सआदत खाँ ने जयसिंह को यह कार्य सौंपा था और वह भरतपुर के जाटों के विरुद्ध असफल रहा। राजा की नियुक्ति मुहम्मद शाह ने की थी और उस (राजा) ने चूड़ामण के पुत्रों के नेतृत्व में लड़ने वाले जाटों पर विनाशक प्रहार किया था।

अध्याय ३

अवध की राज्यपाली

सितम्बर १७२२-मई १७३६,

१—सआदत खाँ की अवध में नियुक्ति-६ सितम्बर १७२२ ई०

अब सआदतखां दिल्ली को रवाना हुआ जहाँ वह १सितम्बर १७२२ई० को पहुँचा। उसी तारीख को उसका उत्तराधिकारी राजा जयसिंह आगरा के राज्यपाल के पद पर विधि पूर्वक आरुढ़ हुआ। जाटों के विरुद्ध उसकी असफलता पर अप्रसन्न होने के कारण बादशाह ने उसको दर्शन देना अस्वीकृत कर दिया और अवध को तुरन्त प्रस्थान करने का उसको आदेश दिया जो प्रान्त गोरखपुर की फ़ौजदारी सहित उसको दिया गया। इन दोनों पदों पर नियुक्ति सूचक रूप में सन्देश वाहक* द्वारा उसको एक सम्मान वस्त्र भेजा गया। अवध के तत्कालीन राज्यपाल राजा गिरिधरबहादुर नागर का ६सितम्बर१७२२ई०(२६ ज़िक़ाद ११३४ हि०) को मालवा में स्थानान्तर होने से ६ सितम्बर १७२२ ई० ही सआदत खां की अवध में †

---

* कमवर II ३३६; इमाद पृ० ७—आगरा से अवध को सआदत खां के स्थानान्तर का एक अति वासना–कल्पित कारण अन्य कारणों के साथ साथ देता है। वह कहता है कि आगरा का राजस्व बहुत कम–केवल १४ लाख रुपये थे और बादशाह सआदत खां पर बहुत कृपा रखता था–अतः उसने उसको अवध का अधिक धनी प्रान्त दिया। इससे बढ़कर स्पष्ट असत्य नहीं हो सकता है। आगरा का राजस्व अवध के राजस्व के दुगने से अधिक था—देखो चहार गुलशन ३०-३४।

† सआदत खां की अवध में नियुक्ति की भिन्न-भिन्न ग़लत तारीखें दी जाती हैं। हरि चरण की स्मरण शक्ति ने उसको बहुत बड़ा धोखा दिया। वह ११४१ हि० देता है और कहता है कि अवध में नवाब का पूर्वाधिकारी हृदय राम था-देखो पृ० ३५६ अ०। वी० ए० स्मिथ आक्सफोर्ड

नियुक्ति का वास्तविक दिनाङ्क मानना चाहिए।

२—१७२२ ई० में अवध

बाबर के समय से अवध मुगल साम्राज्य का एक मूलांग था। इसकी भौगोलिक स्थिति, इसकी समशीतोष्ण जलवायु और उर्वरा भूमि मुग़ल भारत के प्रान्तों में इसको विशेष स्थान दिलाये हुये थी। इसकी विविध उपजें बादशाहों के कोठारों को भरा पूरा रखती थीं तो इसकी परिश्रमी और सैनिक जनता राजकीय सेना के† दलों को वृद्धि देती थी। पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य का वास्तव में १७२२ तक यह एक प्रान्त रह गया था जब नए राज्यपाल सआदत खाँ ने वास्तव में—यद्यपि नाम से नहीं—एक स्वतन्त्र मुस्लिम राजवंश की नींव डाली जिसके शासन में इसकी राजधानी लखनऊ‡ समृद्धि को प्राप्त होकर धन, वैभव और संस्कृति में दिल्ली का प्रतिद्वन्दी बन गया।

आज का अवध जिसमें आधुनिक उत्तर प्रदेश के ४६ ज़िलों में से १२ ज़िले सम्मिलित हैं, १७२२ ई० के अवध से बहुत भिन्न है। इस प्रान्त की सीमाओं और क्षेत्रफल में अकबर से मुहम्मदशाह के समय तक कोई

हिस्ट्री आव् इण्डिया पृ० ४५६ पर १७२४ ई० देता है। पी० कानूनगो 'फ़ैज़ाबाद तहसील का ऐतिहासिक वस्तुमात्र' पृ० २६–१७३२ देता है। इर्विन-भारत का भाग पृ० ७८–१७२० देता है। यह शायद इमाद का असमालोचित स्वीकरण है जो ११३२ हि० (१७२० ई०) देता है। नेविले बस्ती का ज़िला गज़ेटियर पृ० १५२ (१६०७) और गोरखपुर गज़ेटियर पृ० १८२-१७२१ ई० देता है। अन्य गज़ेटियर ऐसी ही गलत तारीखें देते हैं। हन्टर का इम्पीरियल गज़ेटियर जिल्द VIII पृ० ५०५-१७३२ई० देता है।

†अवध के लोगों के बारे में १८५५ में सरहेनरी लारेन्स कहता है—भारत में सर्वोत्तम अनुशासित पैदल सिपाही अवध के होते हैं। बंगाल की देशी पैदल सेना का तीन-चौथाई भाग अवध से आया था। (१८८१ का कलकत्ता रिव्यू पृ० ६२६)

‡आदिम राजधानी फ़ैज़ाबाद को सआदत खाँ के पड़नाती (पनाती) आसफ़ुद्दौला ने छोड़ दिया। १८१६ में अवध के सातवें शासक गाज़ीउद्दीन हैदर ने लार्डहेस्टिंग्स के भड़काने पर शाह की उपाधि धारण कर ली और साम्राज्य से नाम में भी अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी।

परिवर्तन नहीं हुआ था। सआदत खां और सफदर जंग का एक समकालीन राय छत्रमन अपने ग्रन्थ १७५६ई० में समाप्त चहार गुलशन में अवध की वही सीमायें, सरकारों (जिलों) की वहसंख्या और वही नामऔर उसके मुख्य नगरों के भी वही नाम देता है जो करीब २ सौ वर्ष पूर्व अबुल्फज़ल ने अपने वृहत् ग्रन्थ आईने अकबरी में दिए हैं। वर्तमान १२ ज़िलों के अतिरिक्त उस समय इसमें गोरखपुर की सरकार भी सम्मिलित थी जो मोटे तौर से वर्तमान गोरखपुर और बस्ती के जिलों के बराबर थी। इसके विपरीत वर्तमान अवध के कुछ भाग मध्यकालीन अवध के अंगन थे। वर्तमान फ़ैज़ाबाद जिले का पूर्वार्ध, सुल्तानपुर के पूर्वी और दक्षिणी भाग, और रायबरेली जिले का दक्षिणी भाग उस समय इलाहाबाद के प्रान्त में सम्मिलित थे।

मुहम्मदशाह और अकबर के समय में भी इसकी उत्तरी सीमा हिमालय का पर्वत था, पूर्वी सीमा बिहार, दक्षिणी इलाहाबाद के सूबे में माणिकपुर की सरकार और पश्चिमी कन्नौज की सरकार। गोरखपुर सरकार के पूर्वी छोर से कन्नौज तक लम्बाई १३५ कोस (करीब २७० मील) थी, और उत्तरी पहाड़ों से माणिकपुर की सरकार के उत्तरी अन्त तक चौड़ाई ११५ कोस (करीब २३० मील) थी। असमान ढङ्ग से प्रान्त पांच जिलों व सरकारों में विभाजित था-हवेली अवध(फ़ैज़ाबाद), गोरखपुर, बहराइच, लखनऊ और खैराबाद, और इसका क्षेत्रफल १ करोड़ १ लाख इकत्तर हजार अस्सी बीघे का था*।

सआदतखां ने अवध को अर्धस्वतन्त्र मध्यकालीन सामन्तों का देश पाया जो शक्ति और राजनैतिक महत्व की दृष्टि से भिन्न-भिन्न श्रेणियों के थे। इनमें अत्यन्त महत्वशाली सामन्त थे—वर्तमान रायबरेली ज़िला में तिलोई का राजा मोहनसिंह, नस्नी में बंसी, रसूलपुर और विनायकपुर के राजे, प्रतापगढ़ का राजा छत्रधारी सिंह सोमवंशी, बैसवाड़ा का राजा चेतराम बैस, गोंडा का राजा दत्तसिंह और गोंडा जिला में बलरामपुर का राजा नारायणसिंह। इनके अतिरिक्त कुछ कम महत्व के बहुत से सरदार थे और बहुत बड़ी संख्या में छोटे-छोटे ज़मींदार भी थे जिन सब ने औरङ्गजेब के उत्तराधिकारियों के निर्बल शासन काल में वास्तविक

*एच० एस० जरेट द्वारा अनुदित आईने अकबरी और सर ज० सरकार जिल्द II (तृतीय संस्करण) पृ० १८१—१८५।

स्वाधीनता प्राप्त कर ली थी। इनमें से प्रत्येक सरदार के पास घने जंगल के चक्र से घिरी हुई किसी अगम्य गांव में ईंटों या मिट्टी की सुदृढ़ गढ़ी थी†। प्रत्येक के पास अपने आर्थिक साधनों से सीमित एक निजी सेना थी और उसका अपना ही नागरिक अनुशासन दल। न्याय और निष्पादक अधिकार सरदार के हाथों में केन्द्रित थे यद्यपि छोटे मोटे झगड़े अब भी जातीय व गाँव पंचायतों द्वारा निपटा दिये जाते थे। उसका अपनी प्रजा पर निरंकुश यद्यपि लाभप्रद अधिकार अपने चारों ओर अनेक प्रतिद्वन्दियों की उपस्थिति से ही नियन्त्रित होता था और इस तथ्य से भी कि अपने सीमित साधनों के कारण उसको अपनी प्रजा की सशस्त्र सहायता की सरकार द्वारा हस्तक्षेप पर ‡ संकटात्मक परिस्थितियों में आवश्यकता पड़ती थी क्योंकि कभी-कभी ऐसा भी होता था कि एक सरदार प्रान्तीय सरकार से दूसरे सरदार के गाँवों की सनद प्राप्त कर लेता था जिससे उनमें परस्पर असमाध्य झगड़े होते रहते थे।

लखनऊ का हस्तगत करना (१७२२ ई०)

लखनऊ का नगर, जो उस समय फैज़ाबाद (तब अवध नगरी के नाम से विख्यात) का अवध की राजधानी होने के लिये प्रतिवादी था, जैसा कि आजकल आधुनिक राज्य उत्तर प्रदेश की राजधानी के लिये वह इलाहाबाद का है, प्रसिद्ध शेख़ज़ादों के हाथों में था। कहा जाता है कि उनके पूर्वज इस प्रान्त के सर्व प्रथम मुस्लिम विजेता थे*। परन्तु शताब्दियों के राजनैतिक महत्व के बाद वे दरिद्रता और तुच्छता को प्राप्त हो गये थे। अकबर के शासन काल में उनमें से एक शेख अब्दुल रहीम नामी व्यक्ति को, जो बिजनौर का एक साधारण निवासी था, लखनऊ और उसके आस पास के गाँव जागीर में मिले। वह नगर में आकर बस गया और वहाँ अपनी पाँच स्त्रियों के लिये पञ्चमहला के नाम से प्रसिद्ध पाञ्च महल बनाये और गोमती के किनारे पर § एक अपने लिये। उस समय से उसके वंशजों—शेखज़ादों—का अधिकार लखनऊ और पास के प्रदेश पर रहा जब तक कि सआदतख़ां की नियुक्ति प्रान्त की

---

†मनसूर पत्र न० ६ और २४; तब्सीरतुलनाज़िरीन २१८ब—२१६अ

‡बटलर का दक्षिण अवध के स्थान और झगड़े-१८३६; अवध गजेटियर जिल्द I और II; उन्नाव का वृत्तविवरण।

*हन्टर का इम्पीरियल गजेटियर जिल्द VIII पृष्ठ ५०५।

§ सवानेहात (उर्दू) पृ० ३४।

राज्यशाली पर न हुई। उनकी जाति से बड़े-बड़े राज्यकर्मचारी चुने जाते थे। राज्यपाल के अधिकार का वे सदैव विरोध करते थे; यदि वह प्रदेशी होता, उसके प्रशासन में रोड़े अटकाते और उसके चारों ओर कठिनाइयाँ उपस्थित करने का प्रत्येक प्रयत्न करते।

उसकी नियुक्ति के कुछ दिनों बाद तक की सग्रादतखां की प्रगतियों का लगभग ठीक अनुमान एक दन्तकथा से मिलता है जब वह अपनी अनर्गलों से शुद्ध कर दी जाये और जो कमालुद्दीन हैदर की 'सवनेहात सलातीन अवध' में मुरक्षित है। उसने अपने मुग़ल सैनिकों को इकट्ठा किया, नये सैनिक भरती किए और अपना रणस्थली तोपखाना खींचने के लिए बैल मोल लिए। फिर वह अवध के लिए रवाना हुआ और बरेली से होकर फर्रुखाबाद पहुँचा जहां वह मुहम्मदखां बंगश का अतिथि हुआ। इस पठान सरदार ने उसको लखनऊ के शेखज़ादों की शक्ति, धन और गर्व का अनुमान दिया, और लखनऊ में प्रवेश के पहिले उनके शत्रुओं—काकोरी के शेखों से मैत्री करने की सलाह दी। सग्रादतखां ने फ़र्रुखाबाद छोड़कर वर्षा ऋतु में गङ्गा को पार किया। कहा जाता है कि जब उसकी नाव गङ्गा के बीच में पहुँची, नवाब की गोद में एक मछली उछल कर आ गई। इसको अच्छा शगुन समझकर उसने मछली को सावधानी से बहुमूल्य वस्तु की तरह रख लिया और उसका ढांचा उसके राजवंश के पतन तक उसके वंशजों के पास रहा। लखनऊ से कुछ मील पश्चिम में काकोरी पहुँचकर सग्रादतखां ने वहां के शेखों से मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया, जिन्होंने उसको अपना सहयोग भेंट किया और उसको लखनऊ की शक्ति, उसकी निर्बलता, उसकी रक्षा पंक्ति और प्रदेश की प्रकृति से परिचित किया। लखनऊ की ओर कूच को उसने पुनः आरम्भ किया, और उससे कुछ दूर छावनी डाली। शेखज़ादों को सतर्क न पाकर उसने रात्रि में नगर से आधा मील दूर उत्तर-पश्चिम में गऊ घाट पर गोमती को पार किया और कुछ सेना और तोपें लेकर चुपके से नगर में घुस गया। अपने मुख्य द्वार—शेखान दर्वाज़ा—से शेखज़ादों ने एक नंगी तलवार शेखजादों ने लटका रखी थी जिसको सब नवागन्तुकों को उसके स्वामियों के गर्वित आधिपत्य के स्वीकार रूप में झुकना पड़ता था। सग्रादत खां ने तलवार गिरा दी औ घबड़ाए हुए शेखज़ादों पर अकस्मात् आक्रमण कर दिया जिन्होंने अकबरी दर्वाज़ा पर कुछ निर्बल प्रतिरोध किया। परन्तु वे हार गए और उसका आधिपत्य

स्वीकार करने और राज्यपाल के लिए अपना पंच महला खाली करने पर वे विवश हो गये। लखनऊ का नगर और ज़िला इस प्रकार सरलता से बिना बहुत लड़ाई के उसके अधिकार में आ गये†।

इस सफलता का समाचार अवध की सारी लम्बाई-चौड़ाई में फैल गया और सरदारों के अनेक आधिपत्य स्वीकरण उसको प्राप्त हुए। राजनीतिज्ञ की बुद्धिमत्ता और चातुर्य से सआदतखां ने इन स्वीकरणों को स्वीकृत कर लिया और उदासीन सरदारों को भी उनकी रियासतों पर स्थिरित कर दिया और कर का इकट्ठा करना उनके सुपुर्द कर दिया इस शर्त पर कि वे अपनी ओर से उचित कर ठीक समय पर देते रहें। और भी बहुत से सरदारों ने अपनी आधीनस्थता स्वीकृत कर ली और नए राज्यपाल का अधिकार प्रान्त के अधिकांश भागों में शान्ति से मान लिया गया।

४ तिलोई मोहनसिंह की पराजय और मृत्यु।

परन्तु बहुत सी साहसी आत्मायें भी थीं जो आसानी से अधीनता स्वीकार करने को तैयार न थीं। इनमें अत्यन्त साहसी रायबरेली के उत्तर पूर्व में १८ मील पर तोलाई में राजा मोहनसिंह कन्हपुरिया था*। अवध की अधिकांश राजपूत जातियों के असदृश्य कन्हपुरिया राजस्थान के किसी सरदार से अपना वंशजत्व नहीं मानते हैं। उनका मुख्य मूल पुरुष कान्ह था जो कहा जाता है रायबरेली ज़िले में सलोन के दक्षिण पूर्व कुछ मील पर स्थित कान्हपुर का छोटा सा ज़मीनदार था। कान्ह के दो पुत्रों सहस और रहस ने भर नेताओं तिलोकी और बिलोकी पर जो समीपवर्ती प्रदेश पर राज्य करते थे—आक्रमण किया और उनको भगा दिया और प्रतापगढ़ में कैथुआ और रायबरेली में तिलोई के राजवंशों की क्रमशः स्थापना की। रहस का सीधा वंशज मोहनसिंह था। अत्यन्त बलिष्ठ और चतुर राजकुमार ने अपने पिता गोपालसिंह की, जो अपने छोटे पुत्र निहालसिंह के उत्तराधिकार के पक्ष में था, षड्यन्त्र द्वारा हत्या करा दी और बलपूर्वक तिलोई की गद्दी अपने लिए हस्तगत कर ली। अपने

†सवानेहात ७अ—८अ।

*तोलोई एक गाँव है और रायबरेली ज़िले की महाराज गंज तहसील में स्थानीय राजा का निवास स्थान है। रायबरेली के उत्तर-पूर्व में क़रीब १८ मील पर यह स्थित है। शीट ६३ फ०।

सैनिकों की कल्पना को उत्तेजित करने के लिए और उनकी सहायता को जीतने के लिए माणिकपुर के उत्तर-पश्चिम में करीब १२ मील पर स्थित मुस्तफाबाद के सैयदों को उसने लूट लिया। "तब वह (राजामोहनसिंह), बैसी जाति के नेता और खजुरगाँ रियासत के शासक राणा अमरसिंह के अधीनस्थ बैस्यों की ओर मुड़ा, परन्तु दोनों सेनायें इतनी समशक्त थीं कि समझौता हो गया और दोनों जातियों के बीच में एक सीमारेखा निर्धारित कर दी गई। उसका दूसरा महत्वशाली प्रयास जगदीशपुर* के भोले मुल्तानों पर अपनी सत्ता की स्थापना थी और तब उसने इन्हौना और मुवेहा† से कूच कर............। एक नवीन आक्रमण में वह बछरावाँ के नवहस्ता बैस्यों के विरुद्ध‡ जा पहुँचा परन्तु वहाँ पर कुर्री-सिदौली के प्रसिद्ध कुजात चेतराम के रूप में उसको अपना समयोग्य व्यक्ति मिला और वहाँ से वापस होकर फ़ैज़ाबाद ज़िला के दक्षिण पश्चिम में उसने नवीन विजयें प्राप्त कीं ऽ"।

अपनी राजधानी फ़ैज़ाबाद के अति समीप इन व्यक्तिगत युद्धों का सहन सग्रादतखाँ नहीं कर सकता था। फ़ैज़ाबाद सरकार के उन परगनों को जो उसने छीन लिए थे, छोड़ने पर मोहनसिंह द्वारा इन्कार होने पर, सग्रादतखाँ अपनी स्वाभाविक शक्ति से कान्हपुरिया जाति की शक्ति को कुचल देने के लिए निकल पड़ा। राजा भी रणक्षेत्र में एक सबल सेना लाया जिसकी संख्या इमादुस्सग्रादत के लेखक ने 'पचास हज़ार राजपूतों' के अविश्वास्य अङ्क तक अतिशयोक्ति द्वारा पहुँचा दी है। युद्ध में जो इतना ही भयानक सिद्ध हुआ जितना वह समकक्ष था, तिलोई का वीर सरदार अपनी अन्तिम श्वास तक लड़ता हुआ मरा। उसकी स्वामीहीन सेना अव्यवस्थित और भयग्रस्त होकर रणक्षेत्र से भाग

---

*जगदीशपुर तिलोई के उत्तर-पश्चिम में ११ मील पर है। यह सुलतानपुर ज़िले है। शीट ६३ फ़०।

†इन्हौना तिलोई के ६ मील उत्तर में है, और मुवेहा इन्हौना के ६ मील उत्तर पश्चिम में है। शीट ६३ फ़०।

‡बछरावाँ रायबरेली के उत्तर पश्चिम में १६ मील पर है। लखनऊ और रायबरेली के बीच में उत्तर-रेल्वे पर यह रेल्वे स्टेशन है।

ऽनेविले का रायबरेली का डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (१९०५) पृ० ८२—८३।

निकली। सम्भवतया १७२३ ई० के आरम्भ में § यह घटना घटी।

सआदतखाँ ने इन्दौना और दूसरे परगनों पर अधिकार कर लिया जिनको मोहनसिंह ने बलात् हस्तगत कर लिया था। परन्तु चूँकि तिलोई रियासत का अधिकांश भाग इलाहाबाद के सूबा में स्थित था, उस पर अधिकार नहीं किया जा सकता था। और मोहनसिंह के निकटतम उत्तराधिकारी ने शीघ्रता से अपनी शक्ति और प्रदेश पुनः प्राप्त कर लिये। अवध के सबसे वीर और साधन-सम्पन्न सरदार पर इस विजय से सआदत खाँ का गौरव बढ़ा और विद्रोही ज़मीनदारों के हृदयों में भय व्याप्त हो गया। उनमें से अनेकों ने तुरन्त नवाब का आधिपत्य स्वीकार कर लिया। राज्यपाल ने अब नया माल बन्दोबस्त कराया जिससे उसके प्रान्त के साधन बहुत बढ़ गये। इन सेवाओं के कारण बादशाह मुहम्मदशाह ने उसको बुर्हानुल्मुल्क की उपाधि से पुरस्कृत किया †।

मुज़फ्फर खाँ से सआदत खाँ का झगड़ा—(सितम्बर-अक्टूबर १७२३ई०)

अपने नायब को प्रान्त के प्रशासन के लिये छोड़कर, दरबार की राजनैतिक चालों में मुख्य भाग लेने की इच्छा से सआदत खाँ दिल्ली को वापस आ गया। चलचित्र और नवयुवक बादशाह मुहम्मदशाह के, जो दिल्ली के नागरिकों में 'रंगीला' के नाम से प्रसिद्ध था, अनन्य मित्र, शाहीमीर बख्शी, शम्सुद्दौला खाँ दौराँ के भाई मुज़फ्फरखाँ से दरबार में जल्दी ही उसका झगड़ा हो गया। मुज़फ्फर खाँ की सेवा में निशापुर का एक ईरानी था जो अपने स्वामी के धन का अपव्यय करने के अभियोग में अपराधी घोषित हो चुका था और कारागार में डाल दिया गया था। अपराधी का सह नागरिक होने के नाते अपने को ज़मानत

§इमाद ८। इमाद कहता है कि सआदतखाँ के पास १० हज़ार आदमी थे और मोहनसिंह के साथ ५० हज़ार राजपूत आये थे। हम जानते हैं कि आगरा में सआदतखाँ के पास ३० हज़ार सैनिक थे (देखो—मन्सूर पत्र न० ३५) और अवध में अपने प्रवेश के पहिले उसने कुछ और सेना भरती की थी। अतः उसके पास रणक्षेत्र में ३० हज़ार सैनिक से कम नहीं हो सकते थे। स्पष्ट है कि राजा के सैनिकों की संख्या अतिशयोक्ति पूर्ण है क्योंकि वह अपने साधनों से वह इतनी बड़ी सेना नहीं रख सकता था।

†इमाद ८।

में देख कर सआदत खाँ बुर्हानुल्मुल्क ने मुज़फ्फ़र खाँ से उसको छोड़ देने की प्रार्थना की। प्रार्थना का सम्मान करने के स्थान पर मुज़फ्फ़रखाँ ने उसको अपमानकारी ठेस पहुँचाई। अपनी अवहेलना को छुपाने के लिये सआदतखाँ ने अपने प्रस्ताव को दुहराया। मुज़फ्फ़रखाँ और भी अधिक क्रुद्ध हुआ और दोनों सामन्तों में गरमागरम शब्द प्रयुक्त हुये। दोनों एक दूसरे पर वार करने वाले ही थे कि समीपस्थ अधिकारियों ने उनको छुड़ा दिया। अब दोनों खुले मैदान में अपना झगड़ा निपटने के लिये तैयार हो गये। मुज़फ्फ़रखाँ और उसके भाई को फर्रुखाबाद के मुहम्मदखाँ बंगश की सहायता प्राप्त हो गई और सआदतखाँ को उसके मित्र रोशनुद्दौला से मदद मिली।

इस स्थिति पर क़मरुद्दीन खां ने हस्तक्षेप किया और झगड़े का अन्त कर दिया। बादशाह दोनों से बहुत अप्रसन्न हुआ और आज्ञा दी कि सआदत खां अवध वापस जाये और मुज़फ़्फ़र खां को उसने उसके प्रान्त अजमेर को वापस भेज दिया (सितम्बर-अक्टूबर) *।

सफ़दरजंग अवध का उपराज्यपाल नियुक्त। १७२४ई०

सआदतखाँ बुर्हानुल्मुल्क अभी दिल्ली ही में था कि उसका अल्पायु भांजा मिर्ज़ा मुहम्मद मुक़ीम फ़ैज़ाबाद पहुँच गया जिसको उसने अपने जन्म स्थान निशापुर से आमन्त्रित किया था। मिर्ज़ा मुक़ीम जाफ़रबेगखाँ का दूसरा पुत्र था और सआदत खाँ की सबसे बड़ी बहेन के पेट से था। अपनी माता के देहान्त पर जब वह ६ मास का था सआदत खाँ की दूसरी बहेन ने उसका पालन-पोषण किया था। अवध में अपनी नियुक्ति के शीघ्र ही पश्चात् बुर्हानुल्मुल्क ने अपने भांजे को भारत बुलाने के लिये पत्र भेजा था। मीराते अहमदी के लेखक की अकाट्य साक्षी से हमको पता है कि मिर्ज़ा मुक़ीम सआदत खाँ के बड़े भाई मीर मुहम्मद बाक़र के साथ अप्रेल १७२३ ई० में सूरत के बन्दरगाह पर उतरा था। इतिहासकार आगे कहता है कि मिर्ज़ा मुक़ीम का भारत को यह पहिला ही आगमन था। वे कुछ दिन अहमदाबाद ठहर गये कि स्थल मार्ग से की जाने वाली अपनी लम्बी यात्रा की तैयारी कर लें †। फ़ैज़ाबाद में उनके आगमन के कुछ समय पीछे सआदत खां अपनी बड़ी कन्या सदरेजहां उर्फ़

* ल०म०II १३४-१३५।
† मीरात II ८८ ब।

सदरुन्निसा बेगम का विवाह नवयुवक मिर्ज़ा से कर दिया। इस अवसर पर स्वाभाविक खुशियाँ मनाई गईं। वधू पूरी १२वर्ष की थी ‡। और वर १५-१६ वर्ष के कुछ ऊपर था। विवाह के कुछ दिनों बाद ही सआदत खाँ ने अपने भांजे और जामाता को अवध में अपना नायब नामज़द करा दिया और कुछ समय पीछे बादशाह मुहम्मद शाह से उसके लिये अबुलमन्सूर खां की उपाधि * प्राप्त कर ली। इस विवाह से ११४४हि० † (जुलाई १७३१–जून १७३२ ई०) में अपने माता-पिता के इकलौते पुत्र जलालुद्दीन हैदर ने जन्म लिया जो इतिहास में अपनी अधिक प्रसिद्ध उपाधि शुजाउद्दौला से ज्ञात है।

७ अवध के सामन्तों का दमन।

फ़ारसी इतिहासों में साधारण शब्दों में लिखा है कि सआदत खां ने पूर्णतया अवध के सब विद्रोही सामन्तों का उन्मूलन कर दिया और पूर्ण शान्ति और व्यवस्था को पुनः स्थापित कर दिया। परन्तु सूबा के इतिहास का गहरा अध्ययन दूसरी ही स्थिति प्रकट करता है। कुछ राजपूत सरदारों का विशेषकर तिलोई के कान्हपुरिया वंश के नेता का और उन्नाव और रायबरेली जिलों में निवासी बैसवाड़ा के बैस्यों का ठीक दमन न हो सका। वे निरन्तर सैनिक राज्यपाल और उसके उत्तराधिकारी अबुलमन्सूर खां सफदरजंग को कष्ट देते रहे। बादशाह को, साम्राज्य के उच्च पदाधिकारियों को, अपने ही अधीनस्थ व्यक्तियों को

‡ सवानेहात १२ वर्ष देता है। इमाद पृ० ६ कहता है कि हिण्डवान और बयाना पर सआदत खां की नियुक्ति के समय वह ४ वर्ष या उससे कुछ अधिक की थी। इमाद के अनुसार इस नियुक्ति की तारीख़ ११२८ हि० है। अतः ११३५ हि०(१७२४ ई०) में वह १२वर्ष से कुछ अधिक की होती है। अतः मिर्ज़ा मुक़ीम उस समय १५–१६ वर्ष से अधिक का नहीं हो सकता है।

* इमाद पृ० ८ और ६। यह ग़लत कहता है कि सफदर जंग की उपाधि इस समय प्राप्त की गई थी। सआदत ख़ां की मृत्यु के पीछे यह उसको दी गई थी।

† निम्नलिखित पद्य का अन्तिम चरण तारीख़ बताता है।

नवाब (अबुल) मन्सूर (खां) के घर में प्रकाश के क्षितिज से सूर्योदय हुआ।

और अन्य प्रसिद्ध पुरुषों को नवाब वज़ीर सफदर जंग द्वारा लिखित बहुत से पत्र लखनऊ के जलसए-तहज़ीब पुस्तकालय में (रिफाहेआम क्लब में प्राप्य) सौभाग्य से सुरक्षित हमारे पास हैं जो अवध के इतिहास पर बहुत प्रकाश डालते हैं। इन चिट्ठियों के अधिकांश भाग में सफदर जंग अवध के सामन्तों की विद्रोही प्रकृति की शिकायत करता है जो एक निमिष में झगड़ा पैदा करने के समर्थ थे और जो मुग़ल साम्राज्य के वंश परम्परागत शत्रुओं-दक्षिण के मराठों से भी अधिक संकटकारी थे ऽ।

सआदतखाँ का गौरव इन बड़े ज़मीनदारों को प्रतिबन्ध में रखने में और अवध में व्यवस्था बनाये रखने में है। यह कार्य कितना कठिन था—इसका अनुमान औरङ्गज़ेब के शासन काल के अन्तिम वर्षों में बैसवाड़ा के फौजदार रद-अन्दाज़खाँ के पत्रों को ध्यान पूर्वक अध्ययन से हो सकता है जो उसके मुन्शी भूपतराय द्वारा पुस्तकाकार में एकत्रित किये गये थे और इन्शाये रोशन का नाम दिये गये थे। ये पत्र औरङ्गज़ेब के शासन के अन्तिम वर्षों में अवध की अव्यवस्था का, सब ज़िलों में अशान्त ज़मीनदारों की विद्यमानता का, जो सिवाय तलवार की धार पर राज्य-कर नहीं देते थे, लखनऊ, बिजनौर और कुर्सी के परगनों और अन्य स्थानों में खुली डकैती का, और लखनऊ शहर के अति-सामीप्य में* सड़कों की अरक्षता का स्पष्ट चित्र खींचते हैं। किसी विशेष उन्नति के बजाय औरङ्गज़ेब के अयोग्य उत्तराधिकारियों के निर्बल शासन में दशा और भी बिगड़ गई होगी। अतः सआदतखाँ के लिये आवश्यक था कि जीवन पर्यन्त अवध के सामन्तों के विरुद्ध अस्त्र-शस्त्र लिये तैयार रहे।

१७२५ ई० के आरम्भ के समीप सआदतखाँ विवश हो गया कि आधुनिक ज़िलों बस्ती और गोरखपुर के उत्तरी परगनों की ओर ध्यान दे जहाँ पर अराजकता की सीमा तक कई वर्षों से अव्यवस्था राज्य कर रही थी। वणिक लुटेरों की एक जाति बनजारा के स्वार्थी सैनिकों की सहायता से तिलकपुर का तिलकसेन, जो उस समय गोरखपुर में था, परन्तु अब नयपाल की तराई में है, इन ज़िलों के उत्तरी भागों को लूट मार से नष्ट कर रहा था। बनजारों ने अपना कार्य इतनी पूर्णता

ऽ मकतूबाते मन्सूरिया पत्र नं० ७ पृ० १२।

*इनशाये पृ० २—२१।

से किया था कि प्रदेश का बहुत बड़ा भाग निर्जन हो गया था। तिलकसेन और उसके साथियों को दण्ड देने के लिए, सआदतखाँ ने गोरखपुर की छावनी को सहायतार्थ एक सबल सेना भेजी। लुटेरों से कुछ अनियमित रण लड़े गए, परन्तु उन पर कोई प्रभाव न पड़ सका। वे जंगलों में गायब हो जाते और नवाब की सेना के लौट जाने पर अपने जंगलस्थ गढ़ों से निकल पड़ते और अपने विनाश-कार्य को पुनः आरम्भ कर देते। यह वस्तु-स्थिति सफदर जंग के समय तक बनी रही जो दीर्घकालीन युद्ध के बाद ही इन जिलों में एक प्रकार की व्यवस्था स्थापित कर सका†।

१७वीं और १८वीं शताब्दियों में अवध की सर्वाधिक महत्वशाली राजपूत जाति वैस्यवाड़ा की बैस्य जाति थी। बैस्यवाड़ा में उस समय—पहुँआँ, पाटन, बिहार भगवन्तनगर, मगरयार, घाटमपुर और डौंडिया-खेड़ा, जो अब उन्नाव ज़िला की पुरवा तहसील में हैं—के सात परगने थे। वैस्यवाड़ा का यह भाग बैस जाति की सर्वाधिक प्रसिद्ध शाखा तिलोकचन्दी बैसों की जन्मभूमि था और शाखा डौंडिया खेड़ा के महान राजा तिलोकचन्द के नाम पर प्रसिद्ध थी जो उनका मुख्य मूल पुरुष था। डौंडियाखेड़ा कानपुर से करीब २५ मील दक्षिण-पूर्व में गंगा तट पर बसा हुआ था। तिलोकचन्द के दो पुत्र थे—पृथीसिंह और हरिहरदेव। प्रथम से डौंडियाखेड़ा, मौरावाँ और पुरवा रणमीरपुर के वंश चले और द्वितीय से सैमरी और नई बस्ती के वंश जो प्रायः परस्पर और अपने पड़ोसियों से लड़ते रहते थे। वैस्यवाड़ा केवल अपने सामन्तों की शक्ति और सम्पन्नता के कारण प्रसिद्ध न था, परन्तु अवध में हिन्दु कट्टरता और संस्कृति का केन्द्र भी माना जाता था। इस समय तक ग्रामीण लोगों का विश्वास है कि वैस्यवाड़ा का निवासी होने का अर्थ—सुसंस्कृत। तोपखाना से सुसज्जित एक बहुत बड़ी सेना लेकर सआदतखाँ फैज़ाबाद से बैस्य सरदारों को अधीनस्थ करने चला। लगभग सब ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली और राज्यपाल को कर देने पर राजी हो गए। परन्तु बछरावाँ के ६ मील उत्तर-पश्चिम कुर्रीसिदौली के मादिकसिंह के भाई चेतराम ने घृणा से कायरतापूर्ण आत्म-समर्पण के

† गोरखपुर और बस्ती के डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (१९०७) पृ० १८२ और १५३ क्रमशः।

प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अपने गढ़ पच्छिम गाँव* में डट कर मूर्चा लिया जो रायबरेली के उत्तर-पश्चिम १५ मील पर है। इतनी सफलता से वह अपने गढ़ की रक्षा करता रहा कि उसकी वीरता और तल्लीनता से नवाब बहुत प्रभावित हुआ और अपनी माँग को आधा कर दिया। चेतराम ने अधीनता स्वीकार कर ली और सआदतखाँ ने बहुत सम्मान से उसके साथ बर्ताव किया। नवाब ने केवल उसका आधा कर लेना स्वीकार कर लिया जो पहिले उसने अपने वीर शत्रु पर लगाया था†।

आधुनिक गोंडा जिला में बलरामपुर की जनवार रियासत १८ वीं सदी के प्रथम चरण में शीघ्र उन्नत हो रही थी। जनवार राजा के आदि पूर्वज गुजरात से आये थे। १४ वीं शताब्दी में किसी समय वे अवध आये और इकौना की बड़ी रियासत स्थापित की। आदिम आगतों से ७ वीं पीढ़ी में उनका एक वंशज मुख्य शाखा से अलग हो गया और खातियों की एक जाति को, जो उस भूभाग पर राज्य कर रही थी, निकालकर उसने राप्ती और कुआना नदियों के बीच के प्रदेश पर अधिकार जमा लिया। उसके पुत्र बलराम दास ने बलरामपुर नगर की स्थापना की और उसको अपना निवास स्थान बना लिया। उस समय से बलरामपुर ने मुख्यतया विजय द्वारा शनैः शनैः बहुमूल्य प्रदेश प्राप्त कर आरम्भ कर दिया और सआदतखाँ के समय वह एक बड़ी और शक्तिशाली रियासत थी। रियासत की गद्दी पर नवाब का समकालीन राजा नारायणसिंह था जिसका प्रान्तीय शासन से विरोध हो गया। दो निविड़ लड़ाइयों में हार कर राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली और कर देने को राजी हो गया। उसके उत्तराधिकारी इस अधीनता पर क्रुद्ध थे और राज्य कर सैनिक बल के दबाव पर ही देते थे‡।

परन्तु जिला का सर्वाधिक बलशाली सामन्त गोंडा का बिसेन शासक राजा दत्तसिंह था जिसका प्रदेश सआदतखाँ बुर्हानुलमुल्क की ओर से नियुक्त बहराइच के नाजिम अलवलखाँ के प्रभुत्व में था। गोंडा के नगर की स्थापना उसके मुख्य पूर्वज मानसिंह बिसेन ने जहांगीर के समय में (१६०५-१६२७ ई०) की थी। और उस समय से उस नामका नगर और

*कुर्सीसिदौली और पच्छिम गाँव के लिए देखो शीट ६३ फ़।

†उनाव का वृत्तविवरण—इलिट द्वारा—पृ० ६—७४।

‡गोंडा डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर प० ७८-७६।

से किया था कि प्रदेश का बहुत बड़ा भाग निर्जन हो गया था। तिलकसेन और उसके साथियों को दण्ड देने के लिए, सआदतखाँ ने गोरखपुर की छावनी की सहायतार्थ एक सबल सेना भेजी। लुटेरों से कुछ अनियमित रण लड़े गए, परन्तु उन पर कोई प्रभाव न पड़ सका। वे जंगलों में गायब हो जाते और नवाब की सेना के लौट जाने पर अपने जंगलस्थ गढ़ों से निकल पड़ते और अपने विनाश-कार्य को पुनः आरम्भ कर देते। यह वस्तु-स्थिति सफदर जंग के समय तक बनी रही जो दीर्घकालीन युद्ध के बाद ही इन जिलों में एक प्रकार की व्यवस्था स्थापित कर सका†।

१७वीं और १८वीं शताब्दियों में अवध की सर्वाधिक महत्वशाली राजपूत जाति बैसवाड़ा की बैस जाति थी। बैसवाड़ा में उस समय—पहुँआँ, पाटन, बिहार भगवन्तनगर, मगरयार, घाटमपुर और डौंडिया-खेड़ा, जो अब उन्नाव जिला की पुरवा तहसील में है—के सात परगने थे। बैसवाड़ा का यह भाग बैस जाति की सर्वाधिक प्रसिद्ध शाखा तिलोक चन्दी बैसों की जन्मभूमि था और शाखा डौंडिया खेड़ा के महान राजा तिलोकचन्द के नाम पर प्रसिद्ध थी जो उनका मुख्य मूल पुरुष था। डौंडियाखेड़ा कानपुर से करीब २५ मील दक्षिण-पूर्व में गंगा तट पर बसा हुआ था। तिलोकचन्द के दो पुत्र थे—प्रथीसिंह और हरिहरदेव। प्रथम से डौंडियाखेड़ा, मौरावाँ और पुरवा रणमीरपुर के वंश चले और द्वितीय से सेवासी और नई बस्ती के वंश जो प्रायः परस्पर और अपने पड़ोसियों से लड़ते रहते थे। बैसवाड़ा केवल अपने सामन्तों की शक्ति और सम्पन्नता के कारण प्रसिद्ध न था, परन्तु अवध में हिन्दु कट्टरता और संस्कृति का केन्द्र भी माना जाता था। इस समय तक ग्रामीण लोगों का विश्वास है कि बैसवाड़ा का निवासी होने का अर्थ—सुसंस्कृत। तोपखाना से सुसज्जित एक बहुत बड़ी सेना लेकर सआदतखाँ फैजाबाद से बैस सरदारों को अधीनस्थ करने चला। लगभग सब ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और राज्यपाल को कर देने पर राजी हो गए। परन्तु बछरावाँ के ६ मील उत्तर-पश्चिम कुर्रीसिदौली के सादिकसिंह के भाई चेतराम ने घृणा से कायरतापूर्ण आत्म-समर्पण के

† गोरखपुर और बस्ती के डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (१९०७) पृ० १८२ और १५३ क्रमशः।

प्रस्ताव को ठुकरा दिया और अपने गढ़ पच्छिम गाँव* में डट कर मूर्चा लिया जो रायबरेली के उत्तर-पश्चिम १५ मील पर है। इतनी सफलता से वह अपने गढ की रक्षा करता रहा कि उसकी वीरता और सल्लग्नता से नवाब बहुत प्रभावित हुआ और अपनी माँग को आधा कर दिया। चेतराम ने अधीनता स्वीकार कर ली और सआदतखाँ ने बहुत सम्मान से उसके साथ बर्ताव किया। नवाब ने केवल उसका आधा कर लेना स्वीकार कर लिया जो पहिले उसने अपने वीर शत्रु पर लगाया था†।

आधुनिक गोंडा जिला में बलरामपुर की जनवार रियासत १८ वीं सदी के प्रथम चरण में शीघ्र उन्नत हो रही थी। जनवार राजा के आदि पूर्वज गुजरात से आये थे। १४ वीं शताब्दी में किसी समय वे अवध आये और इकौना की बड़ी रियासत स्थापित की। आदिम आगतों से ७ वीं पीढ़ी में उनका एक वंशज मुख्य शाखा से अलग हो गया और खातियों की एक जाति को, जो उस भूभाग पर राज्य कर रही थी, निकालकर उसने राप्ती और कुवाना नदियों के बीच के प्रदेश पर अधिकार जमा लिया। उसके पुत्र बलराम दास ने बलरामपुर नगर की स्थापना की और उसको अपना निवास स्थान बना लिया। उस समय से बलरामपुर ने मुख्यतया विजय द्वारा शनैः शनैः बहुमूल्य प्रदेश प्राप्त कर आरम्भ कर दिया और सआदतखाँ के समय वह एक बड़ी और शक्तिशाली रियासत थी। रियासत की गद्दी पर नवाब का समकालीन राजा नारायणसिंह था जिसका प्रान्तीय शासन से विरोध हो गया। दो निविड़ लड़ाइयों में हार कर राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली और कर देने को राजी हो गया। उसके उत्तराधिकारी इस अधीनता पर क्रुद्ध थे और राज्य कर सैनिक बल के दबाव पर ही देते थे‡।

परन्तु जिला का सर्वाधिक बलशाली सामन्त गोंडा का बिसेन शासक राजा दत्तसिंह था जिसका प्रदेश सआदतखाँ बुर्हानुलमुल्क की ओर से नियुक्त बहराइच के नाजिम अलवलखाँ के प्रमुख में था। गोंडा के नगर की स्थापना उसके मुख्य पूर्वज मानसिंह बिसेन ने जहांगीर के समय में (१६०५-१६२७ ई०) की थी। और उस समय से उस नामका नगर और

*कुर्रीसिदौली और पच्छिम गाँव के लिए देखो नोट ६३ क।
†उन्नाव का वृत्तविवरण—इलिट द्वारा—पृ० ६—७४।
‡गोंडा डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर प० ७८-७६।

रियासत विशेन वंश के अधिकार में चले आ रहे थे। दत्तसिंह द्वारा निश्चित राज्य कर देने से इन्कार करने पर सआदतखाँ ने अलवलखाँ को बड़ी सेना के साथ राजा के विरुद्ध भेजा। फ़ैज़ाबाद के उत्तर-पश्चिम २८ मील पर अलवलखाँ ने पसका पर घाघरा को पार किया और कलहन राजपूतों की सहायता से, जो अपने पड़ोसी विशेनों के शत्रु थे, स्थानीय गढ़ को विजित कर लिया। तब वह गोंडा पर चढ़ गया और दत्तसिंह जिसके सैनिक उस समय वहाँ से दूर थे, शान्ति की याचना करने पर विवश हो गया। परन्तु बीच में राजा एक सेना एकत्रित करने में सफल हो गया और गोंडा के पश्चिम ९ मील सरबंगपुर§ पर रुद्र रण हुआ जिसमें राजा के एक अधीनस्थ सरदार भैरोंराय द्वारा अलवलखां मारा गया। सआदतखां ने अब एक और भी बड़ी सेना नाज़िम का बदला लेने और गोंडा पर घेरा डालने के लिये भेजी। बीच में उसकी रियासत के उत्तर में रहने वाले उसके जाति भाइयों द्वारा विशेन राजा को भेजी हुई बड़ी संख्या में सहायतार्थ दूसरी सेना के निकट आगमन का सन्देश पहुँचा। दो सेनाओं के बीच में फंस जाने के भय से नवाब की सेना ने घेरा हटा लिया। इस दीर्घकालीन युद्ध से अब दोनों पक्ष ऊब गये थे। दत्तसिंह ने कर देना स्वीकार कर लिया और सआदतखां ने उसकी रियासत को एक अलग प्रशासन इकाई में परिवर्तित करने की उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। परन्तु "इस प्रबन्ध से-ऐसा मालूम होती है—उसकी शक्ति घटी नहीं परन्तु बढ़ गई....उसका प्रभाव (इस शान्ति के बाद) इतना बढ़ गया कि घाघरा के उत्तर में सब सामन्तों ने, अकेले नानपारा को छोड़कर, उसका आधिपत्य स्वीकार कर लिया और उसकी आज्ञा पर अपनी सेनायें वे रण में भेजते* "।

---

§ पसका के लिये देखो शीट न. ६३ ए; और सरबंगपुर के लिये शीट न. ६३ ई०।

* गोंडा का डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (१९०५) पृ. १४७।

अध्याय ४

अवध की नवाबी का प्रसरण

सआदत खाँ का बनारस, ग़ाज़ीपुर, जवनपुर और चुनार का प्राप्त करना।

मुहम्मदशाह के राज्य काल के प्रारम्भिक वर्षों में मुर्तज़ा खाँ नामक एक सामन्त को बनारस, जवनपुर, ग़ाज़ीपुर और चुनारगढ़को चार सरकारें जागीर में दी गईं जिनका अनुमान मोटे तौर पर इस समय महाराजा की रियासत सहित आधुनिक बनारस ज़िला, जवनपुर, ग़ाज़ीपुर, आज़मगढ़ और बलिया के जिलों और मिर्ज़ापुर के पूर्वी भाग से होता है। नवाब मुर्तज़ा खाँ ने इन जिलों का प्रबन्ध अपने एक नातेदार रुस्तम अलीखाँ को सौंप दिया जिसने उसको ५ लाख रुपया वार्षिक देने की प्रतिज्ञा की और बढ़ोत्तर* पर अपना अधिकार रखा। ऐसा प्रतीत होता है कि वह धन जागीरदार को समय पर नहीं भेजा जाता था। सरल हृदय और आलसी होने के कारण रुस्तम अलीखाँ अपने पद के कठिन कर्तव्य के पालन के अयोग्य था। वह न तो अपने ज़िलों के बड़े जमींदारों को नियन्त्रण में रख सकता था और न समय पर वार्षिक कर उनसे वसूल कर सकता था। अतः जब सआदतखाँ ने अवध के व्याकुल देश में शान्ति व्यवस्था और सुरक्षा स्थापित कर दी, मुर्तज़ा खाँ ने खुशी से अपने जिलों का ७ लाख रुपया वार्षिक पर उसको पट्टा दे दिया (करीब १७२८ ई०)। इन ज़िलों के अवध की पूर्वी सीमा पर होने के कारण सआदत खाँ की पूर्वी सीमा स्वतः इन दिनों में आधुनिक उत्तर प्रदेश की हद तक बढ़ गई। सआदतखाँ ने उसको इन जिलों के अधिकार में इस शर्त पर रहने दिया कि ५ लाख वार्षिक के स्थान पर जो वह मुर्तजाखां को देता था वह उस को ८ लाख देवे †।

---

*बलवन्त ३ अ और ब.।

†बलवन्त ६ अ.।

अवध में सआदतखां की सफलता की प्रसिद्धि से उसके द्वारा नवप्राप्त प्रदेशों के सब बड़े जमीनदार भयभीत होकर उसकी शरण में आ गये। परन्तु आजमगढ़ के एक वंश परम्परा गत सरदार, महाबतखाँ ने, जो मुर्तजाखां को एक न एक बहाना पर रुपया देने से बचता रहता था, वह चाल बुर्हानुलमुल्क के साथ चलने का प्रयत्न किया। परन्तु ऐसी हठ को सहन करने में असमर्थ सआदतखां स्वयं आजमगढ़ पर कूच कर गया। नवाब की भयानक सेना से भयभीत होकर विद्रोही सरदार ने अधीनता स्वीकरण के सन्देश और उसके अतिरिक्त उपयुक्त उपहारों के प्रस्ताव भेजे। परन्तु राज्यपाल ने, जो महाबतखां को उदाहरण बनाने पर तुला हुआ था, नम्र होने से इन्कार कर दिया। अतः महाबतखां चुपके से नगर छोड़ गया, घाघरा को पार किया और गोरखपुर जिला को भाग गया। परन्तु वहां पर भी वह अपने को सुरक्षित न मान सका, और आजमगढ़ वापस आकर उसने अपने को सआदतखां की दया पर छोड़ दिया, जिसने उसको गोरखपुर नगर के कारागार में बन्द कर दिया जहां पर वह कुछ दिनों बाद मर गया। उसका पुत्र इरादतखां रियासत में उसकी गद्दी पर बैठाया गया और सआदतखां का शासन इतना सफल हुआ कि १७५० तक आजमगढ़ शान्त रहा जबकि फर्रुखाबाद के अहमदखां बंगश के हाथों उसकी हार से स्थानीय शासक को प्रोत्साहन मिला कि वह नवाब वज़ीर के विरुद्ध अवध के विद्रोही सामन्तों के गुट में सम्मिलित हो जाये*।

सचेंड़ी के गढ़ को जीतना—१७२६ ई० ।

१७२६ ई० में सआदतखां बुर्हानुलमुल्क ने राजा गोपालसिंह भदवरिया को साथ लेकर अवध की पश्चिमी सीमा पर महत्वशाली चन्देल सरदार हिन्दुसिंह के विरुद्ध सैन्य संचालन किया। यह हिन्दुसिंह हरिसिंह देव का पुत्र और खड्गजीतसिंह का पौत्र कानपुर के उत्तर-पश्चिम में शिवराजपुर के राजा इन्द्रजीतसिंह का पहिले अधीनस्थ सरदार था। अपने अधिपति से झगड़कर कानपुर के पास गंगा पर अपने गाँव बिहारी को उसने छोड़ दिया, शिवराजपुर के वंश की एक छोटी शाखा सचिंडी के शासक के यहाँ उसने नौकरी कर ली और बाद को अपने को स्वतन्त्र राजा‡ घोषित कर दिया। उसने दो शक्तिशाली गढ़ बनवाये—

*आज़मगढ़ का डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियर (१६११) पृ० १७१।
‡ ज० ए० सु० बं० जिल्द ४७ पृ० ३७७ व०।

एक चचेंडी पर जिसका दूसरा नाम सचेंडी भी है और दूसरा बिहनौर पर (पहिला कानपुर के १२ मील दक्षिण-पश्चिम में और दूसरा पहिले के ३ मील दक्षिण में), उसने एक सबल सेना भरती कर ली और इलाहाबाद, आगरा और अवध की संदिग्ध सीमा के एक बड़े प्रदेश पर अतिक्रमण किया। ६० हजार सैनिकों की एक प्रबल सेना लेकर सआदत खाँ अकस्मात् सचेंडी के पास प्रकट हुआ। खुले मैदान में नवाब का सामना करने में असमर्थ हिन्दुसिंह ने अपने मजबूत गढ़ में शरण ली और सआदतखां ने उसका घेरा प्रारम्भ किया। किन्तु भरसक प्रयत्न करने पर भी वह अपके उद्यम में कोई प्रगति न कर सका और अपने उद्देश्य सिद्धि के लिए उसको छल का आश्रय लेना पड़ा। उसने अपने मित्र राजा गोपालसिंह को चन्देल सरदार को इस पर तैयार करने के लिए भेजा कि वह गढ़ छोड़ दे जिसको एक या दो दिनों में पुनः वापस देने की उसने प्रतिज्ञा की। मधुर और सन्यामास भाषी होने के कारण गोपालसिंह को अपने यजमान पर यह प्रभाव डालने में कोई कष्ट न हुआ कि साम्राज्य के एक गौरवशाली सामन्त से लड़कर बादशाह की अप्रसन्नता मोल लेना अनुपयुक्त है और केवल सआदतखां के गौरव और सम्मान का मान रखने के लिए कुछ दिनों के वास्ते गढ़ खाली कर देने का अनभीष्ट उपदेश उसको दिया। उसने विधिपूर्वक शपथ पर वचन दिया कि कपट न होगा। इन युक्तियों पर तैयार होकर अशङ्क हिन्दुसिंह ने अपने परिवार और सम्पत्ति सहित गढ़ छोड़ दिया और उससे कुछ दूर उसने अपना डेरा डाला। उससे अक्षरशः कपट किया गया। अपने दिए हुए वचन का अवलङ्घन करते हुए मदावर के राजा ने सआदतखाँ की प्रेरणा पर विराम सन्धि के तीसरे दिन गढ़ पर अधिकार कर लिया। हिन्दुसिंह ने गढ को पुनः वापस लेने का साहसी परन्तु व्यर्थ प्रयत्न किया। उसकी छोटी सी सेना शत्रु के बादल दल का सामना न कर सकी। अतः उसने छत्रसाल बुन्देला की शरण ली और उसकी सारी रियासत अवध के नवाब के हाथ आ गई, जिसकी पश्चिमी सीमा इस प्रकार कन्नौज के समीप तक फैल गई*।

भगवन्तसिंह उदरु पर आक्रमण—नवम्बर १७३५ ई०

१७३२ ई० के आरम्भ में जब सर बुलन्द खाँ इलाहाबाद का राज्य-

*इलियट जिल्द ८ पृ० ४६ —४७ में रुस्तमअली।

पाल था, एक आत्म सम्मानीय खीची राजपूत (उदय पुत्र) भगवन्तसिंह को, जो इलाहाबाद के सूबा में कोड़ा जनाहाबाद की सरकार में, जो अब उत्तर प्रदेश के आधुनिक ज़िला फतेहपुर में है, ग़ाज़ीपुर और असोथर*का ज़मीनदार था, स्थानीय फ़ौजदार जाँनिसारख़ाँ ने† अपमानित कर दिया और उसको विद्रोही बना दिया। अपने बहनोई कमरुद्दीनख़ाँ के सहारे के विश्वास पर जाँनिसारख़ाँ अपने कर्त्तव्य की उपेक्षा और प्रजा पीडन करता था। किसान और ज़मीनदार एक समान उसकी लूट और ज़ुल्म से तंग थे। उसका भगवन्तसिंह से किसी धार्मिक बात पर झगड़ा हो गया—सम्भवतया उसने हिन्दू धर्म पर कुछ अपमानजनक शब्द कहे। खीची सरदार ने प्रत्युत्तर दिया, खुले विद्रोह पर आ गया और फौजदार को बहुत कष्ट दिया। मार्च १७३२ में विद्रोही को दण्ड देने के लिए जाँनिसारख़ाँ कड़ा छोड़कर ग़ाज़ीपुर आ गया। जब फौजदार की छावनी उससे ४ मील दूर थी, भगवन्तसिंह जो व्यक्तिगत पर्याप्त शक्ति और साहस रखता था, अकस्मात् जाँनिसारख़ाँ के डेरों के सामने असर प्रार्थना के समय (करीब ४ बजे साय) अपने नगाड़े बजाता हुआ और सैनिक लिए हुए प्रकट हुआ। नशा में चूर्ण और निद्रागतरा उसके नगाड़ों की आवाज से जाग उठा। वह अपने हाथी पर चढ़ा और व्यर्थ में अपने असज्जित और असन्तुष्ट सैनिकों

---

*ग़ाज़ीपुर यमुना के ८ मील उत्तर में और फतेहपुर के ६ मील दक्षिण-पश्चिम में है; और असोथर नदी के ३ मील उत्तर में और ग़ाज़ीपुर के दक्षिण पूर्व में ११ मील पर है (शीट ६३ सी)। मराठी पत्र कभी उसको भगवतसिंह कहते हैं, कभी भगतसिंह और कभी जसवन्तसिंह।

†इलियट जिल्द ८पृ० २४१ कहता है—'जाँनिसारख़ां ने कमरुद्दीनख़ां वज़ीर को बहेन से विवाह किया था।' स्पष्ट है कि यह ग़लत अनुवाद है। सियार जिल्द १ पृ० २६० का अनुवाद भी ग़लत अनुवाद देता है और जाँनिसारख़ां को कमरुद्दीनख़ां का बहनोई कहता है। नेविले—फतेहपुर का डिस्ट्रिक्ट गजेटियर (१९०६) पृ० १५६—मुस्तफ़ा की ग़लती का अनुकरण करता है। नेविले का यह कहना भी ग़लत है कि उस समय कोड़ा जहानाबाद अवध में था। यह इलाहाबाद के सूबा में था।

को रण के लिए तैयार होने की आज्ञा दी। भगवन्तसिंह जांनिसारखां पर झपटा और शीघ्र ही उसका और उसके कुछ स्वामिभक्त अनुचरों का काम समाप्त कर दिया जो उसके आस-पास इकट्ठे हो गए थे। विजेता ने खाँ के शिविर और सामान पर अधिकार करने के अतिरिक्त कोड़ा जहानाबाद के ज़िलेके अधिकांश भाग पर भी अधिकार कर लिया*।

जब इस विपत्ति का समाचार दिल्ली पहुँचा कमरुद्दीनखां ने अपने भतीजे अज़ीमुल्लाखाँ को भगवन्तसिंह को सजा देने और जांनिसारखां के परिवार को बचाने के लिए सबल सेना देकर भेजा। अज़ीमुल्लाखां के निकट आगमन पर चतुर राजपूत ने अपने को सैन्य संख्या में निर्बल पाकर जंगल की शरण ली। अज़ीमुल्लाखाँ ने कोड़ा पर अधिकार कर लिया और वहाँ कुछ दिन ठहर कर और ज़िला को ख्वाज़िमबेगखाँ के अधिकार में छोड़ कर वह दिल्ली वापस आ गया। उसने अपनी पीठ मोड़ी ही थी कि भगवन्तसिंह अपने छुपने की जगह से बाहर निकला, ख्वाज़िमबेगखाँ पर टूट पड़ा, और उसको मार डाला। उसके आदमियों को उसने ज़िला से बाहर ढकेल दिया† और उसका शासक बन गया।

अपनी वधू से प्रेरित, मदिरा और स्त्री भोगी क़मरुद्दीनखाँ ने ४० हज़ार सवार और ३० हज़ार बन्दूकची लेकर जून १७३३ में द्वाब में प्रवेश किया और भगवन्तसिंह को गाज़ीपुर के गढ़ में घेर लिया। उसकी थकी और सुस्त फौजें गढ़ को पूर्णतया घेरने में असमर्थ रहीं और आक्रमण को दूसरे दिन पर टाल रखा। परन्तु चिड़िया प्रभात पूर्व ही चतुर चाल से उड़ गई। शत्रु का सन्देह जाग्रत न हो इस आशय से भगवन्तसिंह मुगलों पर गोली चलाता रहा और बीच रात में गढ के उस भाग से भाग निकला जो अरक्षित था, गाज़ीपुर से ८ मील पर

---

*वारिद २२१ ब—२२२ अ, शाकिर पृ० २२ और सियार I ४६७ संक्षिप्त वर्णन देता है। अन्य इतिहासकार जैसे हादिक़ पृ० ६८०—कहते हैं कि जाँनिसारखाँ के अन्तःपुर को महिलायें भी भगवन्त के हाथों में पड़ गईं। उनमें से एक उसके पुत्र रूपसिंह की पासवान हो गई (मुन्तख़बुत्तवारीख़) इलियट जिल्द ८ पृ० २४ ब पर कहता है कि वह फ़ौजदार की पुत्री थी और उसने अपने सम्मान की रक्षार्थ आत्म-हत्या करली।

†शाकिर २२; सियार II ४६८।

यमुना को प्रभात पूर्व ही उसने पार किया और छत्रसाल बुन्देला के पुत्रों के प्रदेश में शरण ली। क़मरुद्दीनखाँ ने गढ़ पर अधिकार कर लिया और आज्ञा दी कि विद्रोही का पीछा करने के लिये नदी पर पुल बनाया जाय‡। परन्तु इसके पहिले ही कि यह कार्य पूर्ण हो सके, उसको जल्दी-से-दिल्ली लौटना पड़ा कि वह उस षड्यन्त्र को तोड़ दे जो खाँ दौराँ, सरबुलन्दखाँ और सआदतखाँ उसको पदच्युत करने के लिये लड़ा कर रहे थे। अब भगवन्तसिंह को अवसर मिला। उसने बाँदा में मराठों से सन्धि कर ली और उनकी सहायता से वज़ीर के आदमियों को बाहर निकाल दिया और पहिले से ज्यादा साहसी हो गया। यद्यपि वह छोटा-सा ज़मीनदार था, वह साम्राज्य की सम्पूर्ण सैन्य शक्ति से भी विजित न हो सका§।

भगवन्तसिंह के आक्रमण अदण्डित रहे जब तक कि १७३५ के अन्त के पास सआदतखाँ बुर्हानुल्मुल्क की नियुक्ति अवध में अपने पूर्व पद के अतिरिक्त कोड़ा जहानाबाद के फौजदार की जगह पर विधिवत् न हुई। शाही आज्ञा से दिल्ली जाते हुये सआदतखाँ को कमरुद्दीनखाँ का पत्र मिला जिसमें उससे भगवन्त सिंह को दण्ड देने की प्रार्थना की गई थी। सम्भवतया उसको मुहम्मद शाह का एक फरमान भी मिला जिसमें उसको कोड़ा जहानाबाद के शासन पर नियुक्त किया गया था। तुरन्त उसने अपने क़दम पीछे मोड़े, बाईं ओर मुड़ा, गंगा को पार किया और शीघ्र प्रयाण कर ६ नवम्बर १७३५ को कोड़ा जहानाबाद पहुँच गया। भगवन्त सिंह जिसके गुप्तचरों ने नवाब के आगमन की सूचना उसको समय पर दे दी थी, अपनी १०-१२ हज़ार की सेना*, लेकर ग़ाज़ीपुर से बाहर निकाला और यकायक कोड़ा के पास बुर्हानुल्मुल्क पर आ धमका। सआदत खाँ ने, जो दिन भर की कूच के बाद विश्रान्ति न हो सका था, अपने ४० हज़ार सैनिकों की विशाल सेना को और तोपख़ाने की एक टुकड़ी को रण के लिये जल्दी से तैयार किया और अपने तोपचियों को

---

‡ वारिद २२२ ब; हादिक़ ६८३; इलियट ८; ३४२; पेशवा दफ्तर संग्रह; जिल्द १; पत्र नं० ६।

§ पूर्ववत्।

* पेशवा दफ़्तर संग्रह, जिल्द १४, पत्र नं० ४०, ४१ और ४२। इलियट जिल्द ८, पृ० ५२ पर रुस्तम अली संख्या २५ हज़ार बताता है जो अशुद्ध है।

बढ़ते हुये शत्रु पर अग्नि वर्षा करने की आज्ञा दी। शत्रु के तोपखाने द्वारा विनाश से न रुक कर भगवन्त सिंह चतुरता से विनाशक अग्नि से बच कर अबूतुराब खाँ के सैन्य दल पर, जो नवाब के अग्र दल का नेता था, इतना घातक आघात किया कि उसका दल सर्वथा अस्त व्यस्त हो गया। तुरन्त ही अबू तुराब के हाथी की ओर अपने घोड़े को एँड़ लगा कर वीर राजपूत ने अपने प्रतिद्वन्दी की छाती में इतने ज़ोर से अपना भाला फेंका कि वह उसकी पीठ को पार कर हौदा की लकड़ी में जा घुसा। तुरन्त निष्प्राण होकर अबू तुराब खाँ हाथी पर गिर पड़ा। अब स्वयं सआदत खाँ के विरुद्ध भगवन्त सिंह बढ़ा जिस पर मीर खुदायार खाँ, जो नवाब के पक्ष पर ६ हज़ार सवार और एक हजार तोपची लिये अपने स्थान पर डटा हुआ था, शत्रु का सामना करने मुड़ा। बहुत साहस से आगे बढ़ कर भगवन्त सिंह ने खुदायार खाँ के दल पर आक्रमण किया और उसको भगा दिया। अब वह सआदत खाँ पर झुका। परन्तु रण की इस दशा पर इतिहासकार मुर्तज़ा हुसैन खाँ के चाचा शेख रूहुल अमीन खाँ बिलग्रामी, ग़ाज़ीपुर के शेख अब्दुल्ला खाँ और कोड़ा के दुर्जनसिंह चौधरी ने सआदत खाँ के दक्षिण पक्ष से और अजमतुल्ला खाँ ने वाम पक्ष से उसको सब ओर से घेर लिया और तीरों से उसको बींध दिया। भगवन्त सिंह ने अडिग होकर शत्रुओं का सामना किया और अपने कई आक्रान्ताओं को मार डाला। परन्तु इस बीच में, सियार के लेखक के अनुसार वह दुर्जन सिंह की गोली से मारा गया जो उसका नातेदार था परन्तु शत्रु से जा मिला था ‡। दोनों दलों

† कहा जाता है कि यात्रा के बाद जब सआदत खाँ ने अपने डेरे में प्रवेश किया वह हरे रंग का वस्त्र धारण किये हुये था और उसके लम्बी सफ़ेद दाढ़ी थी। भगवन्तसिंह के गुप्तचरों ने इसको ध्यान से देख लिया और इस कारण से रण के समय उसने अबू तुराब खाँ पर आक्रमण किया जो सआदत खाँ के समान हरे वस्त्र पहिने हुये था और उसके लम्बी दाढ़ी थी। सआदत खाँ ने हरे वस्त्र उतार कर श्वेत वस्त्र धारण कर लिये थे। सियार II, २७१।

‡ सियार II, ४६८। मुस्तफा अनुवादक पाठयांश में बिना प्रमाण के यह जोड़ देता है कि दुर्जन सिंह बहुत दिनों से सआदत खाँ की नौकरी में था। इन्नलिश् अनुवाद, I, २७।

के ५ हज़ार जवान खेत रहे। अपने स्वयं घायल होने के अतिरिक्त सआदत खाँ के अपने वीर और विश्वस्त अधिकारियों में से सोलह और अगण्य संख्या में उसके सैनिक नष्ट हुये। विजयी खाँ ने भगवन्त सिंह के शिर और भुस भरा कर उसकी खाल को दिल्ली भेज दिया जहाँ पर तारीखें हिन्दी के लेखक रुस्तम अली खां ने पुलिस कार्यालय के पास बाज़ार में लटकते हुये उसको देखा। सआदत खाँ ने कोड़ा जहानाबाद की सरकार पर शेख़ अब्दुल्ला ग़ाज़ीपुरी को अपना नायब नियुक्त किया और अपने भांजे और दामाद अबुलमन्सूर खाँ को वहाँ छोड़कर वह स्वय दिल्ली की ओर चल दिया और २ नवम्बर १७३५ को बादशाह की सेवा में उपस्थित हो गया †।

कुछ समय पीछे भगवन्तसिंह के पुत्र रूपसिंह ने, जिसने बुन्देलखण्ड में शरण ली थी, मराठोंके वकील गोविन्द बल्लाल की सहायता प्राप्त करने का प्रयत्न किया और दक्षिणियों की सहायता से अपनी पैतृक रियासत को पुनः प्राप्त करने का विचार किया। रूपसिंह को उसके प्रयास में सहायता देने को बन्देले राजे भी तैयार मालूम हुये‡। अतः अबुलमन्सूर खाँ उसकी उपस्थिति की प्रार्थना करते हुये सआदतखाँ बुर्हानुल्मुल्क को पत्र लिखा। इस पर १८ फरवरी १७३६ को खाँ कोड़ा जहानाबाद के लिये चल पड़ा। परन्तु मराठे और बन्देल खण्ड के राजे भगवन्त के प्लायनकारी पुत्र को दी हुई अपनी प्रतिज्ञा के पालन में उत्सुक न थे क्योंकि न तो मुस्लिम इतिहासकारों के पन्नों में और न मराठों के पत्रों में इस विषय में कुछ सुनने में आता है। जिला ने अवश्य सआदत खाँ बुर्हानुल्मुल्क के शासन को शान्ति से स्वीकार कर लिया होगा*।

---

† वारिद ६८०; इलियट VIII, ३४२ में सआदतेजावेद; इलियट VIII में रुस्तम अली; सियार II, ४६८; शाकिर २२; मअस्दत IV, ६७अ और ब; पेशवा दफ़्तर संग्रह जिल्द १४; पत्र नं० ४०,४१ और ४२।

‡ पेशवा दफ़्तर संग्रह जिल्द, १५, पत्र नं० १०।

* सियार II, ४६८।

अध्याय ५

सआदतखाँ और मराठे

१७३२-१७३८ ई०

उत्तर भारत में मराठों की प्रगति रोकने का सआदत खाँ का प्रस्ताव

वास्तव में बादशाह औरंगजेब मराठों का एक अच्छा मित्र सिद्ध हुआ जिसने उनको दक्षिण में उनके उजाड़ देश से बाहर लाकर उत्तर में मुग़ल साम्राज्य के खंडहरों पर एक वृहत महाराष्ट्र के निर्माण करने की प्रेरणा दी। उसकी मृत्यु के बाद मराठा लूट का क्षेत्र विन्ध्या पार सतत् वृद्धिमान वृत की भाँति बढ़ता गया यहां तक कि मालवा और गुजरात से मुग़ल साम्राज्य के विलोप का भय उपस्थित हो गया। यह पेशवा बाजीराव का गौरव था कि उसने हिन्दु-पद-पादशाही के मराठा स्वप्न को वास्तविक कर बनाया, उसने मालवा में उनकी लूट के क्षेत्र को प्रभावक विजय का रूप दे दिया और अपने देश-वासियों को प्रेरणा दी कि शाखाओं को काटने में व्यर्थ समय लगाने के स्थान पर वह मुग़ल साम्राज्य के सूखते हुये तने पर प्रहार करें। उत्तर मुग़लों के नपुंसक शासन, दरबार में हिन्दुस्तानी और तूरानी दलों के संघर्ष और राजपूतों, जाटों और बुन्देलों की मुग़ल जुवे से मुक्त होने के प्रयासों ने मराठों को उत्तर भारत की राजनीति में हस्तक्षेप करने का स्वर्ण अवसर प्रदान किये। १८ वीं शदी के तृतीय दशक के अन्त तक दक्षिणी आक्रान्ता, जो केवल १० वर्ष पहिले उत्तर निवासियों द्वारा ग्रामीणों की तरह घृणा की दृष्टि से देखे जाते थे, गुजरात, बन्देलखण्ड और मालवा के वास्तविक स्वामी बन गये। १७३२ ई० से आगे उनके कार्य-क्षेत्र ने चम्बल की रेखा को पार कर लिया और आगरा के राजकीय नगर के अति समीप पहुँच गया। अशक्त मुग़ल दरबार के विलासप्रिय सामन्त इसके अतिरिक्त और कुछ न कर सके कि स्वच्छन्द लुटेरों के झुण्डों के विरुद्ध प्रयास करने का दिखावा करते और समय को विलासी

व्यसनों में नष्ट करते। दरबारी दल का नेता चतुर शमसुद्दौला पेशवा को प्रसन्न करने के पक्ष में था और बादशाह को परामर्श दिया कि आक्रान्ता की मांगे मान ली जायें। जयपुर के मित्र राजा जयसिंह ने भी मराठों के प्रति अनुरञ्जन की नीति का प्रतिपादन किया जिनका उसकी सम्मति में शारीरिक बल से प्रतिरोध नहीं किया जा सकता था।

सम्रादतखाँ बुर्हानुल्मुल्क ने स्थिरता से खाँ दौराँ और जयसिंह की नीति का विरोध किया और हस्तक्षेपियों के विरुद्ध ससैन्य प्रतिरोध का प्रतिपादन किया। कमरुद्दीन खाँ वजीर ने विलासमग्न होने पर भी सम्रादतखाँ का अनुमोदन किया जिसका साथ मुहम्मद खाँ बंगश, ज़फ़र खाँ तुर्रेबाज, सर बुलन्द खाँ और अन्य मुस्लिम सरदारों और जोधपुर के अभयसिंह ने दिया। अवध के साहसी राज्यपाल का निज़ाम के साथ पत्र व्यवहार हुआ—सम्भवतः उसको यह प्रेरणा देने के लिए कि शत्रु को दक्षिण में व्यस्त रखे†। उसने बादशाह से प्रस्ताव किया कि उत्तर भारत में मराठों की प्रगति रोकने का भार वह स्वयं लेने को तैयार है यदि उसको अपने प्रान्त अवध के अतिरिक्त आगरा और मालवा की भी राज्यपाली दे दी जाये। उसने मुहम्मदशाह को कहा—'मराठों को गुप्त सहायता देकर जयसिंह ने सारे साम्राज्य को नष्ट कर दिया है। यदि हुजूर मुझे आगरा और मालवा की राज्यपाली दे देवें, तो मैं कोई आर्थिक सहायता न माँगूँगा। उसने (जयसिंह) एक करोड़ रुपये माँगे हैं, परन्तु मेरे ही कोष में पर्याप्त धन है। और निज़ाम जिसके हाथ में दक्षिण है मेरा मित्र है—वह नर्मदा पार करने से मराठों को रोक देगा'। बादशाह पर इसका प्रभाव पड़ा। १७३४—३५ के असफल राजकीय आक्रमण के लिए और उनके द्वारा सहमत होकर बाजीराव को मालवा की चौथ के २२ लाख रुपये देने के लिए खाँदौराँ और जयसिंह पर उसने फटकार लगाई। परन्तु खाँदौराँ और जयसिंह के षड्यन्त्रों ने, जिन्होंने निज़ाम और सम्रादतखाँ के बीच मैत्रीस्थापन के संकट की अतिशयोक्ति द्वारा बादशाह को भयभीत कर दिया था, इस योजना को व्यग्र कर दिया। मीर बख्शी ने बादशाह को यह कह शान्त किया

†पेशवा दफ्तर समह जिल्द १४, पत्र नं० ४२, ५० और ५४ और जिल्द १५, पत्र नं० ८८ और ६१।

कि उसने बाजीराव को वही परगने जागीर में देने का वचन दिया है जो हठी रुहेलों और दूसरी विरोधी जातियों के हाथों में थे और वह भी इस शर्त पर कि वह भविष्य में राजकीय प्रान्तों पर अतिक्रमण करने से बाज़ रहे। इसके अतिरिक्त मराठा सरदार राज गद्दी के प्रति स्वामि-भक्त था। उसने आगे कहा—'शक्ति से मराठे हराये नहीं जा सकते। मैं बाजीराव को कम से कम उसके सहोदर चिमना जी को राजी कर लूँगा कि बादशाह को सेवा में उपस्थित हो जाये। यदि उसकी इच्छा-पूर्ति हो गई, राजकीय प्रदेश उपद्रव मुक्त हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि सआदत खाँ और निजाम मिल गये तो दूसरा वे बादशाह गद्दी पर बैठा देंगे†। मुहम्मदशाह भयभीत हो गया। सआदत खां के दूसरे प्रस्ताव का, कि वह बिहार में नियुक्त कर दिया जाये और मालवा मुहम्मद खां बंगश‡ को दे दिया जाये, भाग्य वही रहा। हम यह मान सकते हैं कि सआदत खाँ और उसके मित्र सङ्कट के परिणाम को समझ न सके और यह असम्भव स्वप्न देखते रहे कि उत्तरकी ओर मराठा प्रसरण को पूर्णतया रोका जा सकता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि यदि सआदत खाँ के हाथ में सर्वोपरि अधिकार सौंप दिया जाता, यदि मुहम्मदशाह और साम्राज्य के समस्त साधन उसके हाथ में होते, बाजीराव अपनी सदा बढ़ने वाली माँगों को कम करने पर विवश हो जाता। चूँकि ऐसा न हुआ साम्राज्यवादियों ने मराठा टुकड़ियों से अलग अलग लड़कर अपनी शक्ति का ह्रास कर दिया।

२—भदावर के राजा को सैनिक सहायता भेजने में सआदत खाँ असफल—१७३७ ई०

अपने वार्षिक आक्रमणों के तीन वर्ष पीछे बाजीराव साम्राज्य से मालवा छीन लेने में सफल हो गया जब उसको उस प्रान्त का उपराज्य-पाल नियुक्त कर दिया गया। परन्तु चूँकि पेशवा की मुख्य माँगें पूरी स्वीकृत नहीं हुई थीं, वह दक्षिण को वापस गया और १७३७ के दशहरा के बाद भव्य तैयारियाँ करके उसने नर्मदा को पार किया, और बाजीभीव राव को पहिले ही भेज दिया कि छत्रपाल के दो पुत्रों हृदयशाह और जगतराज का सहयोग प्राप्त कर ले और भदावर, जटवाड़ा, उर्छा के

†पूर्ववत्—जिल्द १४, पत्र नं० ४७।
‡पूर्ववत्—जिल्द १४, पत्र नं० ३६।

व्यसनों में नष्ट करते। दरबारी दल का नेता चतुर शमसुद्दौला पेशवा को प्रसन्न करने के पक्ष में था और बादशाह को परामर्श दिया कि आक्रान्ता की मांगे मान ली जायें। जयपुर के मित्र राजा जयसिंह ने भी मराठों के प्रति अनुरञ्जन की नीति का प्रतिपादन किया जिनका उसकी सम्मति में शारीरिक बल से प्रतिरोध नहीं किया जा सकता था।

सआदतखाँ बुर्हानुलमुल्क ने स्थिरता से खाँ दौराँ और जयसिंह की नीति का विरोध किया और इसतरह विपियों के विरुद्ध ससैन्य प्रतिरोध का प्रतिपादन किया। कमरुद्दीन खाँ वजीर ने विलासमग्न होने पर भी सआदतखाँ का अनुमोदन किया जिसका साथ मुहम्मद खाँ बंगश, ज़फर खाँ तुर्रेबाज, सर बुलन्द खाँ और अन्य मुस्लिम सरदारों और जोधपुर के अभयसिंह ने दिया। अवध के साहसी राज्यपाल का निज़ाम के साथ पत्र व्यवहार हुआ—सम्भवतः उसको यह प्रेरणा देने के लिए कि शत्रु को दक्षिण में व्यस्त रखे[1]। उसने बादशाह से प्रस्ताव किया कि उत्तर भारत में मराठों की प्रगति रोकने का भार वह स्वयं लेने को तैयार है यदि उसको अपने प्रान्त अवध के अतिरिक्त आगरा और मालवा की भी राज्यपाली दे दी जाये। उसने मुहम्मदशाह को कहा—'मराठों को गुप्त सहायता देकर जयसिंह ने सारे साम्राज्य को नष्ट कर दिया है। यदि हुजूर मुझे आगरा और मालवा की राज्यपाली दे देवें, तो मैं कोई आर्थिक सहायता न माँगूँगा। उसने (जयसिंह) एक करोड़ रुपये माँगे हैं, परन्तु मेरे ही कोष में पर्याप्त धन है। और निज़ाम जिसके हाथ में दक्षिण है मेरा मित्र है—वह नर्मदा पार करने से मराठों को रोक देगा'। बादशाह पर इसका प्रभाव पड़ा। १७३४—३५ के असफल राजकीय आक्रमण के लिए और उनके द्वारा सहमत होकर बाजीराव को मालवा की चौथ के २२ लाख रुपये देने के लिए खाँदौराँ और जयसिंह पर उसने फटकार लगाई। परन्तु खाँदौराँ और जयसिंह के षड्यन्त्रों ने, जिन्होंने निज़ाम और सआदतखाँ के बीच मैत्रीस्थापन के संकट की अतिशयोक्ति द्वारा बादशाह को भयभीत कर दिया था, इस योजना को व्यग्र कर दिया। मीर बख्शी ने बादशाह को यह कह शान्त किया

---

[1] पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १४, पत्र न० ४३, ५० और ५४ और जिल्द १५, पत्र नं० ८८ और ९१।

कि उसने बाजीराव को वही परगने जागीर में देने का वचन दिया है जो हठी रुहेलों और दूसरी विरोधी जातियों के हाथों में थे और वह भी इस शर्त पर कि वह भविष्य में राजकीय प्रान्तों पर अतिक्रमण करने से बाज़ रहे। इसके अतिरिक्त मराठा सरदार राज गद्दी के प्रति स्वामि-भक्त था। उसने आगे कहा—'शक्ति से मराठे हराये नहीं जा सकते। मैं *बाजीराव को कम से कम उसके सहोदर चिमना जी को राजी कर लूँगा* कि बादशाह की सेवा में उपस्थित हो जाये। यदि उसकी इच्छा-पूर्ति हो गई, राजकीय प्रदेश उपद्रव मुक्त हो जायेंगे। इसके विपरीत यदि सआदत खाँ और निजाम मिल गये तो दूसरा वे बादशाह गद्दी पर बैठा देंगे†। मुहम्मदशाह भयभीत हो गया। सआदत खां के दूसरे प्रस्ताव का, कि वह बिहार में नियुक्त कर दिया जाये और मालवा मुहम्मद खां बंगश‡ को दे दिया जाये, भाग्य वही रहा। हम यह मान सकते हैं कि सआदत खाँ और उसके मित्र सङ्कट के परिणाम को समझ न सके और यह असम्भव स्वप्न देखते रहे कि उत्तरकी ओर मराठा प्रसरण को पूर्णतया रोका जा सकता है। परन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि यदि सआदत खाँ के हाथ में सर्वोपरि अधिकार सौंप दिया जाता, यदि मुहम्मदशाह और साम्राज्य के समस्त साधन उसके हाथ में होते, बाजीराव अपनी सदा बढ़ने वाली माँगों को कम करने पर विवश हो जाता। चूँकि ऐसा न हुआ साम्राज्यवादियों ने मराठा टुकड़ियों से अलग अलग लड़कर अपनी शक्ति का ह्रास कर दिया।

२—भदावर के राजा को सैनिक सहायता भेजने में सआदत खाँ असफल—१७३७ ई०

अपने वार्षिक आक्रमणों के तीन वर्ष पीछे बाजीराव साम्राज्य से मालवा छीन लेने में सफल हो गया जब उसको उस प्रान्त का उपराज्य-पाल नियुक्त कर दिया गया। परन्तु चूँकि पेशवा की मुख्य माँगें पूरी स्वीकृत नहीं हुई थीं, वह दक्षिण को वापस गया और १७३७ के दशहरा के बाद मध्य तैयारियाँ करके उसने नर्मदा को पार किया, और बाजीभीव राव को पहिले ही भेज दिया कि छत्रपाल के दो पुत्रों हृदयशाह और जगतराज का सहयोग प्राप्त कर ले और भदावर, जटवारा, हट्टों के

†पूर्ववत्—जिल्द १४, पत्र नं० ४७।
‡पूर्ववत्—जिल्द १४, पत्र नं० ३६।

सरदारों को और बुन्देल खण्ड के अन्य ठाकुरों को आज्ञापालन के लिए विवश कर दे। इनमें से बहुत संख्या में सरदार सफलतापूर्वक वश में लाए गए। परन्तु सआदत खाँ बुर्हानुलमुल्क के उभारने पर, जिसने उसको सहायता देने की प्रतिज्ञा की थी, और सलाह दी थी कि शत्रु को एक भी कौड़ी न दे, भदावर† के राजा, गोपालसिंह के पुत्र अनरुधसिंह ने बाजी भीवराव के प्रति कठोर वृत्ति धारण कर ली। अतः मराठे राजा के प्रदेश में शीघ्र ही घुस गये और उसके अधिकृत प्रदेशों में विधिपूर्वक लूट और विनाश का क्रम प्रारम्भ कर दिया। बुर्हानुलमुल्क द्वारा प्रतिज्ञात सैन्य साहाय्य पर भरोसा करके ७ हजार सैनिकों और ४५ हाथियों को लेकर अनरुधसिंह वीरता से अपने कस्बे आटर के बाहर आ गया जो चम्बल के डेढ़ मील दक्षिण में गोहद से २६ मील उत्तर-पूर्व है। वहाँ से २ मील की दूरी पर अति संख्यक शत्रु से रण हुआ। राजा के भाइयों में से एक के द्वारा, जो अपने वंश के शत्रुओं—मराठों—से मिल गया था, उकसाये जाने पर मराठों ने अपनी आधी सेना अनरुधसिंह से लड़ने के लिये छोड़ दी और आधी को उसकी राजधानी हस्तगत करने के लिए भेज दिया। गोहद और बरहद के कस्बों में से होकर इस आधी सेना ने राजा की राजधानी से दूर हट कर, उसकी सेना को बाईं ओर बहुत दूर छोड़ दिया और वह अकस्मात् आटेर के कस्बे के सामने प्रकट हुई और नगर को लूटना और उजाड़ना शुरू कर दिया। अपनी राजधानी को बचाने की चिन्ता से शत्रु से सारी राह लड़ता हुआ अनरुधसिंह अपनी राजधानी को वापस आ गया। यद्यपि वह सुरक्षित वापस गढ़ में पहुँच गया उसकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई थी और उसके साधन समाप्त हो चुके थे। उसने शर्तों को जानने की याचना की और १० हाथियों के अतिरिक्त २० लाख नकद रुपये देने पर अपनी रियासत

---

†भदावर कुछ मील पर आगरा के पूर्व और दक्षिण पूर्व में था। मुर्तजा हुसैन खाँ ने इसकी सीमायें इस प्रकार दी हैं—उत्तर और पश्चिम में चम्बल और दक्षिण में महगवाँ का गाँव। महगवाँ, जो गोहद के कस्बे से ५ कोस है, भदावर और गोहद के प्रदेशों को विभाजित करता था। देखो हादिक पृ० १६६। महगवाँ करीब १७ मील आटर के दक्षिण में और ११ मील गोहद के उत्तर पूर्व में है। नोट ५६ से।

के अधिकार में रहने दिया गया। यह २८ फ़र्वरी† १७३७ को हुआ।

सम्रादतखाँ को बादशाह का आदेश था कि वज़ीर और मीरबख्शी को, जो उस समय मराठों के विरुद्ध युद्ध के लिये जा रहे थे, अपना सहयोग दे। अतः वह अबुल्मन्सूरखाँ सफदरजंग, शेरजंग और एक बड़ी सेना लेकर आटेर के पतन के कुछ दिन पहिले फ़ैज़ाबाद से चला—दो प्रयोजन लेकर—बादशाह की आज्ञा का पालन और अपने स्वर्गीय मित्र के पुत्र अनरुधसिंह भदवरिया को सैनिक सहायता देना। इटावा जिले के पास पहुँचकर उसको सूचना मिली कि भदावर का राजा हार चुका है और यमुना के पुलों और घाटों पर मराठों ने अधिकार कर लिया है। अतः वह भावी घटनाओं की दिशा की प्रतीक्षा में तुरन्त रुक गया‡।

मल्हरराव हुल्कर की पराजय—२३ मार्च १७३७ ई०

आटेर के पतन के बाद मल्हरराव हुल्कर, पिलांजीजादो और विठोजी बुले के नेतृत्व में एक दल ने द्वाब को लूटने के लिए और सम्रादतखाँ के वजीर और मीरबख्शी से मिलन को रोकने के लिए यमुना को मार्च*१७३७ में रापरी के कस्बे के पास पार किया। शिकोहाबाद के कस्बे से, जो डेढ़ लाख रुपये के मुक्तिधन देने के कारण छोड़ दिया गया, पार होकर वे फीरोज़ाबाद और एतिमादपुर को बढ़ गये और आगरा के समीप मोती बाग़ तक उन्होंने देश का विनाश कर दिया और क़स्बों को लूटा लिया और जला दिया। तब आगरा के उत्तर-पूर्व में २६ मील पर जलेसर के कस्बा की ओर वे बढ़े जहां पर २३ मार्च १७३७ को प्रातः ही १२ हज़ार घुड़सवार सेना सहित अबुल्मुन्सूर खाँ उनको दृष्टिगत हुआ। यह सम्रादत खाँ के दल के हरावल का नेता था जिसने द्वाब में मराठों के प्रवेश का समाचार जलेसर के पास पहुँचने के लिये ८५ मील की शीघ्र

---

†शाकिर ३७; इलियट VIII पृ० ५३ पर रुस्तमअली; सरदेसाई I (२तीय संस्करण) पृ० ३५६; पेश्वा दफ्तर संग्रह, जिल्द १५, पत्र न० ४७।

‡शाकिर ३७; सियार II ४०५; पेश्वा दफ्तर संग्रह जिल्द १५, पत्र नं० ४७।

*इर्विन, ल० म० II २८० में तारीख़ ज़िलहिज़ (ऐप्रिल १७३७) है जो गलत है। इलियट VIII पृ० ५३ पर रुस्तमअली वही ग़लती करता है।

कूच की थी। अब अबुलमुन्सूर खां की सेना को छोटी समझकर मराठों ने अपनी परम्परा-गत युद्ध शैली के अनुसार उसको चारों ओर से घेरने का प्रयत्न किया। बिना घिरे हुये खां धीरे-धीरे पीछे हटा और शत्रु को सआदत खां की मुख्य सेना के पास जो ५० हजार की थी खींच ले गया। बुर्हानुलमुल्क के रुद्र आक्रमण ने मराठों को तितर बितर कर दिया और वे अत्यन्त अव्यवस्था और भय में भाग निकले। बहुत मीलों तक प्लायकों का पीछा किया गया और आगरा के १० मील उत्तर-पूर्व में एतिमादपुर के तालाब के पास उनमें से करीब एक हजार पकड़ लिये गये। बाकी यमुना पार कर गये और दूसरी अप्रैल १७३७ को ग्वालियर के पास कोटिला पर बाजीराव से जाकर मिल गये।

अपनी विजय पर गर्व से सआदत खां ने २४ मार्च को बादशाह और सामन्तों को अपनी सफलता का अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन भेजा। उसने लिखा कि उसने २ हजार मराठों को मार डाला है, २ हजार मराठे मल्हरराव और विटोजी बुले सहित यमुना में डूब कर मर गये हैं, और वह शेष मराठों को चम्बल पार भगाने जा रहा है। बादशाह खां पर बहुत खुश हुआ, उसको बहुमूल्य पुरस्कारों से पुरस्कृत किया और मराठा वकील को दरबार से निकाल दिया‡। सआदत खां ने अब आगरा को कूच की और वहां कुछ दिन ठहर कर शमसुद्दौला और मुहम्मदखां बंगश से मथुरा के पास २२ अप्रैल १७३७ को जा मिला* वहाँ एक दिन

†सरदेसाई जिल्द I (रतोर से) पृ० ३६०; शाकिर ३७-३८ इलियट जिल्द ८, पृ० ५३—५४ पर रुस्तमअली; इलियट ८, पृ० २६२ पर तारीखे इब्राहीमी; सियार II, ४५७ हादिक़ ३८४; और क़ासिम ३८७। फारसी इतिहास ग्रन्थ सआदत खाँ के अतिशयोक्ति पूर्ण वर्णन पर निर्धारित होने के कारण कुछ अंश तक ग़लत वृत्तान्त देते हैं। ला० म० II २८७ के लिए भी यही सत्य है।

‡ ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र, पत्र नं० २७; पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १५, पत्र नं० ४५, २३, २७ और २८। भिन्न भिन्न पत्रों में दी हुई संख्याओं में कुछ अन्तर है। स्वयं बाजीराव द्वारा दी हुई संख्यायें मुझे मान्य हैं।

*शाकिर पृ० ३८ कहता है कि मल्हरराव पर अपनी विजय के बाद सआदत खाँ आगरा से १८ कोस दूर धवलपुर बारी की दिशा में दो दिन तक मराठों का पीछा करता रहा, परन्तु शत्रु का कोई पता न लगा।

जबवे मौज कर रहे थे उनको पता लगा कि बाजीरावदिल्ली पर चढ़ गया है। अपने वकीलढंडो गोविन्द से जिसको मीर बख्शी ने अपने शिविर से निकाल दिया था, सम्रादत खाँ के असत्य आविष्कार का हाल सुनकरपेश्वा ने दिल्ली पर आकस्मिक धावा करने का निश्चयकिया था। बाजीभीवराव को सम्रादत खाँ का ध्यान बटाने के लिए द्वाब में छोड़कर पेश शीघ्र प्रयाण द्वारा पेश्वा अप्रेल (७ जिल्हिज ११४६ हि०) को दिल्ली पहुँच गया। बादशाह उसका दरबार और दिल्ली के लोग मराठों के सहसा प्रकट होने पर भयग्रस्त हो गये और नगर की रक्षा के बाज़योग्य प्रबन्ध किए‡

चौथे दिन जब वह चम्बल की ओर प्रस्थान करने वाला था कि शत्रु को उसके पार भगा दे, उसको समसमुद्दौला के, जो सम्रादत खां के प्रति ईर्षालु था, अत्यावश्यक पत्र मिले जिनमें उससे प्रार्थना की गई थी कि जब तक वह उसके साथ न हो जाये वह ठहरा रहे। समसमुद्दौला ३ या ४ दिनों में पहुंचा और उतने ही दिन अमोद-प्रमोद में नष्ट किए। इस बीच में बाजीराव दिल्ली पर बढ़ गया था। अतः मराठों का पीछा करने की सम्रादत खाँ की योजना प्रतिहत हो गई। सियार, तारीखेमुज़फ़्फ़री और अन्यों ने शाकिर का अन्ध अनुकरण किया है। परन्तु तारीखेहिन्दी सदृश वास्तविक समकालीन फारसी इतिहास ग्रंथों ने वा मराठी पत्रों और लेख्यपत्रों ने उसका समर्थननहीं किया है। वे कहते हैं कि सम्रादतखाँ आगरा के दक्षिण नहीं बढा। वास्तव में बाजीराव, जो खाँ पर बहुत क्रुद्ध था, उत्कण्ठा से आगरा से दक्षिण उसके आगमन की प्रतीक्षा करता रहा कि वह उससे अपना झगड़ा निपटा लेवें। परन्तु दक्षिण की ओर जाने के बजाय सम्रादत खाँ ने मथुरा की ओर प्रयाण किया। खाँ दौरां भी आगरा के दक्षिण नहीं बढ़ा, जैसा शाकिर कहता है, कि वह उधर किसी स्थान पर सम्रादत खां के साथ हो जो जाये, परन्तु वह उत्तर की ओर बढ़ा और मथुरा पर सम्रादत खां से जा मिला। खां दौरां का नाम इस कहानी से जोड़ना बहुत सुखद था क्योंकि यह मालूम था कि वह सम्रादत खां की योग्यता और उसके सौभाग्य के प्रति ईर्षालु है। तथ्यों के लिए देखो—ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र, पत्र नं० २७; इलियट जिल्द ८, पृ० ५४ पर रुस्तमअली, पेश्वा दफ्तर संग्रह, जिल्द १५, पत्र नं० ३४।

‡ब्रह्मेन्द्र स्वामी चरित्र, पत्र नं० २७; पेश्वा दफ्तर संग्रह, जिल्द १५ पत्र नं० ४७ और ३७; इर्विन ल० म० ११ और २८६। यह ६ जिल्हिज (६ अप्रेल) देता है, जो गलत है।

जैसे ही यह भयावह समाचार मथुरा में सआदत खाँ और उसके सामन्त बन्धुओं को पहुंचा, उन्होंने अपना शिविर उखाड़ दिया और दिल्ली के लिए शीघ्र प्रस्थान किया जहां वे ११ अप्रेल को पहुँचे। परन्तु दो दिन पूर्व पेश्वा राजस्थान की ओर चल दिया था†। अब सआदत खाँ ने एक बार फिर प्रस्ताव किया कि यदि सेना का सर्वोपरि अधिकार उसको दे दिया जावे, और यदि आगरा, गुजरात, मालवा और अजमेर के प्रान्त भी अवध के अतिरिक्त उसको दे दिये जावें, वह मराठों को उत्तर भारत से भगा देने के भार को अपने ऊपर ले लेगा। परन्तु खाँ दौराँ और जयसिंह ने, जो सशस्त्र प्रतिरोध की नीति के विरुद्ध थे; अनुरंजन का पक्ष लिया और सआदत खाँ पर यह आरोप लगाया कि उसके द्वारा ही बाजीराव दिल्ली पर धावा मारने पर उत्तेजित किया गया है। मुहम्मदशाह भी शान्ति की नीति की ओर झुका हुआ था। अतः बादशाह के कातर चरित्र पर और विरोधियों के ढङ्ग पर घृणाकुल होकर सआदत खाँ अवध को वापस चला गया ‡।

दक्षिणी अवध में विद्रोह का दमन जून १७३७ ई०

अवध से सआदत खाँ बुर्हानुल्मुल्क की अनुपस्थिति में २० राजपूत सरदारों ने, जिनमें से अधिकांश नवाब को कर देते थे, एक सङ्घ बनाया

---

†अनर्थकता की पराकाष्ठा इमाद देता है जो कहता है कि सआदत खाँ ने बाजीराव को पूर्णतया पराजित किया और उनको निम्नलिखित शर्तों के प्रस्तावित करने पर विवश कर दिया:—

(१) वह अवध पर कभी निगाह न डालेगा जब तक वह उसके परिवार के अधिकार में रहे। (२) वह किसी शत्रु के विरुद्ध सआदत खाँ की सहायता करेगा। और (३) नवाब की स्वीकृति और अनुमति बिना मराठे कभी उत्तर भारत को नहीं आयेंगे। सआदत खाँ ने इन शर्तों को अपमान कारक समझा। वह बाजीराव को पकड़ना और उनको जंजीरों में बांधना चाहता था, परन्तु दिल्ली दरबार के सामन्तों के कातर चरित्र के और खाँ दौरां की ईर्षा के कारण उसको यह विचार छोड़ना पड़ा—इमाद ६–१७। अभियान के विवरण के विषय में भी इमाद का कथन सदृश्य ग़लतियों से भरा पड़ा है। देखो पृ० १४—१७।

‡पेश्वा दफ्तर संग्रह-पत्र नं० २६। इलियट VIII पृ० ३५ पर टिप्पणी।

और अपने नेता तिलोई के राजा नवलसिंह की अध्यक्षता में प्रान्त के दक्षिणी जिलों में कुछ मर्यादा भङ्ग की। सआदत खाँ दिल्ली में था जब उसको विद्रोह का समाचार मिला ‡। उसने तुरन्त अपने जामाता अबुलमन्सूर खाँ को १२ हजार अश्वारोहियों और शक्तिशाली तोपखानों के साथ विद्रोह को दबाने के लिए भेजा। अबुलमन्सार खाँ नवलसिंह की रियासत के बीच तक घुस गया और तिलोई के समीप कुछ गढ़ों पर अधिकार कर लिया। वह दूसरे सरदारों के विरुद्ध व्यस्त ही था कि उसको पता चला कि विद्रोही राजा के कुछ सहायक तिलोई के दक्षिण पूर्व में करीब २६ मील पर स्थित अमेठी के गढ़ में अपनी सेनायें एकत्रित कर रहे हैं। अतः नवलसिंह की रियासत के दमन कार्य को अधूरा छोड़ कर खाँ अमेठी की ओर बढ़ा।

अबुलमन्सूर खाँ के अमेठी की ओर प्रगति मार्ग में नवलसिंह और अमेठी का राजा अपने साथियों के साथ खाँ की सेना के पीछे लगे हुए थे। अकस्मात् शत्रु ने अपने डेरे उखाड़ दिये और इस उद्देश्य से अमेठी की ओर बढ़े कि घेरा डालने वालों को अपने पीछे खोज में घसीट लायें और इस तरह तिलोई के गढ़ पर दबाव को हल्का कर दें। परन्तु अबुलमन्सूर खाँ ने सैनिक चाल में मात खाने से इन्कार कर दिया और १२ जून १७३७ को अमेठी पहुँच गया। २४ घण्टों के अन्दर ही उसने गढ़ को पूर्णतया घेरने का प्रबन्ध पूरा कर लिया। अमेठी बड़ा और दृढ़ गढ़ था जो कहा जाता है अपने वनों की रक्षा में २० हजार अश्वारोहियों को स्थान दे सकता था। इसके चारों ओर गहरी और चौड़ी खाई थी और इसके आधार के पास कटीली झाड़ियों और बबूलों का घना और विस्तृत जङ्गल था। घिरे हुए सैनिक १६ दिनों तक डट कर सामना करते रहे। परन्तु अबुलमन्सूर खाँ की शक्ति और दृढ़ निश्चय ने प्रत्येक विघ्न को पार कर लिया। उसके तोपखाना ने घिरे सैनिकों को बड़ी कठिनाइयों में डाल दिया यहाँ तक कि २८ जून की रात को नवलसिंह और अन्य राजे गढ़ से भाग निकले जिस पर दूसरे ही दिन उपराज्यपाल के सैनिकों ने अधिकार कर लिया।

दोनों पक्षों को बड़ी हानियाँ उठानी पड़ीं। परन्तु सैयद मुहम्मद बिलग्रामी ने दुर्भाग्यवश पूरे आँकड़े नहीं दिए हैं जो केवल एक ही सम-

‡ पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द १५, पत्र नं० २१।

कालीन है जिसने इस अभियान के विवरण को क्रमबद्ध देने का प्रयत्न किया है। इस आक्रमण में नवाब की सेना के एक वीर उच्चपदाधिकारी मीर मुहम्मद मुहसिन उर्फ़ सैयद रोशन बिलग्रामी ने उत्कृष्ट वीरता के लिये उच्च प्रतिपत्ति प्राप्त की। घेरे के पहिले ही दिन एक दूसरे वीर बिलग्रामी सैयद—सैयद अब्दुल्ला को टाँग की पिण्डली में गोली लगी और वह तीन दिन बाद मर गया। वह अमेठी के गढ़ के पास एक तालाब के किनारे दफन है ‡।

इस विजय के बाद अबुलमन्सूर खां अपने मामा को मिलने के लिए वापस आया। वह अपनी सफलता का उचित निरूपण न कर सका। यह प्रायः निर्णायक नहीं थी। राजा नवलसिंह की शक्ति छिन्न नहीं हुई थी—वह केवल तूफान के सामने झुक गया था कि अपने सिर को पुनः उठा सके।

---

‡तब्सीरात २१८ ब और २१६ अ।

अध्याय ६

करनाल का रण और सम्रादतखाँ के अन्तिम दिवस

मुगल दरबार का करनाल को प्रयाण

मध्यकालीन इतिहास में कभी-कभी देश भक्त को डाकू की वृत्ति-धारण करनी पड़ती थी। नादिर भी, जो आरम्भ में तुर्कमान डाकू था, अफ़ग़ान आक्रान्ताओं के विरुद्ध, जिन्होंने १७२२ ई० में शाहहुसैन सफ़वी को राजगद्दी से उतार दिया था, अपने देश का उद्धारक बन गया। तब उसने कन्धार के अफ़ग़ानों के विरुद्ध सैन्य-सञ्चालन प्रारम्भ किया और मुगल बादशाह को अनेक प्रार्थनायें भेजीं कि अपने देश में पलायक अफ़ग़ानों को भाग आने से रोके। चूंकि मुहम्मदशाह ने इन प्रार्थनाओं की अवहेलना की, महत्त्वाकांक्षी ईरानीशाह ने मार्च १७३८ में कन्धार के पतन के बाद ही २६ जून को काबुल और १७ सितम्बर को जलाला-बाद पर एकाएक टूट कर अधिकार कर लिया। सिन्धु को पार कर २१ जून १७३६ को लाहौर को हस्तगत कर लिया और दिल्ली की ओर चल पड़ा।

मुहम्मदशाह स्वयं साम्राज्य पर शासन करने के अयोग्य था। उसका दरबार दलीय संघर्ष और नीच षड्यन्त्र का दृश्य था। दो मुख्य दल—तूरानी और हिन्दुस्तानी—क्रमशः निज़ामुल्मुल्क आसफ़जाह और खाँ दौराँ समसुद्दौला की अध्यक्षता में थे। जब नादिरशाह के पञ्जाब में प्रवेश का समाचार दिल्ली में घोषित हुआ, प्रत्येक दल ने दूसरे पर आक्रमणकारी को आमन्त्रण देने का दोष आरोपित किया। षड्यन्त्र और छल कपट, जो इस सङ्कटकाल में सामन्तों की कूट-चालों में अन्तर्हित हैं, दो परस्पर विरोधी ग्रन्थों में स्पष्टतया प्रकट होते हैं—एक है हिकायते फ़तेह नादिरशाह और दूसरा है जौहरे समसाम—दो क्रमशः निज़ाम और समसुद्दौला के अनुजीवियों द्वारा ईरानी आक्रमण के शीघ्र पश्चात्

ही लिखे गए हैं—इस उद्देश्य से कि भारत में नादिरशाह के उपस्थिति काल में अपने आश्रयदाताओं के गुण की प्रशंसा करें और उनके विरोधियों के षडयन्त्रों को प्रकाश में लावें। सारा वातावरण हानिकारक असत्यों से पूर्ण था कि समकालीनों के लिए भी यह असम्भव था कि सत्य को पहिचान सकें। रुस्तमअली खाँ को भी, जो दलीय संघर्षों से दूर था, यह विश्वास करना पड़ा कि नादिरशाह ने निज़ाम और सआदत खाँ के प्रोत्साहन पर भारत पर आक्रमण किया था‡।

ग़ज़नी के हाथ से निकल जाने के बाद (१० जून १७३८ ई०) पूरे सात मास तक मुग़ल दरबार सर्वथा अकर्मण्य रहा। जब नादिर लाहौर के पास आ गया, तीन बड़े सामन्तों ने—वकीले मुतलक़ निज़ामुल्मुल्क, वज़ीर कमरुद्दीन खाँ और मीरबख्शी खां दौरां शमसुद्दौला २० जनवरी १७३६ को *दिल्ली से चले और २८ को पानीपत पहुंचे; यहां पर ६* फ़र्वरी को बादशाह उनसे आकर मिल गया और तब उन सबने अपनी युद्ध यात्रा पुनः प्रारम्भ की और पानीपत के २० मील उत्तर में करनाल पहुंचे और वहाँ पर अपना शिविर स्थापित किया। राजकीय शिविर नगर के ठीक उत्तर में अली मरदन खां की नहर के पश्चिमी तट पर था जो यमुना से ६-७ मील पश्चिम में है। शिविर के चारों ओर कई मील के घेर की कच्ची दीवार उठाई गई। इस दीवार के चारों ओर गेहरी खाइयां खोदी गईं और आकस्मिक आक्रमणों से रक्षा के लिए सैनिक थाने स्थापित किए गए‡‡।

२२ फ़र्वरी को प्रातः तड़के नादिरशाह सराय आज़िमाबाद से चला और अलीमरदनखां की नहर को अपनी सारी सेना सहित पार करके *मुहम्मदशाह के शिविर से ६ मील उत्तर पूर्व में* अपने डेरे डाल दिए। ईरानी दल में क़रीब ६५ हज़ार लड़ाकू सवार थे जबकि भारतीय सेना के योधा क़रीब ७५ हज़ार की संख्या में थे*।

सआदतखां का करनाल में आगमन—२२ फ़र्वरी १७३६ ई०

राजकीय आमन्त्रण के उत्तर में अबुलमन्सूरखां को अवध की देख-

‡हिकायत २ अ—१४ अ; जौहर ३ अ; इलियट जिल्द ८, पृ० ६० पर रुस्तमअली।

‡‡हिकायत १७ ब – १६ अ; आनन्दराम २४-२५; जौहर ५ अ; शाकिर ४०; क़ासिम ३६२।

*सरकार ल० म० II, ३३७-३८।

माल के लिए छोड़कर ३० हज़ार अश्वारोहियों की सुसज्जित सेना, बहुत-सा तोपखाना और युद्ध सामग्री के विशाल कोष लेकर सआदतख़ां बुर्हानुलमुल्क जनवरी १७३६ के तृतीय सप्ताह में ४५० मील से अधिक लम्बी और दुःसाध्य यात्रा पर चल पड़ा। अपने भतीजों—मिर्ज़ामुहसिन और निसार मुहम्मदख़ां शेरजंग के साथ एक टांग में घाव से पीड़ित होते हुए भी उसने तीन सप्ताह से अधिक का सतत् प्रयाण किया और १७ फ़र्वरी को दिल्ली पहुंच गया। यहां पर वह १८ को ठहर गया ‡ कि उसके थके सैनिकों और बोझ ढोने वाले पशुओं को अत्यावश्यक विश्राम मिल जाए। १६ को प्रातः वह फिर चल पड़ा और दिल्ली और पानीपत के बीच ५५ मील की दूरी को अगले तीन दिनों में पार करके पानीपत को २१ की सायङ्काल को ‡‡ पहुंच गया। पानीपत में रात बिता कर दूसरे दिन तड़के उसने अपनी यात्रा पुनः चालू कर दी और २२ फ़र्वरी को आधी रात से कुछ पहिले करनाल में राजकीय शिविर के पास अपनी सेना के मुख्य भाग सहित पहुँच गया और उसका सामान सैकड़ों ऊँटों पर लदा हुआ धीरे-धीरे पीछे आ रहा था *।

जब वह करनाल से कुछ मील दक्षिण ही में था बादशाह को सआदतख़ां के अपने निकट पहुँचने का समाचार मिला। अतः उसने ख़ां दौरां को आज्ञा दी कि बाहर जाकर अवध के राज्यपाल का स्वागत करे। ख़ां दौरां ने एक मील आगे बढ़कर सआदतख़ां का स्वागत किया और एक ही हाथी पर सवार होकर दोनों ने अर्धरात्रि में शिविर में प्रवेश किया। राजकीय डेरों के पास ही ख़ां दौरां के डेरों के पीछे उसको स्थान दिया गया और बादशाह ने अपनी ही रसोई से उसके लिए खाना भेजा **।

२२ की सन्ध्या के पास करनाल में सआदतख़ां के आगमन के कुछ घण्टे पूर्व ही ईरानी गुप्तचरों ने नादिरशाह को सूचना दी कि ख़ां २१ को सायङ्काल पानीपत पहुँच गया है। इस पर तुरन्त ईरानी बादशाह ने

‡दिल्ली समाचार ३।

‡‡जहां-कुशा २००।

*क़ासिम ३६२; अबुलक़ासिम १४ ब और १५ अ; हरिचरण ३५६ ब; हिकायात १६ ब; आनन्दराम २५; अशोब १६३-६७; ल० म० II ३४६।

**जहां-कुशा २०० और पूर्ववत्।

अपनी सेना की टुकड़ी को आज्ञा दी कि खां का मार्ग रोक दें और उसका और बादशाह का सम्मिलन न होने दें। यद्यपि शत्रु के पता से सम्रादतखां अनभिज्ञ था, वह सौभाग्य से ईरानी हरावल के मार्ग से बच गया और बादशाह से अर्धरात्रि को मिल गया। परन्तु उसकी सामग्री श्रेणी की सुरक्षा का अपर्याप्त प्रबन्ध था। वह धीरे-धीरे पानीपत के कस्बे से आ रही थी‡। ईरानियों ने उसकी प्रगति रोक दी और उस पर आक्रमण किया।

सम्रादत खां लड़ने जाता है—२३ फ़र्वरी १७३९ ई०

दूसरे ही प्रभात सम्रादतखां बादशाह को मुजरा करने गया। दरबार में वह निज़ामुल्मुल्क और अन्य सामन्तों से मिला। शत्रु के विरुद्ध स्वीकारार्थ रण योजना पर विचार करने के लिए युद्ध परिषद् की बैठक हुई। निज़ाम ने प्रस्ताव किया कि रण २५ फ़र्वरी तक स्थगित कर दिया जावे। बादशाह ने अभी इस को अपनी स्वीकृति नहीं दी थी कि व्याकुल कारी समाचार मिला कि ईरानी अग्रदल ने सम्रादत खां की रण सामग्री पर आक्रमण कर दिया है, उसके कुछ आदमी मार डाले हैं और उसके ५०० लदे हुए ऊँट पकड़कर लिए जा रहे हैं।

बहुत अधीर होकर सम्रादत खाँ ने (जिसको अपनी व्यक्तिगत वीरता और अपनी शक्तिशाली सेना पर गर्व था) अपनी तलवार उठा ली जिसको उसने बादशाह के चरणों में रख दी थी और बादशाह से आज्ञा मांगी कि उसको अपने सैनिकों को छुड़ाने के लिए जाने दिया जाये। निज़ामुल्मुल्क ने उसको सावधानता और विलम्ब की आवश्यकता बताई क्योंकि एक मास की सतत् यात्रा के कारण उस सैनिक थक गए थे और दिन भी लगभग बीत चुका था। अन्य सामन्तों और बादशाह ने भी उसी मार्ग के अपनाने पर बल दिया। परन्तु शीघ्र प्रचेता और उग्र-प्रकृति सम्रादत खां युक्तियां सुनने को तैयार न था। एक हज़ार सवार और कई सौ पैदल लेकर, जो उसकी सेवा में उपस्थित थे; वह शाही शिविर से तोपखाना और अन्य वस्तुओं की पूर्ण उपेक्षा करके बाहर निकल आया। उसने कुछ घोषक अपने सैनिकों में यह घोषणा करने भेजे कि वे तुरन्त उससे आ मिलें। परन्तु थके हुए सैनिक डेरों से बाहर न निकले, उन्होंने घोषकों का भी विश्वास नहीं किया क्योंकि वे जानते थे

‡जहांकुशा २००।

कि सआदत खाँ बादशाह की सेवा में गया हुआ है। बहुत हुज्जत बाद क़रीब ४ हज़ार सवार और एक हज़ार पैदल नवाब से जा मिले†।

सआदतखां की पराजय और उसका पकड़ा जाना—२३ फर्वरी १७३९ ई०

नादिरशाह ने, जिसकी सेना सर्वथा चल अश्वारोहियों और तोपखाना की थी, एक दल को मुग़ल गढ़ बन्दी से ३ मील पूर्व में अपने शिविर की रक्षा के लिए नियुक्त कर दिया और अपने ३ हज़ार उत्तम सैनिकों को तीन टुकड़ों में बाँटकर अचानक आक्रमण के लिए छुपा दिया। ऊँटों पर स्थित बहुत सी दो टुकड़ों की घूमने वाली तोपों और सधे हुए ऊँटों पर ज़म्बुर्क उनके आगे रख दिए। ये ऊँट आज्ञा पाते ही बैठ जाते और ये लम्बी तोपें उनकी पीठ पर से चलाई जा सकती थीं। प्रत्येक दो ऊँटों के पीछे एक चबूतरा बनाया गया था जिस पर बारूद और कुछ और विस्फोटक रखे थे जिनसे युद्ध के समय भारतीय हाथियों को भयभीत कर भगाने के लिए आग लगाई जा सकती थी। केन्द्र ईरानी बादशाह के पुत्र राजकुमार नसरुल्ला के अधीनस्थ था और नादिरशाह ने स्वयं पूरे सैनिक वेश में अग्रदल की कमान सभाली। अग्रदल के सामने दो टोलियां—प्रत्येक ५ सौ सवारों की—नियुक्ति थीं कि वे पहिले भारतीय सेना से छेड़ छाड़ करने के लिए भेजी जा सकें और फिर उनको रण स्थल में घसीट लावें ‡।

जब सआदत खां रण-स्थल की ओर बढ़ता हुआ दृष्टिगत हुआ—२३ फ़र्वरी को १ बजे दिन के कुछ ही बाद—तो नादिरशाह ने इन दो टुकड़ियों में से एक को उसके विरुद्ध भेजा। सआदत खां ने ईरानियों को उपयुक्त उत्तर दिया और उन पर प्रबल आक्रमण किया। वे अपनी मुख्य सेना की ओर पीछे हटे—परन्तु अपने तीर और बन्दूकें चलाते हुए और सआदत खां को उस गुप्त आक्रमण स्थान की ओर खींच ले गए जो मुहम्मदशाह के शिविर से क़रीब ३ मील पूर्व में पहिले से ही तैयार था। यह समझ कर कि वह ईरानी हरावल को पीछे हटाने में सफल हो गया है, सआदत खां ने बादशाह के पास तत्कालिक सैन्य सहायता मांगने के लिए द्रुतगामी-सन्देश वाहक भेजे कि वह अपना कार्य समाप्त

†अब्दुलकरीम १५ अ; आनन्दराम २७; मअदन IV ११७ ब; ल० म० II, ३४४।

‡सरकार ल० म० II ३४५-३४६

कर सके। इस बीच में ईरानी अश्वारोहियों के एक ओर हट जाने पर सैकड़ों घूमने वाली तोपों ने, जो गुप्त स्थान में छुपी हुई थीं, उस पर यकायक बौछार की और सआदत खां के बहुत से सैनिकों को मार गिराया। बहुत से घबड़ा गए और रणक्षेत्र से भाग निकले। बिना व्याकुल हुए सआदत खां शत्रु की विनाशक अग्नि के बीच में कुछ और देर तक वीरता से अपने स्थान पर डटा रहा ‡।

जब रण की गति सआदत खां के प्रतिकूल हो रही थी, ८ हजार सैनिकों को लेकर खां दौरां उसकी सहायता देने चला। परन्तु ईरानी डिम्ब योधाओं की दूसरी टोली ने बुर्हानुल्मुल्क के पश्चिम में १ मील से अधिक दूरी पर उसको व्यस्त कर दिया। दो घण्टों तक मीरबख़्शी के सैनिकों ने डटकर शत्रु का सामना किया। परन्तु जब उन्होंने देखा कि कोई आशा नहीं रह गई है, उनमें से करीब एक हजार अपने घोड़ों से उतर पड़े और निराश वीरता पूर्ण पैदल लड़ते रहे यहां तक कि वे सब मार डाले गए। स्वयं खां के मुख में प्राणघातक घाव लगे और वह मूर्छित होकर हौदे में गिर गया। सूर्योदय के समीप मजलिसराय और उसके अन्य स्वामिभक्त सैनिकों ने उसको उसके डेरे में पहुंचा दिया §।

सआदतखाँ बुर्हानुल्मुल्क, जिसके दो घाव लगे थे और जिसकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई थी, अपने कुछ नातेदारों और मित्रों सहित अब भी नादिर की तोपों की प्राणहारक अग्नि की बौछार में डटा हुआ था। उसके हाथी के पास अपने हाथियों पर सवार उसका भतीजा शेरजंग और उसका भांजा मिर्जा मुहसिन (अबुलमन्सूरखाँ सफदरजंग का बड़ा भाई) और कुछ भक्त अनुचर भी थे जो अपने स्वामी के साथ प्राण अर्पण करने को तैयार थे*। यदि एक घटना दुर्भाग्य से उसको न रोक लेती, अत्यधिक सम्भावना है वह रणक्षेत्र से सकुशल लौट आता। उसके भतीजे शेरजंग का हाथी यकायक बिगड़ गया और वश के बाहर हो गया। उसने दुष्टता से सआदतखाँ के हाथी पर आक्रमण किया और उसको शत्रु दल में ढकेल दिया। बन्दी होने से बचने के लिये सआदतखाँ वीरता से वीर

‡अब्दुल करीम १५ अ; हरिचरण ३६० ब; आनन्दराम २७; हिकायात २४; जौहर ७ ब।

§आनन्दराम २७-३१; जौहर ८ ब-६ ब; हिकायात २५ अ और ब; सरकार ल० म० II २४७-४८।

*जौहर १ अ०।

चलाता रहा। ठीक उसी समय उसको जन्मभूमि निशापुर का एक नवयुवक तुर्कमान सैनिक, जो ख़ाँ को पहिचान गया था, जल्दी से घोड़े पर उसके पास आया, लटकती हुई रस्सी को पकड़ कर हाथी पर चढ़ गया और उससे आत्म-समर्पण करने को कहा। सम्रादतख़ाँ ने अपनी वश्यता का संकेत किया और नादिरशाह के शिविर में बन्दी बनाकर ले जाया गया।†

चालाक निजाम और विलासी वजीर के साथ तीसरे पहर देर से मुहम्मदशाह अपनी सारी सेना और तोपखाना लेकर शिविर से बाहर आया। परन्तु उसका दीर्घकाय दल रणक्षेत्र से एक मील दूर परपश्चिम में नहर के किनारे खड़ा रहा और जब सम्रादतख़ाँ और ख़ाँ दौराँ को विवश होकर रणस्थल से हटना पड़ा, बादशाह भी सूर्यास्त पर अपने डेरे को वापस आ गया। रण जो दो बजे दिन को आरम्भ हुआ था ५ बजे पीछे समाप्त हो गया।

सम्रादतख़ाँ का साम-प्रयत्न

इशा नमाज (प्रार्थना) के बाद (क़रीब ८ बजे रात) सम्रादतख़ाँ नादिरशाह के सामने पेश किया गया। ईरानी बादशाह ने इन शब्दों में उससे प्रश्न किया :—

'हमारी तरह आप ईरानी हैं और फिर भी अपने समान धर्म का (शिया-सम्प्रदाय) बिना कुछ ध्यान रखे हमसे लड़ने के लिये आप सर्व प्रथम आये।' सम्रादतख़ाँ ने उत्तर दिया—'यदि मैं सर्वप्रथम न आता और सब को मात न दे देता तो हिन्दुस्तान के सरदार और सामन्त मुझ पर यह दोषारोपण करते कि मैं विश्वासघात कर हुजूर से मिल गया हूँ। "ईरानी" शब्द ही इस देश में तिरस्कार सूचक हो जाता। ईश्वर को धन्यवाद कि मैं हुजूर के दयालु और न्याय-शील हाथों में आ गया हूँ और अपने साथ राजद्रोह और विश्वासघात के कलङ्क नहीं लाया हूँ।'

नादिरशाह इस चतुर उत्तर से बहुत प्रसन्न हो गया और कहा—"मैं आपको एक सम्मानित पद पर ईरान और भारत में पहुँचा दूँगा‡।"

तब शाह अपने मतलब पर आया और कहा—"मुहम्मद अमीन,

---

† क़ासिम १६३।

‡ इमाद २५।

तुम्हारे बादशाह का क्या इरादा है ! इस निकम्मी फ़ौज से उसका कौन प्रयोजन निकल सकता है जिसकी कमान खाँ दौराँ ने आज की ! वह भाई की तरह मेरे पास क्यों नहीं आता है ?" परन्तु उसने स्वीकार किया कि भारतीय सैनिक अत्यन्त वीरता से लड़े । यह टिप्पणी अपनी ओर से उसने और लगाई कि वे मरना जानते हैं, परन्तु लड़ना नहीं† । सआदतखाँ ने राजदूत योग्य उत्तर दिया । उसने कहा—"बादशाह के साधन विस्तृत हैं—उसका केवल एक ही सामन्त लड़ने आया था और वह वापस चला गया है क्योंकि दुर्भाग्यवश उसके एक गोली लग गई थी । परन्तु बहुत से अमीर और वीर राजे हैं जिनके पास अब भी अगणित सेना है । युद्ध का भाग्य किसी एक सामन्त पर निर्भर नहीं है ।" नादिरशाह घबड़ा गया और शान्ति करना निश्चित कर लिया । अपनी मातृभूमि के प्रति सआदतखाँ की भक्ति को और उसके साम्प्रदायिक प्रेम को भी प्रेरित करते हुये उसने सआदतखाँ को कोई योजना प्रस्तावित करने पर राज़ी कर लिया जिसके द्वारा मुहम्मदशाह से कुछ धन उसको मिल जाये और वह सुल्तान तुर्की से लड़ने वापस चला जाये । सआदतखाँ ने उत्तर दिया—"भारत साम्राज्य की कुञ्जी आसफ़जाह के हाथ में है । हुज़ूर उसको बुलायें और उससे शर्तें तय करें‡ ।

दूसरे ही दिन प्रभात २४ फ़र्वरी को नादिरशाह ने निज़ाम को आमन्त्रण भेजा और उसको और बादशाह को आश्वासन दिलाया कि कोई भी विश्वासघात न होगा । सआदतखाँ ने भी उसी तात्पर्य का पत्र बादशाह को लिखा । निज़ाम ने आमन्त्रण का सत्कार किया और ईरानी शिविर में पहुँचने पर शाह ने उसका अच्छा स्वागत किया । लम्बे वाद-विवाद के बाद युद्ध का हर्जाना ५० लाख रुपया निश्चित हुआ । २५ को नादिर-शाह के आमन्त्रण के उत्तर में बादशाह ने उससे भेंट की, ईरानी शाह के साथ भोजन किया और निज़ाम द्वारा किए गए समझौते को प्रमाणित करने के बाद सायं से कुछ पहिले ही अपने शिविर को वापस आ गया । भारतीय सेना की बहुत कुछ चिन्ता अब दूर हो गई* ।

---

† हरिचरण २६१३ अ ; इलियट ८—पृ० ९२ पर रुस्तमअली ।

‡ हादिक़ २८४ ; सियार II, ४८१ ; म० उ० I ४६६ ; सरकार ल० म० II ३४८ ।

*सरकार ल० म० II ३४८-३६५ ।

सआदत खाँ को उत्तेजना पर नादिरशाह द्वारा शान्ति भंग

२५ फ़र्वरी १७३६ को सूर्यास्त के ४ घण्टे बाद शमसुद्दौला, राजकीय मीरबख्शी का देहान्त हो गया। जैसे ही उसको यह समाचार ज्ञात हुआ निज़ाम जल्दी से बादशाह के पास पहुँचा और उससे प्रार्थना की कि रिक्त स्थान उसके ज्येष्ठ पुत्र ग़ाज़ीउद्दीन खाँ फ़ीरोज़ेजंग को दे दिया जाये। क़मरुद्दीन खाँ के भतीजे अज़ीमुल्लाखाँ ने आयु में बड़ा होने की युक्ति पर अपना दावा पेश किया और उसकी प्राप्ति में असफल होने पर नादिरशाह से जा मिलने के लिए चल पड़ा। परन्तु निज़ाम और वज़ीर उसको मार्ग से लौटा लाये और उसको शान्त करने के लिए दक्षिण के वृद्धषड्यन्त्रकारी ने स्वयं उस पद का भार ग्रहण किया ‡।

ईरानी सेना में सआदत खाँ को जब मीरबख्शी के पद पर निज़ाम की नियुक्ति का समाचार मिला, वह क्रोध से पागल हो गया। अपने अभ्युदय की प्रभात से वह आशा बाँधे हुए था कि एक दिन वह शाही सेना का मुख्य पदाधिकारी और साम्राज्य का प्रथम सामन्त हो जाएगा, और उसकी महत्वाकांक्षा को सफल करने में निज़ाम ने उसको सहायता देने का वचन दिया था। परन्तु जब उसने सुना कि अपनी प्रतिज्ञा को भंग कर निज़ाम ने वह स्थान स्वयं प्राप्त कर लिया है, सआदत खाँ ने ईर्षा और बदला की भावना से ईरानी विजेता को अगले सम्मिलन पर बताया कि ५० लाख रुपया जो उसने युद्ध का प्रतिफल निश्चित किया है, बहुत कम है, और यदि वह स्वयं दिल्ली जाये, वह आसानी से अगणित रत्नों और बहुमूल्य वस्तुओं के अतिरिक्त २० करोड़ रुपए नक़द प्राप्त कर सकता है। उसने आगे कहा—'इस समय राज दरबार में निज़ाम से बढ़कर कोई दूसरा सामन्त नहीं है और निज़ाम धूर्तऔर दार्शनिक है। यदि यह धोखे बाज़ फांस लिया जाए तो हुज़ूर की इच्छानुसार ही सब कुछ होगा। यदि हुज़ूर आज्ञा दें मैं अपने सैनिकों और सामान को राज शिविर से मांग लूँ और हुज़ूर के शिविर में उनको रख दूँ"। नादिरशाह बहुत प्रसन्न हुआ और सआदत खाँ को ऐसा करने की अनुमति दे दी। तदानुसार सआदत खाँ ने अपने सैनिकों को उनके सामान और अस्त्र-शस्त्र सहित बुला लिया और उनको ईरानी शिविर के पास ही ठहरा दिया* ।

‡हरिचरण ३६४ ब; ख० म० II ३५५-५६।

‡‡हरिचरण ३६४ ब; जौहर २४ अ; इलियट ८; पृष्ठ ६३ पर रुस्तमअली; आशोब, २७४-७७; सरकार ख० म० II ३५६।

अगले कुछ दिन उस सन्नाटे में बीत गए जो तूफान के पहिले छा जाता है। दोनों बादशाह अपने स्थानों पर शिविरस्थ रहे और इसके अतिरिक्त और कुछ न हुआ कि निज़ाम ने नादिरशाह से दूसरी बार भेंट की और शाह का वज़ीर निज़ाम के साथ सहभोज के लिए आया। परन्तु ईरानी सेना भारतीय शिविर का घेरा डाले रही जिसके कारण मुहम्मद शाह के शिविर में अकाल की स्थिति उत्पन्न हो गई और संकट उपस्थित हो गया †।

४ मार्च को विजेता की योजना सारे संसार को प्रकट हो गई। उस दिन शाह की आज्ञा-पालनार्थ ईरानी शिविर में तीसरी बार निज़ाम आया। उसका स्वागत अविनय से हुआ और शाह की अधीनता में सेवा करने के लिए २० हज़ार सवारों के अतिरिक्त उससे २० करोड़ रुपये माँगे गये। निज़ाम घबड़ा गया और दण्ड के कम करने की याचना की। उसने कहा कि राजकोष में तत्काल ५० हज़ार भी नहीं मिल सकता है। नादिरशाह ने क्रोध में आकर उस पर मिथ्या भाषी होने का दोष लगाया, उसको बन्दी कर लिया और उसको विवश किया कि बादशाह को लिखे कि वह आकर विजेता से पुनः मिले‡। ६ दिनाङ्क को सिवाय आज्ञापालन के मुहम्मदशाह के पास कोई दूसरा उपाय न था। उसका स्वागत नहीं हुआ, उसका सत्कार नहीं किया गया, कुछ समय तक उसकी उपेक्षा की गई और वह ईरानी रक्षा दल की देख रेख में रख दिया गया। दूसरे ही दिन उसके अन्तःपुर को सामान सहित बुला लिया गया और ईरानी शिविर में उनको ठहरा दिया गया। क़मरुद्दीन खाँ वज़ीर को भी बुलाया गया कि कारागार में अपने स्वामी का साथ दे। छोटे-छोटे अधिकारियों और सैनिकों को आज्ञा दी गई कि शिविर जायें और फिर अपने घरों को च‍े जायें। क़िज़िलबाश लुटेरों और विद्रोही कृषकों द्वारा भाग बचने के प्रयास में बहुत से मार डाले गए*।

सआदतखाँ वकील मुतलक़ नियुक्त किया जाता है और दिल्ली भेजा जाता है।

सआदतखाँ बुर्हानुल्मुल्क को अब विश्वासघात का पर्याप्त पुरस्कार

---

† दिल्ली समाचार ४; सरकार ल. म. II १५७।

‡ हरिचरण १६५ अ.

* सरकार ल. म. II, १६०।

मिला। नादिरशाह और मुहम्मदशाह दोनों बादशाहों की ओर से वह वकील-मुतलक† (पूर्ण शक्तियुक्त राजप्रतिनिधि) के उच्च आसन पर आसीन किया गया। यह गौरव उस समय तक भारत सम्राट की ओर से निज़ाम को ही मिला था। अपने प्रतिस्पर्धी के दमन पर और ईरानी शिविर में अपने कृतघ्न स्वामी मुहम्मदशाह के अपमान पर सम्रादतखाँ की कुचेष्टा अब अवश्य तृप्त हो गई होगी।

७ मार्च को क्रमशः बादशाह और शाह के प्रतिनिधि के रूप में सम्रादत खाँ और तेहमास्पखाँ जालेर ४ हज़ार सवारों के साथ दिल्ली भेजे गये कि राजधानी पर अधिकार कर लें और वहाँ पर विजेता का शासन स्थापित कर दें। उनको यह भी कार्य-भार सौंपा गया कि शाहके आगमन की वहाँ तैयारियाँ करें और इसका ध्यान रखें कि शासन परिवर्तन काल में शाही सम्पत्ति छुपा या हटा न दी जाये। सम्रादतखाँ को दिल्ली के राज्यपाल लुत्फुल्लाखाँ के नाम दो पत्र भी सौंपे गये—एक नादिरशाह की ओर से राज्यपाल को उसके पद पर स्थिरित करता था और दूसरा मुहम्मदशाह की ओर से उसको आज्ञा देता था कि राजभवनों और कार्यालयों की कुंजियाँ तेहमास्पखाँ जालेर को दे दी जायें।

सम्रादतखां और उसका दल ६ मार्च को दिल्ली के समीप पहुँचे। चूँकि खां को यह सूचना मिल चुकी थी कि लुत्फुल्लाखां गढ़ की रक्षा करने का विचार कर रहा है, उसने दिल्ली के उत्तर एक मंजिल से उसको पत्र लिखा कि वह शान्ति से गढ उसके हवाले कर दे। दिल्ली के सूबेदार को इस परामर्श की बुद्धिमत्ता मालूम हो गई और उसने गढ़, राजकीय गोदामों और कार्यालयों की चाबियाँ शाह के प्रतिनिधि को दे दीं‡।

मुहम्मदशाह को साथ लेकर जो विनय के नाते कुछ गज़ पीछे रहता था, ईरानी विजेता ११ मार्च को करनाल से चला और १७ को दिल्ली के उत्तर में शालीमार बाग़ पहुँचा। यहाँ पर दोनों बादशाहों का स्वागत सम्रादतखाँ ने किया जो दिल्ली से एक दिन पहिले निकल चुका था। १८ को दोपहर के पास बाबर और अकबर के पतित वंशज ने अपनी राजधानी में तख्ते-रवाँ (चल सिंहासन) पर प्रवेश किया—मौन, विनम्र, वाद्यहीन और ध्वज-पताका शून्य। दूसरे दिन सूर्योदय के एक घण्टा

†अब्दुल करीम १६ ब; अशोब २६३।
‡शाकिर ४४।

पश्चात् गर्वित ईरानी विजेता ने विशाल जुलूस के साथ मुग़लों के राजभवन में प्रवेश किया—शालीमार बाग़ से राजकीय गढ़ के फाटक तक सड़क के दोनों ओर क़िज़िलबाश सवार पंक्तिबद्ध सुसज्जित खड़े थे। मुहम्मदशाह ने उसका स्वागत किया और अपनी अति मूल्यवान दरियाँ जो चाँदी और सोने के काम से विभूषित थीं और अन्य दुष्प्राप्य वस्त्र बिछा दिये कि वह उन पर अपना पग रखे। दीवान ख़ास के पास शाहजहाँ के प्रिय महल में नादिरशाह ने स्वयं निवास किया और बादशाह को कहा गया कि आज़ाद बुर्ज के पास के कमरे में रहें†।

सआदतख़ाँ की मृत्यु—१६ मार्च १७३६ ई०

दिल्ली में नादिरशाह के आगमन के बाद सआदतख़ाँ बुर्हानुलमुल्क बहुत उच्च पद पर पहुँच गया और ईरानी विजेता से उसको बड़े-बड़े सम्मान प्राप्त हुये। वह सारे दिन उसकी सेवा में उपस्थित रहता और सब सामन्त—छोटे और बड़े—उसके ही द्वारा‡ शाह से मिल पाते। १६ मार्च १७३६ की रात को वह शहर में अपने घर (दारा शिकोह का भवन) को गया और २० को प्रभात के लगभग १ घण्टा पहिले* अकस्मात मर गया। शाहजहानाबाद के बाहर वह दफ़न कर दिया गया§।

सआदतख़ाँ की मृत्यु के कारण और ढंग पर इतिहासकारों में तीव्र मतभेद है। एक समकालीन इतिहासकार अब्दुलकरीम लिखता है—'नवाब बुर्हानुलमुल्क सूर्यास्त तक क़िले में था। परन्तु वह (अपनी टाँग में) अति पीड़ा से पीड़ित था जिसका वह सहन न कर सका। चूँकि उसको अपने सम्मान का बहुत ध्यान रहता था वह सावधान रहा। जब उसकी दशा निराश हो गई, वह अपने घर वापस आ गया और आने वाली प्रभात के कुछ पहिले मर गया+।' दूसरे समकालीन अबुलकासिम लाहौरी का दृढ़ निश्चय है कि सआदतख़ाँ शारीरिक वेदना से मर

†जिहाँकुशा २०४; आनन्दराम ४४।

‡जौहर २५ ब।

*अब्दुलकरीम १६ ब; जौहर २५ अ; अशोब २६६; दिल्ली समाचार ६; ने दूसरे ही प्रभात यह लिखा था।

§इमाद ३०।

+अब्दुलकरीम १६ ब।

गया† । मुर्तज़ाहुसैनखाँ,‡ गुलामहुसैनखाँ,* मुहम्मदअली अन्सारी †† ऐसे बाद के होने वाले इतिहासकारों ने इनका अन्ध अनुकरण किया है। सआदतखाँ बुर्हानुल्मुल्क के नाती शुजाउद्दौला का अवकाश वेतन भोगी हरिचरण दास मानता है कि नवाब अपनी टाँग में नासूर का शिकार हो गया, यद्यपि उसकी मान्यता पक्ष में यह कहना आवश्यक है कि वह यह भी वर्णन करता है कि एक दूसरे उल्था के अनुसार जब नादिरशाह ने वह धन माँगा जिसको उसने देने की प्रतिज्ञा की थी नवाब ने हीरे का चूर्ण खा लिया कि उसका नाम और सम्मान बच जाये और दूसरे दिन प्रभात के क़रीब मर गया S। लखनऊ के गुलामअलीखाँ को, जिसने शुजाउद्दौला के द्वितीय पुत्र सआदतअलीखाँ की अनुजीविकता में इमादुस्सआदत प्रस्तुत किया है, पहिली उल्था अधिक पसन्द है। वह एक बड़ी परन्तु अविश्वास्य पुस्तक में दूसरी उल्था की खुलकर निन्दा करता है कि वह कुछ ईर्षालु निन्दकों का असत्य आविष्कार है§। बाद में होने वाले बहादुरसिंह और हरनामसिंह ऐसे दरबारी चाटुकारों ने इसकी नक़ल की है ×।

अत्यन्त विश्वासनीय समकालीन ग्रन्थ 'तारीखे-हिन्दी' का लेखक रुस्तमअली सआदतखाँ की मृत्यु का वर्णन निम्न शब्दों में करता है :—
ऐसा कहा जाता है कि एक दिन खुले दरबार में नादिरशाह ने कुछ सख्त फटकार के शब्द निजामुल्मुल्क और बुर्हानुल्मुल्क को कहे और दण्ड (शारीरिक) देने की धमकी दी। जब वे दरबार से विदा हुये निज़ामुल्मुल्क ने, असत्य और कपट से जो उसके प्रकृतिगत स्वभाव में थे, बुर्हानुल्मुल्क से कुछ विनम्र और हृदयविदारक शब्द कहे और उसको बताया कि आततायी के हाथों से बचना अब कठिन हो गया है, उसने परामर्श

† क़ासिम ३६५।

‡ हादिक १३५।

* सियार II, ४८५।

†† त. म. ११७ अ; देखो-मख़्दन IV, १२१ अ; म. उ. I, ४८६; खेयद्दीन ६१; आज़ाद ७६ अ; सवानेहात ६ ब।

S हरिचरण ३६६ अ.।

§ इमाद २८।

× इलियट VIII, ३४३ पर सआदते जावेद; इलियट VIII, ४२१ पर यादगारे बहादुरी।

पश्चात् गर्वित ईरानी विजेता ने विशाल जुलूस के साथ मुग़लों के राजभवन में प्रवेश किया—शालीमार बाग़ से राजकीय गढ़ के फाटक तक सड़क के दोनों ओर किज़िलबाश सवार पंक्तिबद्ध सुसज्जित खड़े थे। मुहम्मदशाह ने उसका स्वागत किया और अपनी अति मूल्यवान दरियाँ जो चाँदी और सोने के काम से विभूषित थीं और अन्य दुष्प्राप्य वस्त्र बिछा दिये कि वह उन पर अपना पग रखे। दीवान ख़ास के पास शाहजहाँ के प्रिय महल में नादिरशाह ने स्वयं निवास किया और बादशाह को कहा गया कि आज़ाद बुर्ज के पास के कमरे में रहें†।

सआदतख़ाँ की मृत्यु—१९ मार्च १७३९ ई०

दिल्ली में नादिरशाह के आगमन के बाद सआदतख़ाँ बुर्हानुलमुल्क बहुत उच्च पद पर पहुँच गया और ईरानी विजेता से उसको बड़े-बड़े सम्मान प्राप्त हुये। वह सारे दिन उसकी सेवा में उपस्थित रहता और सब सामन्त—छोटे और बड़े—उसके ही द्वारा‡ शाह से मिल पाते। १९ मार्च १७३९ की रात को वह शहर में अपने घर (दारा शिकोह का भवन) को गया और २० को प्रभात के लगभग १ घण्टा पहिले* अकस्मात मर गया। शाहजहानाबाद के बाहर वह दफ़न कर दिया गया§।

सआदतख़ाँ की मृत्यु के कारण और ढंग पर इतिहासकारों में तीव्र मतभेद है। एक समकालीन इतिहासकार अब्दुलकरीम लिखता है—'नवाब बुर्हानुलमुल्क सूर्यास्त तक किले में था। परन्तु वह (अपनी टाँग में) अति पीड़ा से पीड़ित था जिसको वह सहन न कर सका। चूँकि उसको अपने सम्मान का बहुत ध्यान रहता था वह सावधान रहा। जब उसकी दशा निराश हो गई, वह अपने घर वापस आ गया और आने वाली प्रभात के कुछ पहिले मर गया+।' दूसरे समकालीन अबुलकासिम लाहोरी का दृढ़ निश्चय है कि सआदतख़ाँ शारीरिक वेदना से मर

†जहाँ कुशा २०४; आनन्दराम ४४।

‡जौहर २५ ब।

*अब्दुलकरीम १९ ब; जौहर २५ अ; अशोब २६६: दिल्ली समाचार ६; ने दूसरे ही प्रभात यह लिखा था।

§इमाद ३०।

+अब्दुलकरीम १९ ब।

गया†। मुर्तज़ाहुसैनखाँ,‡ गुलामहुसैनखाँ,* मुहम्मदअली अन्सारी †† ऐसे बाद के होने वाले इतिहासकारों ने इनका अन्ध अनुकरण किया है। सम्रादतखाँ बुर्हानुल्मुल्क के नाती शुजाउद्दौला का अवकाश वेतन भोगी हरिचरण दास मानता है कि नवाब अपनी टाँग में नासूर का शिकार हो गया, यद्यपि उसकी मान्यता पक्ष में यह कहना आवश्यक है कि वह यह भी वर्णन करता है कि एक दूसरे उल्था के अनुसार जब नादिरशाह ने वह धन माँगा जिसकी उसने देने की प्रतिज्ञा की थी नवाब ने हीरे का चूर्ण खा लिया कि उसका नाम और सम्मान बच जाये और दूसरे दिन प्रभात के क़रीब मर गया ऽ। लखनऊ के ग़ुलामअलीखाँ को, जिसने शुजाउद्दौला के द्वितीय पुत्र सम्रादतअलीखाँ की अनुजीविकता में इमादुस्सम्रादत प्रस्तुत किया है, पहिली उल्था अधिक पसन्द है। वह एक बड़ी परन्तु अविश्वास्य पुस्तक में दूसरी उल्था की खुलकर निन्दा करता है कि वह कुछ ईर्षालु निन्दकों का असत्य आविष्कार है§। बाद में होने वाले बहादुरसिंह और हरनामसिंह ऐसे दरबारी चाटुकारों ने इसकी नक़ल की है ×।

अत्यन्त विश्वासनीय समकालीन ग्रन्थ 'तारीखे-हिन्दी' का लेखक रुस्तमअली सम्रादतखाँ की मृत्यु का वर्णन निम्न शब्दों में करता है :— ऐसा कहा जाता है कि एक दिन खुले दरबार में नादिरशाह ने कुछ सख्त फटकार के शब्द निज़ामुल्मुल्क और बुर्हानुल्मुल्क को कहे और दण्ड (शारीरिक) देने की धमकी दी। जब वे दरबार से विदा हुये निज़ामुल्मुल्क ने, असत्य और कपट से जो उसके प्रकृतिगत स्वभाव में थे, बुर्हानुल्मुल्क से कुछ विनम्र और हृदयविदारक शब्द कहे और उसको बताया कि आततायी के हाथों से बचना अब कठिन हो गया है, उसने परामर्श

† क़ासिम ३६५।

‡ हादिक १३५।

* सियार II, ४८५।

†† त. म. ११७ अ; देखो-मअदन IV, १२१ अ; म. उ. I, ४६६; ऐय्हीन ६१; आज़ाद ७६ अ; सवानेहात ६ ब।

ऽ हरिचरण ३६६ अ।

§ इमाद २८।

× इलियट VIII, ३४३ पर सम्रादते जावेद; इलियट VIII, ४२१ पर यादगारे बहादुरी।

दिया कि दोनों उसी समय घर चले जायें और घातक विष का एक-एक प्याला पीकर मृत्यु के मार्ग का अनुसरण करें और अपने जीवन को सम्मान पर बलि कर दें। इसके बाद वह धूर्ताधिराज अपने घर को गया और अपने नातेदारों को अपनी इच्छा प्रकट करके शकर मिश्रित पानी का प्याला पी लिया, अपने ऊपर चद्दर तान ली और सो गया। जैसे ही उसने यह बात सुनी कि बुर्हानुल्मुल्क ने, जो सच्चा सैनिक था और इस कपट से अपरिचित था, विष का प्याला पी लिया और दूसरी दुनिया को सिधार गया†। 'जौहरे शमसम' का लेखक मुहम्मद मुहसिन कहता है कि जब ये रत्न और वह द्रव्य न मिला जिसका सआदतखाँ ने वायदा किया था, नादिरशाह ने उसको आज्ञा दी कि उनको उपस्थित करे, उसको कुछ गालियाँ दीं और उसके मुँह पर थूक दिया। यदि वह द्रव्य शीघ्र उपस्थित न कर सका तो उसने उसको शारीरिक दण्ड देने की धमकी दी। अत्यन्त अपमानित होकर सआदतखाँ वहाँ से चल दिया और अपने महल को पहुँचा। उसका आत्म-सम्मान पुनः पुनः जाग्रत हुआ। अतः उसने विष का प्याला पी लिया और ६ ज़िलहज ११५१ हि० (१६ मार्च १७३७ ई०)* को रात्रि में प्राण छोड़ दिए। रुस्तमअली और मुहम्मद मुहसिन का समर्थन अशोब और मुहम्मद असलम ऐसे अन्य लेखक करते हैं। दिल्ली का एक दैनिक वृत्तकार अपनी दैनिक वृत्त—"वाक़ए शाह आलम सानी" में १० ज़िल्हज ११५१ हि० को अङ्कित करता है कि सआदतखाँ ने विषपान किया और मर गया§। इस कहानी का यह उल्था राजस्थान की मरुभूमि को पहुँचा और बूँदी के प्रसिद्ध कवि सूरजमल ने, जो अपने ग्रन्थ—'वंश भास्कर' के कारण अमर है, इस घटना का निम्न पद्य में वर्णन किया :—

अब इत खान सआदत जानो, मैं हराम यह शाह रिझानो।
जियत नाहिं छोरहिं हजरत इट, यह विचारि विस खाय मरयो शठ‡ ॥

---

†इलियट VIII, ६४-६५ पर तारीखे-हिन्दी।

*जौहर २६१; अशोब २६६; इलियट ८; पृ० १७४ पर मुहम्मद असलम।

§ दिल्ली समाचार ६।

‡वंश भास्कर पृष्ठ ३२८५।

अर्थात् सआदतखाँ ने अब यह जान लिया—मैं हराम (विश्वास घाती) हूँ—यह शाह पहिचान गया है, जीवित रहते वह अपनी हट नहीं छोड़ेगा। ऐसा विचार करके उस शठ ने विष खा लिया और मर गया।

यह बताने के लिए कि दूसरी उल्था अधिक विश्वासनीय है, किसी टीका की आवश्यकता नहीं है। इस लेख से अधिक समकालीन और निष्पक्ष और कोई चीज़ नहीं हो सकती है जो दिल्ली की दिनचर्या में एक तटस्थ वृत्तकार सआदतखां की मृत्यु के कुछ घण्टे बाद देता है। मुहम्मद मुहसिन और अशोब जो उस समय दिल्ली में उपस्थित थे, और रुस्तमअली, जो दरबारी कपट प्रबन्ध और दल संघर्ष से अलिप्त था और जिन्ने इस घटना के एक वर्ष अन्दर ही इसका उल्लेख किया है, इस दिनचर्या का समर्थन करते हैं और छोटे-छोटे विवरण देते हैं। सआदतखाँ के पीछे तीसरी पीढ़ी में लिखे गये हरिचरण दास के वर्णन के अध्ययन से यह प्रभाव पड़ता है कि लेखक स्वयं दूसरे उल्थे में विश्वास करता है और प्रथम अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करने के अभिप्राय से दिया है। गुलामअली और लखनऊ के अन्य इतिहासकार न तो समकालीन हैं और न निष्पक्ष। अब्दुलकरीम और अब्दुलक़ासिम ने, यद्यपि वे समकालीन थे, सआदतखाँ बुर्हानुलमुल्क के देहान्त के बहुत वर्षों पीछे अपनी पुस्तकें लिखीं और इस बात से धोखा खा गए कि सआदतखां अपनी टाँग में घाव से करीब ४ मास पीड़ित रहा। यह घाव बिगड़ कर नासूर हो गया था और इससे उनको विश्वास हो गया कि उसकी मृत्यु इसी कारण से हुई।

अध्याय ७

सआदत खाँ का चरित्र

सआदत खाँ—मनुष्य

यदि सआदत खाँ के चित्रों में, जो लखनऊ में सुरक्षित हैं, अपने जीवित मूल के प्रति कुछ भी सत्यता है, तो वह अवश्य लम्बा, और वर्ण, चौड़े मस्तिष्क, चमकीली आँखों और लम्बी, उठी हुई नाक का सुन्दर मनुष्य रहा होगा। शास्त्रविहित मुस्लिम प्रथा के अनुसार बीच से कटी हुई लम्बी मोछें और छोटी ईरानी दाढ़ी वह रखता था। वृद्धावस्था में उसके लम्बी सरल, सफेद दाढ़ी† थी जिससे उसका शरीर और भी प्रभावशाली दीखता था। उसके अङ्ग सुडौल थे, शरीर रचना पुष्ट, और मृत्यु पर्यन्त उसका स्वास्थ्य असाधारण रूप से अच्छा रहा।

सआदत खाँ अपने स्वभाव और वेष भूषा में सरल और आडम्बर रहित था, समासनों से स्पष्ट और स्वतन्त्र, अपने मित्रों और आश्रितों के प्रति विचारशील और कृपालु। परन्तु अपने से बड़े व्यक्तियों से उसकी नहीं बनती थी। और जब वह शक्तिघन सम्पन्न हो गया वह उच्च सामन्तों और बादशाहों की संगत की अपेक्षा दीन, एकान्तवासियों का साथ अधिक पसन्द करता था‡। उसका चरित्र शुद्ध था और जैसा कि सर बुलन्द खाँ ने ठीक ही कहा था वह सदैव हफ्तहज़ारी के गर्व और शान से चलता था।

तब भी व्यवहार में सआदत खाँ कर्कश और असभ्य नहीं था, वह सुन्दर आचरण, संस्कृत प्रकृति और उत्कृष्ट रुचियों का व्यक्ति था। इन गुणों को क़ासिम लाहौरी एक उपयुक्त फ़ारसी वाक्य द्वारा—'इसने

---

† सियार II, ४६८।

‡ दिल्ली समाचार का परिशिष्ट पृ० १।

अख़्लाक़' (सुशीलता) द्वारा व्यक्त करता है। वह विनीत, समाज-प्रिय, उदार और प्रसन्न-चित्त था। विलियम होये के "दिल्ली के संस्मरण" में एक अज्ञात समकालीन कहता है—वह इतना प्रसन्न-चित्त और हँसमुख था, इतना स्वतन्त्र और सरल कि ६० वर्ष की आयु पर भी, जब उसकी दाढ़ी प्रायः सफ़ेद हो गई थी, उसके मस्तिष्क पर एक भी झुर्री* न थी। प्रायः सब ही ईरानियों की तरह उसके हृदय में भी कवित्व का सञ्चार था और वह कभी-कभी 'अमीन' के उपनाम से कविता लिखता था। अलीक़ुली खाँ दाग़स्तानी द्वारा संकलित "रियाज़ुश्शोअरा" में उसकी कुछ कवितायें संग्रहीत हैं†। सुन्दर उपवनों का उसे प्रेम था, परन्तु सुन्दर स्थापत्य के प्रति उसमें कोई उत्सुकता न थी। उसके सारे भवन साधारण आवश्यक थे जो समय और ऋतु के विनाश का सामना न कर सके और शीघ्र ही शीर्ण हो गये। फ़ैज़ाबाद में उसके अनभिमानी महलों का यही भाग्य हुआ‡।

सआदतखाँ—सैनिक

सआदतखाँ मुख्यतया वीरोचित गुण सम्पन्न योधा था, बड़े सैनिक के लगभग सब ही गुण उसमें थे—असाधारण शारीरिक क्षमता, अदम्य साहस, निःशङ्क उत्साही प्रकृति, सतर्कता, अथक्य सामर्थ्य और परिश्रम सहनशीलता। परन्तु उसके प्रमुख गुण, जिनके कारण वह अपने शत्रुओं के विरुद्ध सफलता प्राप्त कर सका, उसकी व्यक्तिगत शौर्यता और उसका लोह संकल्प थे। अपनी टाँग में घाव से तीन मास तक पीड़ित होने पर भी, जो बिगड़ कर नासूर हो गया था, सआदतखाँ फ़ैज़ाबाद से ४५० मील दूर करनाल पहुँचने के लिये एक मास तक सतत् कूच करता रहा और बिना एक दिन विश्राम किये ईरानियों से अपने आगमन के दूसरे ही दिन उसने युद्ध किया। सब युद्धों में जो वह लड़ा उसने विशेष भाग लिया। वह प्रथम पंक्ति में अपने को निःशंक झोंक देता था। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि महान् युद्ध सञ्चालक के कुछ गुण उसमें न थे। उसके किसी युद्ध में भी हमको कोई नियमित योजना या चतुर संयोग नहीं

* दिल्ली समाचार का परिशिष्ट पृ० २।

† इमाद ३०।

‡ फ़ैज़ाबाद के संस्मरण पृ० ३।

मिलता है। भिन्न-भिन्न स्थितियों के अनुकूल वह अपनी सैनिक चालों को बदल नहीं सकता था—अतः आगरा के जाटों के विरुद्ध उसको हेय असफलता उठानी पड़ी। शत्रु से रण होने के पूर्व अधीरता और अविचार की प्रवृत्ति उसके सारे अस्तित्व में व्याप्त हो जाती थी; परन्तु स्वयं रण में वह शान्त और गम्भीर रहता था।

जब वह अवध का राज्यपाल था, सआदतखां ५० हजार की नियमानुसार सेना रखता था जो आवश्यकता पड़ने पर बढ़कर बहुत बड़ी संख्या को पहुँच जाती थी। उसके सैनिक अश्व, वस्त्र और अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित रहते थे और युद्ध के लिये सदैव तैयार रहते थे। सआदतखां की सेना की सबसे बड़ी और सब से अधिक महत्वशाली शाखा अश्वारोहियों की थी, परन्तु उसके पास पैदल भी थे और उसके मुख्य पदाधिकारी हाथियों पर सवार होते थे। तोपखाना भी उसके पास बहुत था। उन दिनों निस्सन्देह सैनिक परेड और अनुशासन न थे। परन्तु स्वयं सआदतखां के नेतृत्व में रणस्थल में सतत् सेवा और कठिन प्रदेश में लम्बे प्रयाणों से नये रंगरूट भी अनुभवी सैनिक बन जाते थे। इतिहासकार मुर्तजाहुसैन खां, जो कुछ समय बुर्हानुलमुल्क की नौकरी में रहा था, लिखता है कि सआदतखां अपने सैनिकों को कठिन श्रम में व्यस्त रखता था कि यह कार्य उसकी सेना के लिये सुसाध्य हो गया कि एक दिन में ४० कोस के वेग से कूच कर लें*।

सआदत खाँ की सेना में प्रत्येक सैनिक को ३०) प्रति मासिक से वेतन मिलता था। परन्तु वह अपने सैनिकों का मित्र था और वह उनको नियमानुसार मासिक वेतन देने के अतिरिक्त ऋण और उदार पुरस्कारों से भी सहायता देता था। उसकी मृत्यु पर यह पता चला कि उसकी सेना दो करोड़ और कई लाख रुपयों का ऋण उसको चाहती थी‡।

सआदत खाँ—प्रशासक

दक्षिण में आसफजाह निजामुलमुल्क की तरह सआदतखाँ ने इसको अपने जीवन का मुख्य उद्देश्य बना लिया था कि वह अवध में अपने को वास्तविक रूप से स्वतन्त्र कर ले और उसको अपने वंश के परम्परागत

† सियार II, ४७५।

* हादिक ६८४; पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द १५, पत्र नं० २०।

‡ हादिक ६८५; इलियट VIII पृ० ३४३ पर सआदते-जावेद।

अधिकार में कर ले। इस उद्देश्य को बिना बहुत कठिनता व परिश्रम के उसने सिद्ध कर लिया। बिना तकल्लुफ़ उसने राजाज्ञाओं का अवलंघन किया जो उसने अवध छीनने के विचार से उसको दिये जाते थे। मुहम्मद-शाह के राजत्व काल के ६ वें वर्ष में (जुलाई १७२७ ई०—जून १७२८ ई०) उसका आगरा को स्थानान्तर हुआ। जब यह नयी आज्ञा उसको प्राप्त हुई, अपने कार्यभार पर जाने का बहाना करके वह दिल्ली से चल दिया। परन्तु जैसे ही वह आगरा पहुँचा वह बाईं ओर मुड़ गया, यमुना को पार किया और जल्दी से अवध पहुँच गया†।

जब उसने अपने को अवध का एक अधिपति मान लिया, सआदतखाँ ने उसके साथ अपना ऐक्य स्थापित कर लिया, और अपना प्रायः सारा समय उसकी सीमाओं के अन्दर ही बिताता था‡। उसने अव्यवस्था का दमन किया और प्रान्त में स्थायी सरकार स्थापित की। वह सब बड़े जमींदारों को निस्सन्देह निर्मूल न कर सका, परन्तु उनको अपने वश में रखने में वह पूर्णतया सफल हुआ और अपनी विवेकपूर्ण और सहनशील नीति से उसने अपने शासन के प्रति उनका विरोध दूर कर दिया। छोटे ज़मींदारों और कृषकों ने उसके शासन का स्वागत किया क्योंकि शक्ति-शाली सरदारों के अत्याचार से और लूटमार और अराजकता से उनकी रक्षा हुई जो राज्यपाल के जल्द जल्द परिवर्तन पर होते थे और सआदतखाँ ने प्रजा को उसका बदला भी अच्छा दिया। उसकी आन्तरिक नीति का ठीक अनुमान लगाने के लिये हमारे पास कोई विवरण नहीं है, परन्तु फ़ारसी लेखकों के साधारण वर्णनों से यह निश्चय सा मालूम होता है कि उसकी नीति कृषकों की सहायता करना और उनको अत्याचार और अन्याय से बचाने की थी*।

सआदत खाँ केवल सफल सैनिक से बड़ा ही था। उसको नागरिक शासन का कुछ ध्यान था§। समकालीन इतिहासकार इस बात की साक्षी देते हैं कि १७ वीं शती के अन्तिम चरण में किसी राज्यपाल के शासन की अपेक्षा उसका अवध का शासन बहुत अच्छा था और प्रजा सन्तुष्ट

†इलियट VIII ४६ पर रुस्तम अली।
‡दिल्ली संस्करण का परिशिष्ट, पृ० २।
*म० उ० I, ४६६; हादिक़ ३८४; इमाद ८।
§इमाद २६।

और समृद्ध थी। कृषकों से अधिक से अधिक लगान लिये बिना उसने राजस्व को बहुत बढ़ा दिया और अपने अर्थ विभाग को सँभाल लिया। यदि गुलामअली का विश्वास किया जाये सआदत खाँ ६ करोड़ नक़द रुपये छोड़ कर मरा‡। यदि दो करोड़ रुपये§ जो उसके उत्तराधिकारी अबुलमन्सूर खाँ ने नादिरशाह को दिये, जो अवध की सूबेदारी पर मुक्ति-दण्ड के रूप में लगाये गये थे, और दो करोड़ और कई लाख रुपये जिसका व्यय उसके सैनिक उससे लिये हुए पाये गये, गुलामअली के अनुमान में जोड़ लिये जायँ तो कोई कारण नहीं कि यह संख्या अवि-श्वास्य मालूम हो। अपनी विशाल स्थायी सेना पर उसके व्यय पर, और अपने नातेदारों, आश्रितों, ईरानी पुरुषार्थियों और राजदूतों** के प्रति उसकी उदारता पर विचार करते हुए यह भारी धन संचय सआदत खाँ के अर्थ चातुर्य को गौरव देता है।

अपने अधिकारियों के चातुर्य और गुणों को पहिचानने में और उनकी श्रद्धालु सेवा†† का पुरस्कार देने में बुद्धिमान शासक की भाँति सआदत खाँ सदैव उद्यत रहता था। बिहार के राज्यपाल फख्रुद्दौला द्वारा पीड़ित की अवस्था से ग़ाज़ीपुर के शेख़ अब्दुल्ला का उसने उद्धार किया और अपनी सेना में एक अधिकारी के पद पर उसको पहुँचा दिया*। इस आदमी ने अपने नये स्वामी की भिन्न-भिन्न पदों पर श्रद्धा से सेवा की और अपने जन्म के ज़िले ग़ाज़ीपुर में सआदत खाँ के नायब के पद तक उन्नति कर गया†।

---

‡पूर्ववत्।

§जहाँकुशा—फारसी पाठ्यांश पृ० २६७ एक करोड़ कहता है। परन्तु दो हस्तलिखित पुस्तकें, जो इससे पुरानी हैं और जो उदयपुर के विक्टोरिया पुस्तकालय में सुरक्षित हैं, दो करोड़ बताती हैं। देखो पृ० १६१ ब।

**क़ासिम २५० और ३५४ पर कहता है कि मुहम्मदशाह के राजत्व काल के १४ वें वर्ष में सआदत खाँ ने एक ईरानी राजदूत को तीन लाख रुपयों के पुरस्कार भेंट किये और इसके अतिरिक्त उसके सम्मान में अति-व्ययी आमोद प्रमोद हुआ।

††हादिक़ ३८६।

* सियार II ४६६।

† बलवन्त ११ अ।

विलियम होये के 'अज्ञात समकालीन' की निश्चयात्मक दृढ़ प्रतिज्ञा के होते हुये भी कि "हिन्दू काफिरों के दो लाख के लगभग पुत्र, पुत्रियाँ और बहुयें इस्लाम के आशीर्वाद का भोग करने के लिये उसकी तलवार की शक्ति से प्रेरित किये गये‡" अवध में सग्रादत खाँ के प्रशासन का निष्पक्ष विद्यार्थी यह अवश्य ही पायेगा कि वह धार्मिक असहिष्णुता की भावना के वशीभूत न था। ऊपर की उक्ति एकाकी पृथक्त्व में सर्वथा अकेली ही है। समकालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने, जिन्होंने मुहम्मद अमीनखाँ और निज़ाम की मतान्धता की सर्वोत्तम शब्दों में प्रशंसा की है, एक भी शब्द सग्रादतखाँ की असहिष्णुता के विषय में नहीं कहा है। आनन्दराम, हरिचरणदास आदि सहृदय हिन्दू इतिहासकारों ने भी सग्रादत खाँ की कल्पित हिन्दू विरोधी प्रवृत्तियों का कोई उल्लेख नहीं किया है। इसके विपरीत पर्याप्त प्रमाण इस बात का है कि सग्रादत खाँ हिन्दुओं को आश्रय देता था और बहुत से हिन्दुओं को उसने उच्च और उत्तरदायित्व पूर्ण पदों तक पहुँचा दिया था। वास्तव में शिया होने के कारण वह सुन्नियों की अपेक्षा हिन्दुओं पर अधिक विश्वास करता था। जब वह आगरा का राज्यपाल था, उसका नायब – प्रान्त में उसके बाद उच्चतम पदाधिकारी—एक गुजराती ब्राह्मण नीलकण्ठ नागर था। हिन्डवान और बयाना में नवाब की नियुक्ति से उसका मुख्य राजस्व पदाधिकारी एक पञ्जाबी खत्री आत्माराम रहा जिसको, जब सग्रादत खाँ अवध का राज्यपाल हुआ, दीवान – अर्थात् राजस्व और नागरिक न्याय के विभागों

‡ दिल्ली के संस्मर्ण का परिशिष्ट पृ० २। सियर का अनुवादक मुस्तफा फारसी वाक्यांश का, जो सग्रादत खाँ का चरित्र व्यक्त करने के लिये पृ० ४८६ पर पुस्तक की दूसरी जिल्द में दिया हुआ है, ग़लत अनुवाद करता है। वाक्यांश है نشہ مردی و مروت داشت। मुस्तफा ने इसका अनुवाद किया है—"अपने धर्म का वह उत्साही भक्त था"— इंपीरियल अनुवाद जिल्द I, पृ० २७०। मैंने लखनऊ और कलकत्ता की पुस्तकों की तुलना की है और ऊपर के वाक्यांश का दोनों में एक रूप पाया है। इस ग़लत अनुवाद से फ़ारसी न जानने वाले पाठक अवश्य ही भ्रम में पड़ जायेंगे। क्या होये (Hoey) का अनुवाद मुस्तफ़ा के अनुवाद से भिन्न हो सकता है?

† इमाद ५६।

के अध्यक्ष—के पद पर उन्नति दी गई। नवाब ने उसको अपना विश्वास और अपनी सहायता दी और बहुत कम उसके कार्य में हस्तक्षेप किया। दीवान के पुत्रों, पौत्रों और नातेदारों को प्रोत्साहन दिया गया और वे प्रान्त में बड़ी बड़ी जगहों पर नियुक्त किये गये। उसका एक पौत्र राजा लक्ष्मीनारायण सम्राट के दरबार में सआदत खाँ का वकील था और उसने अवध की नवाबी उसके जामाता अबुलमन्सूर खाँ सफदर जंग के लिये प्राप्त की। सआदत खाँ द्वारा हिन्दुओं को आश्रय देने के और बहुत से उदाहरण दिये जा सकते हैं, परन्तु ये यह सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है कि एक असहनशील धर्मान्ध शासक मूर्ति पूजकों पर इतनी कृपायें करने का अपराधी नहीं हो सकता है।

मुगल सामन्तों में सआदत खां का स्थान

एक मात्र आसफ़शाह निज़ामुल्मुल्क के अपवाद के बाद १८ वीं शती के द्वितीय चरण के मुग़ल सामन्तों में सआदत खाँ बुर्हानुलमुल्क निस्सन्देह योग्यतम और सर्वाधिक शक्तिशाली था। क़मरुद्दीन खाँ—वज़ीर—भोगी विलासी था और शराब और स्त्रियों के अतिरिक्त और *किसी वस्तु की चिन्ता नहीं करता था**। *खाँ दौरां शमसुद्दौला "स्त्रियों* में वीर और राजकीय चाटुकार था जिसमें कोई प्रशासनीय योग्यता का अनुभव न था†"। वे सब तीनों मुख्यतया निज़ाम और खाँ दौरां सआदत खाँ की योग्यता और सौभाग्य के प्रति ईर्ष्यालु थे। अपने को मीर बख्शी (राजकीय सेना अध्यक्ष) के पद पर नियुक्त कराने के उसके प्रयासों को उन्होंने अवरुद्ध कर दिया। इस पद पर उसकी लालच भरी निगाहें बहुत समय से लगी हुई थीं और इस जगह के लिये निज़ाम को छोड़कर सारे सामन्तों में वह अधिक से अधिक योग्य था। यदि उसकी यह मनोकामना पूर्ण हो गई होती, *नादिरशाह* काबुल से वापस जाता और ईरानी आक्रान्ता के हाथों अपहरण और जनसंहार की वीभत्सता से दिल्ली बच जाती।

सामान्य स्थिति में अपने आश्रयदाताओं और नियोजकों के प्रति सआदत खाँ स्वामिभक्त और कृतज्ञ था। कई अवसरों पर अपने भूत-पूर्व स्वामी सर बुलन्दखाँ के प्रति उसके कृतज्ञ आचरण की साक्षी मुतंजा

---

* वारिद २२० अ— २२१ ब।

† सरकार, ल. म. II पृ० ३११।

हुसैन खां* देता है। वह उन थोड़े से सामन्तों में था जो साम्राज्य के गौरव के प्रति सतर्क और सचेष्ट थे। १६ वीं शती के चतुर्थ दशक में उत्तर भारत में मराठों के प्रवेश के प्रति मुग़ल प्रतिकार की वह आत्मा था और अपने स्वामी के पक्ष से ईरानी आक्रान्ता का सामना करने में वह सर्व प्रथम था। परन्तु यह सब उसी समय तक जब तक ये उसकी अपनी उन्नति और उत्कर्ष की उपस्थित योजनाओं में बाधक न बन जायें, जिनको अग्रसर करने में वह एक समान कृतज्ञता, स्वामिभक्ति और देश भक्ति के प्रति कोई ध्यान न देता था। अपने महान आश्रय-दाता सैयद हुसैन अली खां की हत्या में उसने सक्रिय भाग लिया क्योंकि वह जानता था कि राज्यपरिवर्तन की आकुलता से उसको अधिक लाभ पहुँचेगा। अपने सम्राट और स्वामी मुहम्मद शाह का उसने विश्वासघात किया क्योंकि वह समझा कि उसको नादिरशाह से अच्छी बनेगी।

सआदत खां के केवल एक पुत्र था जिसका देहान्त युवा अवस्था को प्राप्त करने के पूर्व अपने पिता के जीवन-काल ही में हो चुका था। उसने पाँच पुत्रियां छोड़ीं जिनमें से सबसे बड़ी अबुलमन्सूर खां को ब्याही थी जो अवध के राज्यपाल के स्थान पर अपने ससुर का उत्तराधिकारी हुआ।

---

* हादिक़—३८५।

परिशिष्ट—१

सआदत खाँ का परिवार

भारत में सआदत खाँ ने तीन विवाह किये जिनमें से पहिली बहू का विवाह के बाद जल्दी ही देहान्त हो गया। वह दिल्ली के एक राजकीय पदाधिकारी क़ल्बे अली खाँ की पुत्री थी। दूसरी दो में से एक सैयद तालिब मुहम्मद खाँ की पुत्री थी और दूसरी नवाब मुहम्मद तकी खाँ की पुत्री थी जो एक समय आगरा का राज्यपाल था। उसके केवल एक पुत्र था जिसका देहान्त किशोर अवस्था में चेचक से हो गया था। उसने पाँच पुत्रियाँ छोड़ीं जिनके नाम और उनके पतियों के नाम भी निम्नांकित हैं:—

१—सदरुन्निसा या सदरे जहाँ बेगम—उर्फ़—बेगम साहिबा, अबुलमन्सूर खाँ सफ़दर जंग को ब्याही थी। कहा जाता है वह दासी-पुत्री थी। (देखो अबु तालिब कृत—आसफ़ुद्दौला का इतिहास—वि० होये द्वारा अनुदित पृ० ५०) वह गुणवती, बुद्धिमती और धर्मशीला महिला थी। उसका देहान्त १७६६ में हुआ।

२—इनीगा बेगम उर्फ़ नूरजहाँ—नसीरुद्दीन हैदर को ब्याही थी जो सआदत खाँ की सबसे छोटी बहिन और उसके पति मीर मुहम्मद शाह का पुत्र था। वह प्रथम बंगश युद्ध में लड़ता हुआ मारा गया।

३—हुमा बेगम उर्फ़—बाँदी बेगम, शिमादत खाँ को ब्याही थी जो सआदत खाँ के बड़े भाई, सैयदात खाँ की उपाधि से विख्यात, का पुत्र था।

४—मुहम्मदी बेगम, मुहम्मद कुली खाँ को ब्याही थी जो सफ़दरजंग के बड़े भाई मिर्ज़ा मुहसिन का पुत्र था। मुहम्मद कुली खां शुजाउद्दौला की आज्ञा से मार डाला गया।

५—आमीना बेगम, मिर्ज़ा यूसुफ़ के पुत्र सैयद मुहम्मद खाँ को ब्याही थी*।

---

*इमाद ९-१०। ख़ज़ानेहात २ ब।

परिशिष्ट—२

दीवान आत्माराम और उसका परिवार।

आत्माराम पंजाब में भिलोवाल का खत्री था। सआदत खां ने हिन्डवान और बयाना में उसको अपना राजस्व अधिकारी नियुक्त किया था। अर्थाधिकारी योग्य अपनी चतुरता के कारण और नवाब के प्रति अपनी श्रद्धालु सेवाओं के कारण वह, जब सआदत खां अवध का राज्यपाल हुआ, दीवान के उच्च पद पर आसीन किया गया। उसके तीन पुत्र थे—हरनारायण, रामनारायण और प्रतापनारायण।

हरनारायण राजकीय दरबार में सआदत खां का वकील था।

रामनारायण सफदरजंग का दीवान हुआ।

प्रतापनारायण भी किसी ऊँची जगह पर था।

हरनारायण के तीन पुत्र थे—लक्ष्मीनारायण, शिवनारायण और जगतनारायण। लक्ष्मीनारायण को राजा की उपाधि दी गई थी और सआदत खां के जीवन के अन्तिम दिनों में वह दिल्ली के दरबार में उसका वकील नियुक्त था। वह उस पद पर सफ़दर जंग के सारे समय में रहा। शिवनारायण और जगतनारायण बड़ी-बड़ी जगहों पर थे और सफ़दर जंग के बड़े कृपापात्र थे।

राममारायण के दो पुत्र थे—महानारायण और हृदयनारायण। इनमें से प्रथम को राजा की उपाधि मिली और वह शुजाउद्दौला का दीवान हुआ।

प्रतापनारायण के, जो प्रतापसिंह के नाम से जन प्रसिद्ध था, कोई पुत्र न हुआ। शिवचरण नामक एक बालक को उसने गोद लिया*।

---

*इमाद ५६ ; हादिक़ १५६।

द्वितीय खण्ड

सफ़दर जंग

द्वितीय खण्ड

सफ़दर जंग

द्वितीय खण्ड

सफ़दर जंग

अध्याय ८

अबुलमन्सूर खां सफ़दरजंग, १७०८--१७५४

प्रारम्भिक जीवन और शिक्षा

सफ़दरजंग के पूर्वज

जैसा कि अध्याय ३ में कहा है अबुलमन्सूरखां सफ़दरजंग का आदिनाम मिर्ज़ा मुहम्मद मुक़ीम था और वह जाफ़रबेग खां और सआदत खां बुर्हानुलमुल्क की सब से बड़ी बहन का दूसरा पुत्र था। जाफ़रबेग खां क़रायुसुफ़ का वंशज था जो क़राक़ोनीलो जाति का तुर्क और ईरान के आज़रबेजान प्रान्त में तबरीज़ का शासक था। क़रायुसुफ़ मातृपक्ष से अपनी वंशावली क़ाज़िम से मिलाता था जो दूसरे इमाम हसन का वंशज था। उसको अपने देश से भारत के बाबर और अकबर के प्रख्यात पूर्वज अमीर तैमूर ने (१३६६-१४०५ ई०) निर्वासित कर दिया था। तैमूर के द्वितीय पुत्र शाहरुख़ मिर्ज़ा के शासन काल में क़रायुसुफ़ के पुत्र जहानशाह ने तबरीज़ पर पुनः अधिकार कर लिया जिसके वंशज अपनी पैतृक राज्य पर शासन करते रहे जब तक कि शाह अब्बास प्रथम (१५८२-१६२७ ई०) के समकालीन मन्सूर मिर्ज़ा से उसकी राज्य का अपहरण उस ईरानी राजा ने न कर लिया। अब्बास महान मिर्ज़ा को अपनी राजधानी में लाया, उसको निशापुर के कस्बा में वास करने का आदेश दिया और उसके गुज़ारा के लिये जागीर दी। कहा जाता है कि मिर्ज़ा मुहम्मद मुक़ीम का पिता जाफ़रबेग खां मन्सूर मिर्ज़ा की छठी पीढ़ी में था*।

किशोर अवस्था और शिक्षा, १७०८-१७२२ ई०

जाफ़रबेग खां को अपनी कई स्त्रियों में से सआदत खां की बहिन पर प्रगाढ़ राग था। उससे उसके दो पुत्र हुये—मिर्ज़ा मुहसिन और मिर्ज़ा मुहम्मद मुक़ीम। मिर्ज़ा मुक़ीम केवल ६ मास का था और उसका बड़ा भाई केवल ४ वर्ष का जब उनकी माता अपने वियुक्त पति की देखरेख में

*इमाद—८ और ६।

उनको छोड़कर इस लोक से चल बसी। अतः दोनों बालकों का पालन-पोषण सआदत खां की दूसरी बहिन ने किया जो बुर्हानुलमुल्क के चाचा मीर मुहम्मद युसुफ के पुत्र मीर मुहम्मद शाह को ब्याही थी*। उसके घर में पल कर मिर्ज़ा मुहम्मद मुक़ीम वीर और होनहार बालक हो गया। अध्याय ३ की धारा ६ में यह विश्वास करने की युक्ति दी गई है कि १७२४ ई० में मिर्ज़ा की आयु क़रीब १६ वर्ष की थी। अतः उसका जन्म १७०८ ई० में या उसके आस-पास हुआ होगा।

मिर्ज़ा मुक़ीम उच्च शिक्षा प्राप्त और व्युत्पन्न था। सआदत खां के जीवन काल में और उसके पीछे सरल और प्रवाहात्मक शैली में लिखे हुये उसके पत्र फ़ारसी भाषा पर मिर्ज़ा के अधिकार का संकेत देते हैं। वे प्रायः व्यर्थ आभूषणों, कठिन अलंकारों और अस्पष्ट व्यंजनाओं से मुक्त हैं जो उस समय के फ़ारसी साहित्य में प्रायः मिलते हैं*। मुर्तज़ा हुसैन खां, जो उसको बहुत अच्छी तरह जानता था, ऐसे समकालीन १७३१ ई० के पहिले ही उसके प्रसन्न और गम्भीर स्वभाव, सुसंस्कृत प्रकृति और उत्कृष्ट रुचि की साक्षी देते हैं जिनसे† उसके बचपन से उत्तम लालन पालन का पता चलता है। यह लगभग निश्चित मालूम होता है कि यद्यपि वह सिद्ध विद्वान न हो तब भी अपने जन्म के देश में अध्ययन समाप्त करने के बाद ही मिर्ज़ा मुहम्मद मुक़ीम भारत को आया था।

हमारे पास कोई सामग्री नहीं है जिससे पता लग सके कि उसने अपनी किशोर अवस्था में ईरान में कौन से सैनिक गुण उपार्जित किये। परन्तु मध्य युग की और सब शताब्दियों के समान १८ वीं शती भी ऐसा काल था जब सैनिक योग्यता उन लोगों के लिये भी आवश्यक समझी जाती थी जो नागरिक सेवा या जीवन के नागरिक धन्धों में‡ लगे हुए थे। मिर्ज़ा मुक़ीम इस नियम का अपवाद नहीं हो सकता था क्योंकि उसकी किशोर अवस्था ईरानी इतिहास के एक संकट काल में व्यतीत हुई थी।

---

*सवानेहात—२ अ।

*मन्शूरुलमक़्तूबात।

†हादिक़ ३८५-६—इमाद ३१ भी।

‡मुग़ल सरकार के अधिकारी—चाहे नागरिक, चाहे सैनिक—सब के नाम सेना के सदस्यों में थे। दूसरे भी इस्लामी देशों का यही नियम था।

जब कि अफग़ान राज्यापहारी देश पर छा गये थे और उसके ख़ुरासान के प्रान्त में सर्वथा अव्यवस्था फैली हुई थी। अपने समय की सैनिक विद्या के मूलतत्व तो उसने अवश्य ही उपार्जित कर लिये होंगे। यद्यपि युद्ध-क्षेत्र पर उसका विशेष अधिकार न था, तब भी भारत में अपने समस्त जीवन में वह समानतः सक्रीय सैनिक रहा।

शिष्यत्व काल—१७२४-१७३६ ई०

जब मुहम्मद मुक़ीम करीब १५ वर्ष का था, उसके मामा अवध के राज्यपाल सआदत ख़ाँ बुर्हानुल्मुल्क ने उसको निशापुर से बुला लिया। नवयुवक अप्रैल १७२३ में सूरत पर उतरा और ७०० मील से अधिक पारिश्रमिक यात्रा के बाद क़रीब-क़रीब मास में फ़ैज़ाबाद पहुँचा। चूँकि वह बुद्धि और हृदय के उत्कृष्ट गुणों से सम्पन्न था सआदत ख़ाँ ने अपने भाई के पुत्र निसार मुहम्मद ख़ाँ शेर जंग की अपेक्षा अपनी ज्येष्ठ कन्या सदरुन्निसा उर्फ़ नवाब बेगम को उससे ब्याह दी। तब नवाब ने अवध में उसको अपना नायब नियुक्त कर दिया और बादशाह मुहम्मद शाह से उसके लिये अबुलमन्सूर ख़ाँ की उपाधि प्राप्त की।

अवध के उपराज्यपाल की हैसियत से (१७२४-१७३६ ई०) अबुल मन्सूर ख़ाँ के लिये आवश्यक था कि वह नागरिक और सैनिक धन्धों से सुपरिचित हो जाये जिससे वह पर्याप्त प्रशासनीय अनुभव प्राप्त करने के योग्य हो गया। इससे उसको बहुत लाभ हुआ जब वह अपने मामा और ससुर का राज्यपाल के पद पर उत्तराधिकारी हुआ। सआदत ख़ाँ ने जो उसको अपना पुत्र समझता था उसको अपना उत्तराधिकारी नामज़द कर दिया और प्रान्त के प्रशासन में उसको अपने संसर्ग में ले लिया। उसकी परिपालक देख-रेख में और सुयोग्य धनाधिकारी आत्माराम की देख-रेख में अबुल्मन्सूर ख़ां ने शासन की जटिलताओं को सीख लिया और नागरिक और सैनिक प्रशासन का इतना व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त कर लिया कि अपने शासन के कुछ अन्तिम वर्षों में सआदत ख़ां ने प्रसन्नता से अवध के प्रशासन का पूरा भार उस पर छोड़ दिया और अपने* समय का अधिकांश भाग दिल्ली की राजनीति में व्यतीत किया।

अपने शिष्यत्व काल में अबुल्मन्सूर ख़ां ने युद्ध सचालन में कुछ

* इमाद-१, मक्तूबात ५६-६३।

कम शिक्षण और अनुभव प्राप्त न किया। सब बड़े रणों में जो सआदतखां १७२४ई० के बाद लड़ा हम उसके जमाता को उसके साथ पाते हैं। नवम्बर १७३५ ई० में कोड़ा जहानाबाद के भगवन्तसिंह खीची के विरुद्ध अबुलमन्सूर खां अपने ससुर के साथ में लड़ा। जब इस अभियान की सफल समाप्ति पर सआदत खां दिल्ली को वापस गया, वह उसे अवध की सेना के कमान में कोड़ा छोड़ गया कि वह उस जिला में राज्यपाल के नायब शेख अब्दुल्ला ग़ाज़ीपुरी की मदद दे, नये प्रदेश में व्यवस्था स्थापित करे और मराठों के सम्भव आक्रमण के विरुद्ध देश की रक्षा करे जिनको दिवंगत भगवन्तसिंह के प्लायक पुत्र रूपसिंह ने आमन्त्रित किया था। मार्च १७३७ ई० में उसने मल्हरराव हुल्कर और उसके सैनिकों को जलेसर के कस्बा के पास प्रवंचित कर शनैः शनैः उनको सआदत खां की मुख्य सेना के पास घसीट लाया जिससे अश्वारोहियों के एक आक्रमण से मराठे तितर-बितर हो गये और रणस्थल छोड़कर भाग गये। जून १७३७ ई० में दक्षिण अवध में तोलोई के राजा नवलसिंह के नेतृत्व में कुछ राजपूत सरदारों के गुट्ट को पराजित कर उसने एक विद्रोह को शान्त कर दिया। संघ सदस्यों को जिन्होंने अमेठी के गढ़ में शरण ली थी उसने वहां से निकाल दिया और गढ़ पर उप राज्यपाल के सैनिकों ने अधिकार कर लिया। दिसम्बर १७३७ में सआदत खां ने उसको निज़ाम की सहायतार्थ उसको भेजा जिसको भूपाल में बाजीराव ने घेर लिया था। परन्तु मल्हरराव हुल्कर ने उसका मार्ग काट दिया और वह वापस लौटने पर विवश हुआ*। १७३८ ई० के आरम्भ में रुस्तम अली खां से जवनपुर, मिर्ज़ापुर गाज़ीपुर और बनारस के चार ज़िलों को अपहरण करने के लिये उसने सैन्य-संचालन किया। यद्यपि कोई युद्ध न हुआ वह बल-सेवित कूट-नीति द्वारा अपने उद्देश्य को सिद्ध करने में सफल हुआ और रुस्तम अली खां को प्लायन में शरण ढूँढनी पड़ी।

---

* उत्तर मुग़ल-३६४।

† बलवन्त ६ ब-१२ अ.।

अध्याय ९

सफ़दर जंग. अवध का राज्यपाल १७३६-१७५४

अबुलमन्सूरखाँ का अवध पर स्वत्व असफलतया विवादित

१६ मार्च १७३६ को सआदतखाँ बुर्हानुलमुल्क की मृत्यु पर अवध की राज्यपाली के उत्तराधिकार पर थोड़ा-सा विवाद हुआ। दो उम्मीदवारों में पद के लिये झगड़ा हुआ—शेरजंग और अबुलमन्सूरखां क्योंकि दोनों मृतक के निकट के नातेदार थे। सआदतखां के बड़े भाई सिआदतखां* (मीर मुहम्मद बाक़र) के पुत्र निसार मुहम्मदखां शेरजंग ने तहमास्पशाह जालेर के द्वारा नादिरशाह को याचना-पत्र दिया जिसमें उसने प्रार्थना की कि शाह कृपा करके उसकी मुहम्मदशाह से सिफारिश कर दे और विनम्रता से यह प्रतिपादन किया कि जब तक वह मृतक राज्यपाल के भाई का पुत्र और उसके पद और गौरव का वारिस उपस्थित है रिक्त स्थान अबुलमन्सूरखां को न दिया जाये जो दिवंगत बुर्हानुलमुल्क की केवल बहिन का पुत्र था। अबुलमन्सूरखां के पक्ष से सआदतखां के स्वामी भक्त और वंशगत शाही दरबार में वकील लछमीनारायण ने ईरानी वजीर अब्दुलबाक़ीखां के द्वारा अपना प्रार्थना-पत्र भेजा। उसका तर्क यह था कि सआदतखां के पद और सम्पत्ति का वारिस न अबुलमन्सूरखां था, न शेरजंग जो कि बादशाह के थे जिनको वह अपनी इच्छानुसार किसी को दे सकता था। परन्तु यदि दोनों उम्मीदवारों में निर्वाचन करना हो तो यह विस्मृत न करना चाहिये कि सआदतखां शेरजंग से ज़्यादा खुश न था और उसने अपनी सबसे बड़ी और सबसे अधिक प्यारी कन्या का विवाह शेरजंग की अपेक्षा अबुलमन्सूरखां से किया था यद्यपि शेरजंग उसका अधिक निकट का नातेदार था। अबुलमन्सूरखां निश्चय रूप से अधिक योग्य था। वह सचरित्, विश्वस्त और ईश्वरभक्त था। वह प्राकृतिक गुण सम्पन्न था और अपने स्वर्गीय मामा की सेना में सर्वप्रिय

---

* सियादतखां का देहान्त रजब ११४४ हि० (२६ दिसम्बर १७३१–२७ जनवरी १७३२) में हुआ। देखो—तज़्कीरतुल नाज़िरीन पृ० १०१ अ०

था। सबसे बढ़कर यह बात थी कि अपनी नियुक्ति† की प्रतीक्षा में उसने शाह को भेंट देने की नीयत से दो करोड़ रुपये एकत्रित कर लिये थे।

सफलता या असफलता उम्मीदवारों की आर्थिक साधनों पर निर्भर थी। दोनों में से जो भी ईरानी विजेता को बहुमूल्य उपहारों से प्रसन्न कर सके उसको अवश्य ही अतिशीघ्र वह पद मिल सकता था। चूँकि फ़ैज़ाबाद में उसके मामा का विशाल कोष अबुलमन्सूर खां के अधिकार में था, उसकी प्रार्थना स्वीकृत हुई। दो सौ क़िज़िलबाश* सवार अवध को भेजे गये कि वे दो करोड़ रुपये ले आयें जिसमें सम्रादत खां पर लगाया हुआ मुक्ति-धन भी सम्मिलित था और अबुलमन्सूर खां को प्रान्त की राज्यपाली वेष-भूषा से सुसज्जित कर दें। १३ मई १७३९ ई० को‡ वे एक करोड़ ६० लाख रुपये, कुछ बहुमूल्य वस्तुएँ और एक हाथी ले आये। इस धन में दिल्ली में सम्रादत खां के घर से २० लाख रुपये और मिला दिये गये और शाह के कोष में सारी राशि जमा कर दी गई††। दिल्ली से नादिरशाह के प्रत्यागमन के शीघ्र पश्चात मुहम्मदशाह ने अबुलमन्सूर खाँ को सफ़दर जंग की उपाधि दी और सब सरकारों सहित अवध में उसको स्थिर कर दिया और उसके मामा की सब जागीरें उसको दे दीं*।

सिलोई के राजा की पराजय (नवम्बर १७३९ ई०)

अपनी नियुक्ति के कुछ मास तक अबुलमन्सूर का समय बहुत ही व्यस्त रहा होगा। समकालीन इतिहासकारों ने, जिन सब का राग प्राय:

† इमाद ३०–३१।

* इमाद-३१-सियार-II-४६५ कहता है कि एक हजार सैनिक अवध भेजे गये।

‡ दिल्ली समाचार ६.

†† अब्दुलकरीम २२ ब, हादिक १२५, शाकिर ४७; मात्रादन IV-१२३ ब, सियार II ४८९, इमाद ३१, केवल आनन्दराम पृ० ५२ कहता है एक करोड़। जहां कुशा—ईरानी पाठ २०७ एक करोड़ बताता है, परन्तु दो हस्तलिखित प्रतियां पुस्तक से पुरानी, उदयपुर के विक्टोरिया पुस्तकालय में सुरक्षित पृ० १६१ ब—२ करोड़।

* मकातू पत्र-पत्र नं० १२, १६ और १७।

दिल्ली का इतिहास था, कभी-कभी ही प्रान्तों की घटनाओं पर एक निगाह डाली है। परन्तु फ़ैज़ाबाद के एक इतिहास तारीखें फराहबख्श से पता चलता है कि सआदत खां की मृत्यु के समाचार से अवध विद्रोह पर उत्तेजित हो गया। सब प्रकार के मर्यादाहीन मनुष्यों ने जो अव्यवस्था में फलते फूलते हैं और बहुत से बड़े सामन्तों ने जो अपनी स्वाधीनता को पुनः प्राप्त करने के इच्छुक थे, प्रान्त के भिन्न-भिन्न भागों में अपने सिर उठाये। लखनऊ से १४ मील दक्षिण पश्चिम में अमेठीबन्दगी के ज़मींदार शेख नसरतुल्ला और फ़रहतुल्ला ने सुल्तानपुर ज़िला में हसनपुर, तिलोई और गढ़अमेठी के राजपूत शासकों और तिलोई से करीब ११ मील पर जगदीशपुर के पठानों का जो हाल में मुसलमान हो गये थे, साथ दिया और एक विस्तृत राज विद्रोह खड़ा कर दिया। सफदरजंग कुछ समय तक चिन्ताग्रस्त रहा। परन्तु कुछ आगा पीछा कर अपनी बहू साहसी और गुणवती सदरून्निसा द्वारा उत्साहित होकर नया राज्यपाल अपने मुगलों और तोपखाना लेकर लखनऊ से बाहर निकला और विद्रोहियों को पराजित कर तितर बितर कर दिया जो अब तक अपना संगठन न कर पाये थे और पर्याप्त शक्ति सचय न कर सके थे* प्रान्त के दूसरे भागों में भी ऐसे दूसरे बल्वे लगे हुए होंगे। १७३६ ई० और १७४३ ई० के बीच के बादशाह को लिखे गये सआदत खां के पत्र अवध के बड़े सामन्तों की अग्रवर्तिता की ओर उसकी चिन्ता का संकेत करते हैं जो किसी क्षण कुचेश कर सकते थे। अपने सूबा के दक्षिणी और उत्तर पश्चिमी भागों में दो बाल्तविद्ध और फोटों का और विद्रोही सामन्तों पर अपनी सफलता का वर्णन उसके दो पत्र करते हैं।

शासन में परिवर्तन से लाभ उठा कर सफदरजंग के पैतृक शत्रु तिलोई के राजा ने अपनी स्वाधीनता को पुनः प्राप्त करने का नव-प्रयास किया जिसका अपहरण १७२३ ई० में उसके वीर पूर्वज राजा मोहन सिंह से किया गया था। उसने पर्याप्त रण सामग्री एकत्रित कर ली और अपने निवास स्थान तिलोई के दृढ़ गढ़ में उसने अपनी सेना को केन्द्रित कर लिया जो घने और कटीले जंगल की विस्तृत मेखला से परिवृत था। विद्रोह के दमनार्थ अपनी सेना और भारी तोपखाना को लेकर लखनऊ

---

* विलियम होये का 'दिल्ली और फ़ैज़ाबाद' के संस्मरण-जिल्द-२ पृ० २४६—७

से सफ़दर जंग ने प्रस्थान किया और कुछ दिनों के निरन्तर श्रादमी के बाद १० नवम्बर १७३६ ई० को तिलोई पहुँच गया। नवाब के सैनिकों ने शीघ्र घेरा डाल दिया और उस पर प्रबल आक्रमण किया। राजपूतों ने डट कर सामना किया, गढ़ से बाहर आ गये और करीब दो घण्टों तक खुला भयानक युद्ध हुआ। परन्तु तोपखाना और मुगलों के श्रेष्ठ अनुशासक के विरुद्ध वे जम न सके। राजा के बहुत से सैनिक और उसके कुछ मुख्य अधिकारी मारे गये और शेष की आशा टूट गई और वे रणस्थल से भाग निकले*। विद्रोही के निष्कासन का और कोई प्रयत्न सफदरजंग ने नहीं किया और फैज़ाबाद वापस आ गया। यद्यपि अपने स्वाधीनता के स्वप्न को चरितार्थ करने में राजा असफल रहा, तब भी वह निकाला न जा सका और अपनी रियासत के अधिकार में बना रहा।

कटेसर के नवलसिंह गौड़ की पराजय मार्च १७४१ ई०

सीतापुर के आधुनिक ज़िला में लहरपुर के प्राचीन कस्बा के पास नबीनगर और कटेसर† के विरुद्ध १७४१ ई० के आरम्भ में सफदरजंग को एक दण्डात्मक अभियान पर जाने के लिए विवश होना पड़ा। इन जगहों का शासक राजा नवलसिंह गौड़ अपनी वंशावली एक राजा चन्द्रसेन से जोड़ता था जो ब्रह्मगौड़ वंश का राजपूत था और जो वंश परम्परा के अनुसार दिल्ली से अवध को सआदत खां के साथ आया था और कटेसर में बस गया था। अपने दुर्गों की दृढ़ता पर, अपनी सेना की विशालता और रण सामग्री की प्रचुरता पर गर्वित होकर नवलसिंह ने, जिसने अपनी पैतृक रियासत को बहुत बढ़ा दिया था, स्पष्ट स्वाधीनता का विचार किया और राज्य-कर देने से इन्कार कर दिया। उसके तुरन्त दमन को आवश्यक समझ कर सफदरजंग ने फरवरी १७४१ ई० के अन्त में फैज़ाबाद से कूच किया; और दस दिन से अधिक पारिश्रमिक यात्रा के बाद ८ मार्च को या उसके आसपास नबीनगर पहुंचा। ६ को उसके सैनिकों ने नबीनगर और कटेसर के गढ़ों को घेर लिया जो राजा

---

* मन्शूर-पत्र नं० २७ (बादशाह को) और नं० ३ इसहाक खां को।

† नबीनगर सीतापुर के १७ मील उत्तर पूर्व में और लहरपुर के दो मील उत्तर पश्चिम में है। कटेसर नबीनगर के उत्तर पश्चिम में करीब ३ मील पर है।

की रियासत के केन्द्र में स्थित थे और प्रत्येक पानी से भरी हुई गहरी और चौड़ी खाई से घिरा हुआ था। खाइयों के चारों ओर सफ़दरजंग के सिपाहियों ने भित्तियां खड़ी कर दीं जहां से बड़ी मैदानी तोपों ने दिन रात विनाशक अग्निवर्षा जारी रखी। घिरी हुई सेना ने डटकर सामना किया और वीरोचित साहस से युद्ध किया, परन्तु उसके बहुत से आदमी मारे गये। नवाब ने आज्ञा दी कि बुर्जों के नीचे सुरङ्गें लगादी जायँ और सैनिकों की सहायता के लिये भित्तियां आगे बढाई जायँ। नवलसिंह और उसके अनुचर जो ११ दिन-रात से लड़ रहे थे अब बड़े संकट में फँस गये और अपनी तथा अपने परिवारों की सुरक्षा पर चिन्तित होकर उन्होंने १६ मार्च १७४१ ई० की रात को गढ़ छोड़ दिया*। पलायन मार्ग में गौड़ सरदार के कुछ और आदमी मारे गये। उसका भाई जीवित पकड़ लिया गया। दोनों गढ़ों पर सफ़दर जंग ने अधिकार कर लिया और हर्ष उल्लास से फ़ैज़ाबाद वापस आया†। मालूम होता है समय पर नवलसिंह ने अधीनता स्वीकार कर ली, अतएव उसकी रियासत उसको वापस कर दी गई।

---

* सफ़दर जंग का पत्र शम्बा—(शनिवार) दो मुहर्रम बताता है। २ मुहर्रम ३१ मार्च १७३६ और ३ जनवरी १७४७ को थी। ३१ मार्च १७३६ (नयी शैली-१० अप्रैल १७३६) को सफ़दरजंग फ़ैज़ाबाद में यह प्रयत्न कर रहा था कि वह सूबेदार नियुक्त हो जाये और दूसरी तथा आगे की तारीख़ों में वह दिल्ली में था। अलीवर्दी ख़ां को एक पत्र में जिसमें वह इस ख़ैराबाद (कटेसर) के अभियान का हवाला देता है जैसे कि वह अभी समाप्त हुआ हो, वह कटक में अलीवर्दी ख़ां की सफलता के लिये ईश्वर से प्रार्थना करता है, जिसमें उस समय वह व्यस्त था (देखो मन्शूर पृ० ८६)। ११५४ हि० के आरम्भ में अलीवर्दी ख़ां कटक को पुनः प्राप्त करने में व्यस्त था। अत: कटेसर के सामन्त पर सफ़दरजंग की विजय की तारीख़ सोमवार, २ मुहर्रम ११५४ हि० है। शम्बा (शनिवार) दो शम्बा (सोमवार) के स्थान पर लेखक की ग़लती है। सफ़दरजंग के एक दूसरे पत्र से (देखो मन्शूर पृ० ११४-११५) इसका पूरा निश्चित पता लगता है जो बताता है कि वह १५ ज़िल्हज ११५३ हि० को ख़ैराबाद के समीपदेश में था।

† मन्शूर--पत्र नं० ४ पृ० ६-७।

रोहतास और चुनार के गढ़ों की प्राप्ति

शाही आज्ञा को पाकर सफ़दर जंग ने मुहम्मद शाह की सेवा के प्रति बहुत उत्साह बनाते हुये यह विनम्र प्रार्थना की कि चूँकि उसके प्रान्त में कोई दृढ़ गढ़ न था जहाँ वह अपने परिवार को रख सके यह उसके लिये सम्भव न था कि वह इतने दूर के अभियान पर अपने बाल बच्चों को अवध के उपद्रव प्रेमी सामन्तों की दया पर छोड़कर जा सके जो एक निमिष में अशान्ति पैदा कर देने के समर्थ थे। अपने परिवार को अपने साथ ले जाना भी सुरक्षित नहीं था क्योंकि मराठों के विरुद्ध अभियान का महासकटाकुल होना निश्चित था। अतः उसने प्रार्थना की कि बादशाह उसको रोहतास और चुनार के दृढ़ गढ़ दे देवें जहाँ पर वह अपनी महिलाओं और आश्रितों को रख सके और मराठों से युद्ध करने के लिये उनकी सुरक्षा के विचार से बिना पीड़ित हुये वह जा सके। राज दरबार में अपने वकील राजा लक्ष्मी नारायण* को उसने आदेश दिया कि मुहम्मद शाह पर वह यह अंकित कर दे कि उसके अभियान पर जाने का एक अनिवार्य शर्त उन गढ़ों को उसको देना था और उन गढ़ों का प्रतिदान प्राप्त करने का भरसक प्रयत्न करने का उसको कहा। अमीर खां उमदतुल्मुल्क को भी अपना हाल बादशाह के सम्मुख रखने को उसने प्रेरणा की। चूँकि वह बंगाल की सुरक्षा के प्रति चिन्तित था बादशाह ने उसकी माँगों को स्वीकार कर लिया और दो फ़रमान निकाले जिनमें उन गढ़ों के आज्ञापकों को आज्ञा दी कि उन्हें अवध के राज्यपाल को सौंप दें†।

इन पूर्व विषयों के निश्चित हो जाने पर सफ़दर जंग ने दिसम्बर, १७४२ ई० के आरम्भ में फ़ैज़ाबाद से प्रस्थान किया। उसके अधीन लगभग १७ हज़ार सुसज्जित सवार थे जिनमें नादिरशाह की सेना से भगे हुये ६-७ हज़ार क़िज़िलबाश भी थे, अच्छा तोपख़ाना और अन्य रण सामग्री भी उसके साथ थी। वह पटना की ओर रवाना हुआ। बनारस पहुँच कर उसने गंगा को उसकी आज्ञा पर तैयार नावों के पुल पर पार किया और चुनार की ओर बढ़ चला। दुर्ग की रक्षा के लिये उसने अपने कुछ स्वामि-

था। अतः बादशाह ने सफ़दरजंग को बंगाल जाने की आज्ञा दी।

*मआसूरात, १८३-१८६।

† सियर पु० २, पृ० ५००—२१; मासिरुल उमरा पु० १, पृ० ३६५।

मक सैनिक वहाँ रख दिये और बड़ी सैन्य-सज्जा के साथ उसने बिहार की राजधानी की ओर अपने प्रयान को पुनः प्रारम्भ कर दिया*।

पटना में सफ़दरजंग की कृतियाँ

उसके निकट आगमन पर पटना का ऐतिहासिक नगर भय और त्रास से परिपूर्ण हो गया। इतिहासकार गुलाम हुसैन खां के पिता सैयद हिदायत अलीखां उनका उप राज्यपाल भी जिसका अंश भागी था—वह जनता का भय क़िज़िलबास सैनिकों के आचरण के ज्ञान से उत्पन्न हुआ था जो दिल्ली के जन-संहार में उन्होंने साढ़े तीन वर्ष से अधिक पहले किया था। राजकीय कर्ता मुरीद खां की मध्यस्थता की प्रार्थना करते हुए हिदायत अली खां पटना के पश्चिम कुछ मील पर मानेर तक सफदरजंग का स्वागत करने गया। अवध का राज्यपाल उससे अच्छी तरह मिला और दोनों ने १७ दिसम्बर, १७४२ ई० को पटना की ओर प्रयान किया।

पुराने पटना शहर के बाहर बाँकीपुर में सफदरजंग शिविरस्थ हुआ और हिदायत अली खाँ को अपने और अपने सैनिकों के लिये क़िला खाली करने का निर्देश किया। इन आज्ञाओं के पालन होने के पहिले ही उसने अपने कुछ मुग़ल सैनिक गढ़ के फाटकों पर नियुक्त कर दिये जिससे आवागमन बन्द हो गया। कुछ नौकरों की सहायता से गुलाम हुसैन खां ने, जो उस समय १५ वर्ष का लड़का था, रात्रि में सावधानी से हैबत जंग की सम्पत्ति और नौकरों को और जितना हो सका उसकी उपचार वस्तुओं को भी क़िला के समीप एक उपयुक्त स्थान पर बाहर निकाल ले गया। परन्तु यह स्थान रक्षाहीन सिद्ध हुआ और इसलिये हिदायत अली खां को उन चीज़ों को अपने घर के समीप ही उठा ले जाना पड़ा। दूसरे दिन सफदर जंग ने नगर में साडम्बर प्रवेश किया, गढ़ का पर्यावलोकन किया और अपने अधिकारियों को उसका रक्षा-भार सौंप दिया। इसके बाद वह अपने नाना (स्वर्गीय सआदत खां

*सियर II ४२१. मु-उ.-I ३६५, माअदन IV-१५२ क्षमा याचना के ढंग से कहता है कि सफ़दर जंग केवल बनारस तक बढ़ा और केवल उसके अग्रिम सैनिक पटना पहुँचे। इमाद पृ० ३४ कहता है कि परम्परागत कथन भिन्न-भिन्न हैं। एक कहता है कि उसने पटना में प्रवेश किया—और दूसरा कहता है कि नहीं।

बुर्हानुलमुल्क के पिता) की समाधि के दर्शन करने, जो शहर के बाहर स्थित थी, और वहां नमाज़ पढ़ने गया जहां से वह अपने शिविर बाँकीपुर को वापस हो गया।

नगर के सज्जन, प्रान्त के मनसबदार, ज़मींदार और जागीरदार सफ़दर जंग के दर्शन करने बांकीपुर पहुँचे। परन्तु अवध का गर्वशील राज्यपाल उनमें से उच्चतम व्यक्ति को भी उस सम्मान से जिसका वह पात्र था न मिला। सैयद हिदायत अली खां के विनम्र असम्मति प्रकाश को तिरस्कृत कर उसने दो या तीन हाथियों और तीन या चार बड़ी तोपों पर बलात् अधिकार कर लिया, जो उन सब में अच्छी थी जो बिहार का राज्यपाल हैबतजंग पटना में छोड़ गया था•।

सफ़दर जंग अवध को वापस

जब सफ़दर जंग पटना में खुलमखुल्ला शत्रु की भाँति कार्य कर रहा था अलीवर्दी खां उड़ीसा में कटक के प्रशासन को पुनः संगठित कर रहा था। ६ अक्टूबर १७४२ ई० की पिछली रात में गंगा को पार कर और कटवा में अशक मराठों पर टूट कर उसने भागकर पन्त को बाहर ढकेल दिया था‡। तब वह कटक वापस आया और चूँकि उसे भय था कि मराठे फिर प्रगट हो जायेंगे वह कुछ समय तक वहाँ ठहरा रहा कि अपनी सीमा की रक्षा करे और अपनी सेना का पुनः संगठन करे। यहाँ पर सफ़दर जंग के पटना में आगमन का और पारस्परिक मैत्री सम्बन्ध की उपेक्षा कर गढ़ पर बलात् अधिकार करने का समाचार उसको मिला। वह तुरन्त अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद की ओर चल पड़ा और सफ़दर जंग को यह प्रार्थना करते हुये लिखा कि वह अवध को वापस चला जाये क्योंकि मराठे चिलका झील के पार भगा दिये गये थे। खां ने बादशाह से भी नम्र निवेदन किया कि सफ़दर जंग को पटना से वापस होने की आज्ञा दी जाये क्योंकि उसके ऐसे मित्र की सहायता की उसको आवश्यकता न थी†।

• सियर II ५२१-२२; त० म० ३१ अ० आगुवाराम को हस्तलिखित डेरिय की प्रतिविवरण देती है। इंगलिश डैगट्री के पत्र भी। इमाद और माग्रदन दोनों पटना में सफ़दर जंग के आचरण पर मौन है।

‡ सियर II ५१८-१९ सारदिसाई II ४८८।

* सियर II ५२२; म. उ. I-३६५।

†मन्सूर १५३; सर देसाई II ४१. पेशवा बनारस को गया, वहाँ से

इस पर मुहम्मद शाह ने अपने हाथों से एक टिप्पणी लिखी जिसमें सफ़दर जंग को आज्ञा दी कि वह तुरन्त अवध वापस जाये और इसको दिल्ली में उसके वकील लक्ष्मीनारायण के सुपुर्द किया। यह आज्ञा देकर कि उसे वह यथासम्भव अविलम्ब अपने मालिक के पास पहुंचा दे। परन्तु राजकीय टिप्पणी के पहुंचने के पहिले ही सफ़दर जंग के गुप्तचरों ने उसके आचरण पर अलीवर्दी खाँ के रोष की और बुन्देलखन्ड से बनारस की ओर बालाजी बाजीराव की गति की सूचना उसको भेज दी थी। अपने प्रान्त की रक्षा पर चिन्तित होकर सफ़दर जंग ने, जिसकी पेशवा से पैतृक शत्रुता थी, पटना से प्रयान किया, मानेर पर गंगा को पार किया और अवध के लिये रवाना हो गया*। फ़ैज़ाबाद पहुंचने के पहिले ही उसको चौकाने वाली सूचना मिली कि बालाजी इलाहाबाद के मार्ग से बनारस पहुंच गया है। अपनी राजधानी में बिना प्रवेश किये ही सफ़दर जंग बनारस की ओर जल्दी से बढ़ा और शत्रु का सामना करने के लिये शक्तिशाली सेना के साथ राजा नवलराय को पहिले ही भेज दिया। परन्तु राजा के आगमन के पहिले ही बालाजी ने बनारस छोड़ दिया था। अतः सफ़दर जंग फ़ैज़ाबाद वापस आया†।

गया को और अन्त में मुर्शिदाबाद। वह पहिले पहल अलीवर्दी खां को १० अप्रेल १७४३ को मिला—वही।

* सियर-II ५२२-इमाद पृ० ३४ अशुद्धियों और वैररीत्यों से भरा पड़ा है। त. म. १२३ कहता है कि सफ़दर जंग ने अलीवर्दी खां से १२ लाख रुपये उस व्यय के प्राप्त किये जो पटना से चलने के पहिले यात्रा पर उसने किया था। यह सम्भव है।

† मिन्सूर-पत्र नं० १ महाराणा सदौल को पृ० १५४-१५५।

अध्याय १०

मीर आतिश के पद पर सफ़दर जंग

रुहेलखण्ड का दमन—१७४४-१७४६ ई०

सफदर जंग दरबार में आमन्त्रित—१७४३ ई०

दिल्ली से नादिरशाह के प्रयाण के पश्चात् मुहम्मद शाह ने जो कुछ समय से तूरानी दल* के शक्तिशाली सामन्तों के प्रति शंकित था, ईरानी दल के नेताओं को आश्रय देने की नीति निर्धारित की वह उनका पहिले दल के विरुद्ध प्रतितुलन के रूप में उपयोग कर सके। जो निज़ामुलमुल्क और क़मरुद्दीन खां के विरुद्ध लाये गये, उसके उन नये कृपा पात्रों में सब से अधिक महत्व के अमीर खां उम्दतुलमुल्क और इस्हाक़ खां मुतमनुद्दौला थे जो क्रमशः तीसरे बख़्शी और खालसा के दीवान के उत्तरदायी स्थानों पर आसीन किये गये। बादशाह ने क़मरुद्दीन खां वज़ीर के आसन पर अपने अन्तःकरण रक्षक अमीर खां को बैठाने का भी विचार किया, परन्तु वह घबड़ा गया जब वज़ीर ने त्याग-पत्र देने की धमकी दी और अपने भाई निज़ाम से जा मिलने के लिये दिल्ली से चल दिया जो उस समय शहर के बाहर दक्षिण को प्रयान के इरादे से शिविरस्थ था। निज़ामुलमुल्क की सलाह पर दुखाकुलीकृत वज़ीर की भावनाओं को परितुष्ट करने के लिये अमीर खां १७४० ई० की अप्रैल के आरम्भ में इलाहाबाद भेज दिया गया†। परन्तु अमीर खां के अल्पकालिक निर्वासन में तूरानियों के विरुद्ध षडयन्त्र समाप्त न हुये। दरबार में इस्हाक़ खां ने प्रभुता प्राप्त कर ली और २८ अप्रैल, १७४० ई० को उसके देहान्त के बाद उसके पुत्र मिर्ज़ा मुहम्मद ने, जिसको इस्हाक़ खां नज्मुद्दौला का नाम दिया गया, जल्दी ही मुहम्मद शाह के चित्त पर अपने मृतक पिता की अपेक्षा अधिक अधिकार प्राप्त कर लिया। चूँकि ६ अगस्त १७४० ई० को निज़ाम दक्षिण चला गया था और क़मरुद्दीन खां भोग विलास में लिप्त

*तूरानी मध्य एशिया के सुन्नी थे और ईरानी ईरान के शिया।

†सियर II ४८६-८७; अब्दुलकरीम ८७ अ; त. म. ११६ ब-१२० अ०

था, ईरानी दल दरबार में लाभ-केन्द्र बन गया। इलाहाबाद से अपने दल-सदस्यों के हित को अग्रसर करने में अमीर खां भी संलग्न था। अबुल्मन्सूर खां सफ़दरजंग के रूप में उसको एक धीर पुरुष मिला जो कुछ वर्षों के समय में भारत में ईरानी दल का सर्वाधिक महत्वशाली स्तम्भ बन गया‡।

अगस्त १७४३ ई० के अन्त के समीप मुहम्मद शाह ने ईरानी दल को शक्तिशाली बनाने की इच्छा से अमीर खां और सफ़दरजंग को क्रमशः उनके अपने प्रान्तों इलाहाबाद और अवध से दरबार में आमन्त्रित किया*। अमीर खां की सलाह पर सफ़दरजंग ने जो अब तक सिवाय एक बार अपना प्रान्त एक न एक बहाना पर† छोड़ने मे सावधानता पूर्वक बचता रहा था, बादशाही आज्ञा को पालन करने का निश्चय किया। चूँकि यह सम्मति से तय हुआ था कि अमीर खां पहिले दिल्ली पहुँचे, खाँ ने अपने नायब सैयद मुहम्मद खां को इलाहाबाद में रख दिया और बादशाही राजधानी के लिये चल पड़ा जहाँ वह १७ नवम्बर १७४३ को पहुँचा‡‡।

यात्रा की महती तैयारियाँ करके सफ़दरजंग ने राजा नवलराय को (जो केवल योग्यता के बल से एक साधारण जगह से नवाब की सेना का बख़्शी हो गया था) अपना नायब नामज़द कर दिया; और अपने साथ हिदायत अली खां* और उसके पुत्र गुलाम हुसैन खां को लेकर, जो केवल कुछ घण्टे पहिले विहार से आया था, अपने ज्योतिषी अब्दुल करीम खां के बताये हुये शुभ दिवस पर अक्तूबर के प्रथम सप्ताह में फ़ैज़ाबाद से चला। वह शहर के बाहर कुछ दिनों तक ठहरा रहा और अन्त में

---

‡सियर II ८४७।

*सियर III ८४६। अमीर खां की सलाह पर सफ़दर जंग बुलाया गया। (देखो अब्दुल करीम ८७ अ)।

†मन्सूर-बादशाह को पत्र।

‡‡दिल्ली समाचार २१, सियर III ८५०।

*बिहार के उप-राज्यपाल सैयद हिदायत अली खां पर हैबत जंग और अलीवर्दी खां ने सफ़दर जंग के साथ, जब वह पटना में था, विश्वासघाती सम्पर्क में होने का सन्देह किया था। अतः हिदायत अली खां ने सफ़दर जंग के साथ रहने के लिये बिहार छोड़ दिया था।

अक्तूबर के तीसरे सप्ताह में दिल्ली के लिये रवाना हुआ। गंगा पर कन्नौज और माकनपुर के बीच में एक स्थान पर उसका दल कुछ दिनों की यात्रा के बाद पहुँचा जहाँ पर नवाब नदी पर पुल के निर्माण की प्रतीक्षा में तीन या चार दिन तक ठहरा रहा। जब वह तैयार हो गया उसने नवल राय को अवध वापस भेज दिया और उसने अपने परिवार और सेना के साथ नदी पार की। नवल राय की आज्ञा-वश न रहना पसन्द कर खैराबाद सरकार (आधुनिक सीतापुर ज़िला) का फ़ौजदार सैयद हिदायत अली खाँ ने शिविर में ही रहना ठीक समझा। ईद के दिन जो १७ नवम्बर को आया दल जलेसर पहुँचा। यहाँ पर उस दिन के लिये सफ़दर जंग रुक गया और त्योहार की रस्मों को एक शामियाना में पूरा किया जो इस कार्य के लिये खड़ा किया गया था। दूसरे दिन से प्रयाण पुनः आरम्भ हुआ और जब दिल्ली २ या ३ मञ्ज़िल आगे रह गई शेरजंग और राजा लछमी नारायण शहर से उसका स्वागत करने आये। दो या तीन दिनों में सफ़दर जंग को बादशाही क़िला दृष्टिगोचर हुआ और उसने यमुना के तट से बादशाह को प्रणाम करने की रस्म पूरी की। इसका वर्णन ग़ुलाम हुसैन खां ने, जिसने सारी रस्म अपनी ही आँखों से देखी थी, निम्नलिखित शब्दों में किया है :—

"एक दिन जो मेरी स्मृति से निकल गया है यमुना तट के समीप पहुँच कर सफ़दर जंग ने यह उचित समझा कि अपने को आडम्बर और महिमा से प्रगट करे। अपने भारी सामान को शिविर में छोड़ कर उसने दिल्ली के बादशाही क़िला के सामने सैन्य सज्जा में प्रयान किया। उसके साथ १० हज़ार से ऊपर सवार थे जो सब अच्छे घोड़ों पर सवार और अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित थे—हिन्दुस्तानी अपने ही देश के मूल्यवान घोड़ों पर थे और मुग़ल लाल वर्दी धारण किये हुए चाँदी की परिच्छदों से भूषित घोड़ों पर थे। इनके अतिरिक्त कुछ हाथी भी थे जो सोने और चाँदी के काम की झूलों से सुसज्जित थे और जिनके ऊपर सोने और चाँदी की चद्दरों से मँढ़े हुए हौदे थे। हाथियों में तीन के ऊपर नवाब की पताकायें थीं। पहिली रात को भाग्यवश वर्षा हो गई थी और प्रभात सुन्दर और आह्लादक था। दीवान ख़ास की अष्टकोण उमेथ (मुसम्मन बुर्ज) के सामने, जो सोने के पानी की चमक से सूर्य की भांति चमक रहा था, जब सफ़दर

जंग पहुंचा, वह हाथी से उतर पड़ा, रीत्यानुसार पृथ्वी की ओर नीचे को झुक गया और सादर संस्थिति में कुछ देर तक खड़ा रहा। दरबार के एक हिजड़े के हाथ बादशाह द्वारा (उसके प्रणाम के उत्तर में) भेजे हुए कुछ गुलाब के फूलों को पाकर वह पुनः हाथी पर सवार हो गया और बादशाह को, जो उत्संध में बैठा हुआ था, प्रदर्शन से और अपने सैनिकों के युद्धप्रिय रूप से प्रसन्न कर वह अपने शिविर को वापस आया*।"

२७ नवम्बर १७४३ को जो दिन बादशाह के दर्शन के लिये निश्चित हुआ था, नावों के पुल पर अपने सब सैनिकों और सामान के साथ सफ़दर जंग ने यमुना को पार किया और दूसरे तट पर शिविर डाला। उसके स्वागतार्थ वज़ीर क़मरुद्दीन खां शहर से बाहर आया। सामयिक उपचारों और भेंटों के विनिमय के पश्चात् वज़ीर दरबार को वापस आया। थोड़ी देर पीछे भारी सैनिक सज्जा से सफ़दर जंग ने नगर में प्रवेश किया और सायंकाल के पास बादशाह को अपना आदर सत्कार भेंट किया। दाराशिकोह के महल में उसने निवास किया जो उसके वंश के अधिकार में सआदत खां के समय से चला आता था।‡

मीर आतिश और काश्मीर के राज्यपाल की जगहों पर सफ़दर जंग की नियुक्ति १७४४ ई०

सफ़दर जंग के आगमन के कुछ महीनों के अन्दर ही ईरानी दल ने अमीर ख़ाँ के नेतृत्व में—जो उच्चकुल सम्बन्धित, चतुर और मृदु-जिह्वा दरबारी था—मुहम्मद शाह को सफलता पूर्वक राज़ी कर लिया कि वह हाफ़िज़ुद्दीन ख़ाँ को – जो एक तूरानी सामन्त जो अपने नेताओं क़मरुद्दीन ख़ाँ और निज़ाम से सम्पर्क रखता था—मीर आतिश (बादशाही तोपख़ाना का अध्यक्ष) के पद से हटाकर उसके स्थान पर सफ़दर जंग को नियुक्त कर दे। बादशाह ने, जो उसके गौरवान्वित चलन और उसके सैनिकों की शक्ति‡‡ और युद्ध प्रिय सज्जा से प्रभावित

*सियार III ८५०-मुस्तफ़ाकृत अनुवाद III-२२४-२२५। मैंने फारसी मूल से मिलान कर अनुवाद में कुछ ग़लतियों को शुद्ध कर दिया है और शेष को स्वीकार कर लिया है।

‡सियर III ८५१।

‡‡हरिचरण ३८२ ब०।

था, २१ मार्च १७४४ ई० को सफ़दर जंग को नये पद पर विधिवत् आसीन कर दिया और आशा प्रगट की कि वह अपने नये उत्कृष्ट स्थान में स्वामिभक्त और सफल सिद्ध होगा। मीर आतिश की परम्परा के अनुसार, जिसका एक कर्त्तव्य बादशाह और उसके परिवार के व्यक्तियों की शरीर रक्षा भी था, सफ़दर जंग ने बादशाही क़िला में निवास किया और तोपख़ाना† का समुचित संगठन किया।

राजकीय कृपा में सफ़दर जंग ने अब बहुत जल्दी उन्नति की। अपने पूर्व स्थानों के अतिरिक्त वह ४ अक्तूबर १७४४ ई० को काश्मीर का राज्यपाल नियुक्त किया गया। उसने अपने भतीजे शेरजंग को अपने नये प्रान्त पर शासन करने के लिए भेजा। काश्मीर पहुंच कर शेरजंग ने उस प्रान्त के वीर विद्रोही नेता बाबरुल्ला को संवाद के लिए आमन्त्रित किया और उसकी रक्षा की जो प्रतिज्ञा उसने की थी उसको तोड़कर उसको काल कोठरी में डाल दिया। प्रान्त अब शान्ति से नवाब के शासन के अधीनस्थ हो गया। सफ़दर जंग की सेवा में एक योग्य अधिकारी अफ़ासियाब ख़ाँ को काश्मीर में छोड़कर शेरजंग दिल्ली को वापस आया* ।

अली मुहम्मद ख़ां रुहेला की उत्पत्ति और उन्नति

बहादुर शाह के राज्यकाल में (१७०७–१७१२ ई०) दाऊद नामक एक साहसी और महत्वाकांक्षी अफ़गान ग़ुलाम अपने मालिक शाह आलम ख़ाँ के घर से भागकर, जो रोह (अफ़ग़ानिस्तान का पहाड़ी प्रदेश) में तोर शाहमनपुर का अफ़ग़ान निवासी था, रुहेलखंड को आया जो उस समय कटेहर के नाम से प्रसिद्ध था और एक स्थानीय सरदार के यहाँ नौकरी कर ली। चन्दौसी से १३ मील पूर्व में मधकार के मुदर शाह की सेवा में जब दाऊद था उसने बरेली से २६ मील उत्तर में बाँकौली के शासक के विरुद्ध एक अभियान में भाग लिया जहाँ पर उसके हाथ अन्य वस्तुओं में ७ या ८ वर्ष का एक सुन्दर जाट बालक आया। उसने उस बालक को मुसलमान बना लिया, उसका

---

† सियर III ८५०; अब्दुलकरीम ८७ अ; मासदन IV १५१ ब; इमाद ३४।

* सियर III ८५१; मासदन १५४ अ०।

नाम अली मुहम्मद खां रखा और उसको गोद ले लिया§। कुछ वर्ष पीछे दाऊद ने मुदार शाह की नौकरी छोड़ दी और कुमाऊँ के राजा देवी चन्द की सेवा में प्रविष्ट हुआ। उसका दूसरा क़दम राजा और मुरादाबाद के नायब फ़ौजदार अज़्मतुल्ला खाँ के बीच एक युद्ध में विश्वास घात कर अपने नये स्वामी से भाग जाना था और इस कारण से उसको मृत्यु दण्ड दिया गया। अब अली मुहम्मद खाँ दाऊद की सेना के सञ्चालन का अधिकारी बना और उसने १७२२ ई० में अज़्मतुल्ला खाँ के अधीन नौकरी कर ली*।

निबिया बोवली और दाऊद की जागीर के अन्य गाँवों पर अधिकार प्राप्त कर अली मुहम्मद खां ने, जो अब रुहेला समझा जाता था, चन्दौसी से १४ मील दक्षिण-पूर्व में बिसौली को अपना निवास स्थान बनाया, अपने सैनिकों के सख्या की वृद्धि की और पड़ोस में गांवों को लूटता-खसोटता उसने अपनी सम्पत्ति चारों ओर बढ़ा ली। अनुक्रम द्रुतता से दिल्ली दरबार के एक हिजड़ा, मुहम्मद सालेह पर, जो मनौना परगना के अधिकार में था, उसने सहसा आक्रमण किया और उसको मार डाला, उसने ओंला और पड़ोस के गांवों के ज़मीनदार† दुर्जा (दुर्जनसिंह) को एक किराए के हत्यारे से हत्या कराई और उसके प्रदेश पर अधिकार कर लिया‡। इस प्रकार आधुनिक बरेली ज़िला के एक बड़े

---

§ गुलिस्तां–इलियट का अनुवाद ५-७। समकालीन फ़ारसी लेखक कहते हैं कि अली खां के माता-पिता जाट थे। देखो गुलिस्तां ७; अब्दुल करीम ८८ ब; आशोब ४२४; II सियर ४८०। आधुनिक समय में उसको सैयद सिद्ध करने का एक सफल प्रयत्न किया गया है। रामपुर के नज्मुलगनी ने मुहम्मद से मिलाते हुए उसकी झूँठी वंशावली का आविष्कार किया है। मौल्वी का विवाद अविश्वस्य और हास्यास्पद है। उसका उद्देश्य यह सिद्ध करना मालूम होता है कि रामपुर का वर्तमान शासक सैयद है (अख़्बारुस्सनादीद–उर्दू-१९१८-I पृ० ८०-१२४।

* गुलिस्तां ६-१०।

† ओंला बदायूँ के उत्तर में १७ मील पर है और मनौना ओंला के २ मील पश्चिम में है—शीट ५३ प।

‡ गुलिस्तां II-१२ हादिक़ १२६।

भाग का वह मालिक बन गया और एक स्वतन्त्र शासक की चाल ढाल से रहने लगा। उसने वज़ीर का आश्रय प्राप्त करने का प्रबन्ध कर लिया जो दरबार में ईरानी दल के विरुद्ध सहायकों की खोज में था। ११५० हि० (१७३७-३८ ई०) में वज़ीर की सेना को जानसठ के सैयद सैफुद्दीन खाँ के विरुद्ध सहायता देकर और युद्ध के मर्म-स्थल पर उसको मारकर, उसने वज़ीर कमरुद्दीन की महती सेवा की जिसके पुरस्कार में उसको नवाब की उपाधि और उसके द्वारा देय राज्यकर में न्यूनता मिली*। परन्तु नादिरशाह के आक्रमण काल में रुहेला ने देय राज्यकर में छल किया और पीलीभीत के उत्तर पश्चिम में १८ मील रिछा तक शाही भूमि पर बलात् अधिकार कर लिया। ५ अप्रेल १७४१ ई० (१६ मुहर्रम ११५४ हि०)** को राजा हरनन्द और उसके पुत्र मोतीराम पर, जिनको वज़ीर ने उसको दण्ड देने के लिए भेजा था, उसने सहसा हमला किया और मार डाला और मुरादाबाद, सम्भल, शाहाबाद, शाहजहांपुर और बरेली के कई परगनों पर—परन्तु नगर पर नहीं—उसने जल्दी से क़ब्ज़ा कर लिया*। सारी आशाओं से बढ़कर उसकी शक्ति और गौरव की वृद्धि हो गई।

वज़ीर ने, जो भोग विलास में लिप्त था, रुहेला को उसके अतिक्रमणों का दण्ड देने के स्थान पर उसको अन्याय प्राप्त भूमि के अधिकार में स्थिरीकरण कर दिया। उसने इस पर राज्य कर देना स्वीकार कर लिया†।

दिल्ली दरबार के भय से मुक्त होकर, जिसके सन्देह को उसने अपनी वर्तमान बाह्य अधीनता से स्वप्निल कर दिया था, अली मुहम्मद ख़ां ने, कुमाऊँ के देवीचन्द के उत्तराधिकारी राजा कल्याण चन्द के प्रदेश पर, दाऊद की मृत्यु का बदला लेने के लिये आक्रमण किया। बहेरी के १४ मील उत्तर पश्चिम में रुद्रपुर के युद्ध के बाद राजा अल्मोड़ा

---

*वही-हादिक़ अतिशयोक्ति करता है और कहता है कि अली मुहम्मद ख़ां को ५००० ज़ात और ५००० सवार का मनसब दिया गया।

** अख़्बारुल्सनादीद I-१० १३५।

* गुलिस्तां-१७; गुल-२५ अ., हादिक़ १३६, सियर III ८५४; इन्विरराय ३८५ ब० आनन्दराम ग़ाली हवाला देता है—३१६।

† हादिक़-१४०; सियर III ८५५; आनन्दराम ३१५।

को और वहाँ से गढ़वाल को भाग गया। रुहेल ने उसके राज्य पर अधिकार कर लिया, बहुत से बन्दी बनाए, हिन्दू मन्दिरों को नष्ट किया और सार्वजनिक मार्गों में गो-वध किया। अली मुहम्मद खां ने काशीपुर रुद्रपुर, और पहाड़ियों के दक्षिण दो और परगनों को अपने प्रदेश में जोड़ लिया और शेष रियासत कुमाऊँ के भूतपूर्व शासक के एक नातेदार को कर पर दे दिया०।

सफ़दर जंग बादशाह को रुहेला सरदार के विरुद्ध भड़काता है—१७४५ ई०

अबुलमन्सूर खाँ सफ़दर जंग और अली मुहम्मद खाँ रुहेला के बीच शत्रुता का एक परम कारण था। रुहेला प्रदेश अवध की पश्चमोत्तर सीमा पर स्थित था और उनके बीच में नदी या पहाड़ ऐसी कोई स्थायी रोक न थी। महान शक्ति और महत्त्वाकांक्षा का पुरुष अशक अली मुहम्मद खाँ सब दिशाओं में सतत् विजय प्राप्त कर रहा था। पश्चिम में दिल्ली के बहुत पास होने से उस दिशा में वह अपनी सीमा को अधिक नहीं बढ़ा सकता था, पर्वतों की उपस्थिति उत्तर और पूर्व में उसकी प्रगति को रोके हुये थी और दक्षिण को वह बढ़ना नहीं चाहता था जहाँ पर एक अफ़ग़ान भाई मुहम्मद खाँ बंगश का प्रदेश था। अतः सफ़दर जंग को स्वाभाविक भय हुआ कि अली मुहम्मदखाँ निरन्तर सैनिक उत्साह के जीवन का अभ्यासी कभी न कभी अपने अस्त्र-शस्त्र अवध की ओर अग्रसर करेगा। उसका भय बिलकुल निर्मूल न था। कन्नौज के नायब फौजदार देवीदास ने सम्भवतया अपनी नियुक्ति के शीघ्र पश्चात ही यह सूचना उसको भेजी कि उसके प्रान्त की उत्तर पश्चिम सीमा पर रुहेले अपहरण कर रहे थे*। रुहेला चरित्र और उनके आपात की प्रकृति, जो गुलशनेबहार§ के पन्नों में स्पष्टतया प्रगट हैं, विद्यार्थी के मस्तिष्क में कोई इस बात पर शंका-स्थान नहीं छोड़ते हैं कि अली मुहम्मद खाँ के सैनिकों ने अवध की सीमा पर अपने आघातों की पुनरावृत्ति अवश्य की होगी। अतः सफ़दर जंग रुहेला उपनिवेश का अपने पैतृक प्रान्त की रक्षा के प्रति भय का सतत् स्रोत समझता था‡।

०गुलिस्ताँ १८; गुल १६ अ और ब; हादिक १४०; अब्दुलकरीम ८८ ब; शाकिर ८६; आनन्दराम ३३५।

* मन्सूर—राजा अनुरुद्ध सिंह को पत्र-पृष्ठ १६२।

§ गुलशनेबहार पृ० ८, १३, ५४ और ५५।

‡ अब्दुलकरीम ८८ ब; शाकिर ८६; आशाब ४२६।

१७४५ ई० के आरम्भ में सफ़दर जंग को बादशाह उकसाने के लिये एक सुखप्रद हुक्म मिल गया कि कटेहर में रुहेला उपनिवेश का उन्मूलन कर दे। उसके कुछ आदमियों पर जो दारोगे इमारात (भवन निर्माणाध्यक्ष) की देख-रेख में कुँमाऊँ की पहाड़ियों के नीचे जंगल में लकड़ी काट रहे थे, अली मुहम्मद ख़ाँ के रुहेलों ने हमला किया और उनको भगा दिया। बहुत क्रुद्ध होकर सफ़दर जंग ने इस वार्ता को बादशाह के सम्मुख उपस्थित किया और ख़ाँ के विरुद्ध एक दण्डात्मक अभियान का प्रस्ताव किया† । मुहम्मद शाह ने जो रुहेला के विरुद्ध था इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।‡

रुहेला के विरुद्ध शस्त्रोपचार

२५ फ़रवरी १७४५ ई० को वज़ीर क़मरुद्दीन ख़ाँ, सफ़दर जंग, अमीर ख़ाँ और अन्य सामन्तों और भयंकर सेना को लेकर बादशाह दिल्ली से चला और मन्द प्रयाणों द्वारा लोनी, गढ़मुक्तेश्वर और शाहबाज़पुर होता हुआ १० अप्रैल को सम्भल के पास पहुँचा। यहाँ पर दूसरी मई को फ़र्रुख़ाबाद का क़ायम ख़ाँ बंगश उन से मिल गया। २४ को बादशाही सेना रुहेला के दुर्ग बनगढ़ से ८ मील अन्दर पहुँच गई। यह गढ़ बदायूँ के १० मील उत्तर में स्थित था और यहाँ पर अली मुहम्मद ख़ाँ ने शरण ले रखी थी जब सन्धि के उसके दो प्रयत्न क्रमशः निष्फल हो गये थे*।

---

† हादिक़-१४०—यह यह भी कहता है कि सफ़दर जंग ने अभियान के व्यय के लिए डेढ़ लाख रुपया देने का वायदा किया।

‡ अली मुहम्मद ख़ाँ विद्रोही और बादशाह की भाँति आचरण करने लगा। उसने कर रोक लिया (आनन्दराम ३३५), और अपने लिये लाल शामियाने बनवाये जो मुग़ल भारत में बादशाह के विशेष अधिकारों में था। अब्दुलकरीम ८३ ब, हरिचरण ३८३; म० उ० II-८४२।

*आनन्दराम २०४-२५१; सियर III ८८५ कहता है कि बादशाह बदायूँ पहुँचा जो असम्भव है क्योंकि यह बनगढ़ के १५ मील दक्षिण में है। हरिचरण ३८५ ब ११५७ हि० देता है जो ग़लत है।

लोनी दिल्ली के उत्तर पूर्व में ७ मील पर है और शाहबाज़पुर गढ़ मुक्तेश्वर के पूर्व में ७ मील पर है। शीट ५३।

अली मुहम्मद खां रुहेला के विरुद्ध सैनिक शस्त्रोपचार मुहम्मद शाह और उसके सामन्तों में सैनिक गुणों का पूर्ण अभाव प्रगट करते हैं और अकबर तथा औरंगज़ेब के सैनिक पराक्रम से सुपरिचित विद्यार्थी के लिये उपहासास्पद बन जाते हैं। युद्धक्षेत्र में उनकी अनिपुणता उनके पारस्परिक अशोभनीय झगड़ों से और भी बढ़ जाती थी। सफ़दर जंग और अमीर खां रुहेला नवोदयी का दृढ़ता से सर्वनाश चाहते थे और वज़ीर तथा क़ायम खां बंगश को अली मुहम्मद खाँ के पतन में ईरानी दल की विजय दिखाई दी*। दिल्ली से बनगढ़ के मार्ग में सफ़दर जंग और वज़ीर में; तथा सफ़दर जंग और क़ायम खाँ में पक्षपात और तीव्र क्रोध के आस्फोट हुये और अन्य अवसर पर बादशाह को स्वयं विवादियों को परितुष्ट करना पड़ा†। दरबार की शक्ति और उत्साह का स्वार्थी तर्कवितर्क में इस प्रकार अपव्यय हुआ और साम्राज्य की अखिल सैन्य शक्ति बनगढ के गढ़ को हस्तगत करने में असमर्थ रही जब तक कि अली मुहम्मद ने स्वयं उसको रिक्त न कर दिया।

२४ मई को तीसरे पहर रुहेलों ने अपना गढ़, जो दो मील चौड़े जङ्गल से घिरा हुआ था, छोड़ दिया और बादशाही शिविर के पास प्रगट हुये। सफ़दर जंग और अमीर खाँ अपनी तोपों को सामने रख कर उनके विरुद्ध चल पड़े और वज़ीर ने शीघ्र ही उनका अनुकरण किया। शत्रु पराजित हुआ और पीछे ढकेल दिया गया और सामन्त लोग अपने लाभ का उचित प्रयोग किये बिना शिविर को वापस आ गये। २५ को युद्ध न हुआ परन्तु अर्धरात्रि में अपने गुप्त आक्रमण-स्थान से निकल कर शाहीपक्ष वालों पर अग्निवर्षा प्रारम्भ करदी और प्रभात के केवल तीन घण्टे पूर्व ही वापस हुए। २६ को क़ायम खां को बनगढ पर हमला करने का आदेश हुआ परन्तु अत्यन्त गर्मी के कारण कोई युद्ध न हुआ। २७ विश्राम में व्यतीत हुआ। इस दिन अवध का उप राज्यपाल राजा नवल-राय अपने स्वामी की आमन्त्रणाज्ञा पालनार्थ बनगढ़ के समीप पूर्व में पहुंच गया था। चूँकि रुहेलों का गढ़ राजा और बादशाही शिविर के बीच में था, सफ़दर जंग इस भय से कि शत्रु कहीं कई दिनों के सतत् प्रयासों से श्रान्त उसके सैनिकों पर टूट न पड़े, अपनी सेना के एक भाग

*११ सियर III, ८५५; इरविंग १४ अ; म, उ I ३५६ तथा ८१४
† आनन्दराम २०६ तथा २४७

को साथ लेकर बनगढ़ के पूर्व में कई मील बढ़ गया और राजा नवलराय की तीसरे पहर शिविर में ले आया। राजा के साथ भावी इतिहासकार मुर्तज़ा हुसैन खां था जो उस समय अवध की सेना में केवल रिसालदार था। दूसरे दिन सामन्तगण अपने स्थानों से आगे बढ़े, भित्तियाँ खड़ी करलीं और रणस्थलीय तोपों का चलाना प्रारम्भ किया जिसका उत्तर गढ़ के अन्दर से शत्रु ने दिया। २६ को मुग़लों ने विश्राम किया। ३० को अमीर खाँ; सफ़दर जंग और कुछ अन्य सामन्तों ने अपनी भित्तियाँ बनगढ़ की ओर दो मील आगे बढ़ा लीं और मुख्य रुहेला गढ़ के इर्द-गिर्द चार मिट्टी के गढ़ों को हस्तगत कर लिया। सायंकाल के समीप सामन्तगण भित्तियों के पीछे अपने डेरों को वापस आये। रात के सन्नाटे में अली मुहम्मद खां के सैनिक सहसा आक्रमण करने के लिये प्रगट हुये परन्तु मुग़ल तोपखाना की सतर्कता के कारण बिना उद्देश्य प्राप्ति के उनको लौटना पड़ा॰।

अली मुहम्मद खां को दिल्ली लाया जाता है—जून १७४५ ई०

रुहेला नेता की प्राण-रक्षा की इच्छा से क़मरुद्दीन खां ने बादशाह से उसके लिए क्षमा याचना की। अतः २ जून को प्रातः रुहेले ने अधीनता का विधिवत् सन्देश भेजा और थोड़ी देर पीछे अपने दो पुत्रों, मुख्य अधिकारियों और ३-४ हज़ार सैनिकों सहित बादशाही शिविर में उपस्थित हुआ। पहले वह क़ायम खाँ के सामने उपस्थित हुआ और फिर वज़ीर के जिसने रूमाल से हाथ बँधे हुए उसको बादशाह के सामने पेश किया। मुहम्मद शाह ने उसको क्षमा कर दिया और उसको वज़ीर के रक्षण में रख दिया। बनगढ़ ढा दिया गया और उसकी सम्पत्ति और राज्य ज़ब्त कर लिये गये। ४ जून को बादशाह ने दिल्ली के लिये प्रस्थान किया और वहां १० को पहुँचा*।

इस स्थल पर अली मुहम्मद खां के प्रचण्ड जीवन की कथा उसकी मृत्यु तक पहुँचा दी जा सकती है। दिल्ली में उसके आगमन के कुछ

॰आनन्द राम २५०-२५७; सियर III ८५५; हादिक़ १४०; अशोब ४२८; गुलिस्ताँ २१; मुर्तज़ा हुसैन खां, अशोब और आनन्दराम तीनों इस अभियान में उपस्थित थे। परन्तु आनन्दराम का वर्णन जो ठीक पश्चात् लिखा गया था सब से उत्तम और सर्वथा विश्वासनीय है।

* आनन्दराम, २५७-२६४; हादिक़ १४१; सियर III-८५५।

समय बाद वजीर ने उसको मुक्त कर दिया और उसको चकला सरहिन्द का फ़ौजदार नियुक्त किया† । २१ जनवरी १७४८ ई० को अहमद शाह अब्दाली के लाहौर में प्रवेश पर रुहेला ने, जो आक्रमणकारी के साथ पत्र-व्यवहार में प्रविष्ट मालूम होता है, सरहिन्द छोड़ दिया, २४ फरवरी को सहारनपुर पहुँचा और १ मार्च को दारानगर के पास गंगा को पार किया‡ । मुरादाबाद पहुँच कर उसने वज़ीर के नायब को निकाल दिया, बरेली के फौजदार सैयद हिदायत अली खां को अधीनता स्वीकार करने पर विवश किया और एक बार फिर रुहेलखण्ड का मालिक बन गया । वह अपने बलापहार का फल भोगने के लिए पर्याप्त समय तक जीवित न रहा । २५ सितम्बर १७४८ ई० को उसका देहान्त हो गया§ ।

शुजाउद्दौला का विवाह—१७४५

अपनी और अमीर खां के अनुपयुक्त व्यवहार और नज्मुद्दौला के प्रति अपमानकारी आचरण से अप्रसन्न होकर बादशाह ने दूसरे की स्थिति को शक्तिशाली बनाने और उसके परिवार की पदवी को पहिले के समान कर देने की इच्छा की । अतः उसने सफ़दर जंग के इकलौते पुत्र बाद को शुजाउद्दौला की उपाधि से विख्यात, जलालउद्दीन हैदर और अपने सबसे बड़े कृपापात्र इस्हाक़ख़ाँ नज्मुद्दौला की बहिन में वार्तालाप द्वारा विवाह निश्चत कर दिया । वधू को जो बाद में बहूबेगम के नाम से यशस्वी हुई मुहम्मद शाह ने अपनी 'पुत्री' उद्घोषित कर दी । उसने अपनी ओर से विवाह की उपयुक्त तैयारियां करने के लिए अमीर खां को कार्य-भार सौंपा* । विवाह १७४५ के अन्त में सम्पन्न हुआ‡‡ ।

वर की ओर से वधू के लिए उपहारों का प्रबन्ध (साचाक-चढ़ावा) सफ़दर जंग ने शाही पैमाना पर किया और उनको अपने मित्रों और हितैच्छुओं के साथ लम्बे जलूस में नज्मुद्दौला के मकान पर भेजा ।

---

† आनन्द राम ३३४ ।

‡ गुलशनेबहार ५४ ।

§ गुलिस्तां २८ ; हादिक़ १४१ ।

* सियर III ८५८ ।

‡‡ इमाद ३६; क़मरुद्दीन के अपने निवास स्थान से ज़ीनों से गिरने के, जो २३ सितम्बर १७४५ ई० को हुआ, एक या दो मास पीछे विवाह सम्पन्न हुआ । (आनन्द राम १४८) ।

बदाशाही क़िला के नीचे से कोटला फीरोज़ तक सिवाय भिन्न-भिन्न प्रकार की मिठाइयों, फलों, पहिनने के कपड़ों, आभूषणों और सुगन्धित तेल की बोतलों के थालों के और कुछ न दिखाई देता था। बर्तनों की बहुत बड़ी संख्या थी जैसे प्याले, तश्तरियाँ और भिन्न-भिन्न आकार और कारीगरी की दूसरी जाति के बर्तन। इनमें प्रमुख एक हज़ार से अधिक सोने के पानी से चढ़े हुये चाँदी के बर्तन थे जिनमें प्रत्येक की लागत सौ रुपयों से कम न थी। दूसरे दिन नज्मुद्दौला ने वर के घर को मेंहदी भेजी जो साचाक़ से भी अधिक लागत की थी। दोनों अवसरों पर महाई भोजन और विशाल विनोद और उत्सव हुए। विवाह के बाद नज्मुद्दौला ने अपनी बहिन को बहुमूल्य दहेज दिया। सफ़दर जंग ने बहुत द्रव्य दान में बाँटा और भव्य रोशनी की जैसी कि किसी विवाह में नहीं देखी गई थी केवल शाहजहाँ के वज़ीर जाफ़र खाँ और बादशाह फ़र्रुख़सियर के विवाहों को छोड़ कर †।

अमीर खाँ उम्दतुल्मुल्क की हत्या पर जो ५ जनवरी १७४७ई० को हुई, सफ़दर जंग ईरानी दल का नेता हो गया। चूँकि वज़ीर क़मरुद्दीन खाँ अष्टक प्रमादों में लिप्त था और निज़ामुल्मुल्क दक्षिण में अपनी द्रुतगामी मृत्यु की प्रतीक्षा में था, सफ़दर जंग अब मुग़ल सामन्त वर्ग में अग्रसर हो गया और सामान्य गुण नवयुवकों में शाही दरबार का एक मात्र शक्तिशाली; अनुभवी और धीर चित्त सामन्त माना जाने लगा। मुहम्मद शाह की निगाहों में उसने महत्वशाली स्थान प्राप्त कर लिया और विशिष्ट राज्य-कार्य—उदाहरणार्थ मराठों से राजनैतिक सम्बन्ध—उसके द्वारा सम्पादित होने लगा + ।

† हरिचरण ३६३-६४; सियर III ८८८; मासिदन यह वर्णन देता है जो सियर। इमाद पृ० ३६-कहता है कि इस विवाह में ४६ लाख रुपये व्यय हुये जब कि दारा के विवाह में, जिस पर मुग़ल राजकुमारों के विवाहों में से सबसे अधिक धन व्यय हुआ था, केवल ३२ लाख रुपये खर्च हुये थे।

+ पेशवा दफ्तर से संग्रह। जिल्द II, पत्र नं० २।

अध्याय ११

अहमदशाह अब्दाली का प्रथम आक्रमण जनवरी-मार्च १७४८ ई०

अब्दाली काबुल और पेशावर हस्तगत करता है

अहमदशाह अब्दाली का पैतृक निवास-स्थान हिरात ज़िला में था, परन्तु ऐसा मालूम होता है कि कुछ समय से उसका परिवार मुल्तान में रहता था जहाँ से उसका पिमह अब्दुल्ला खाँ शाह के पिता मुहम्मद ज़मा खाँ को साथ लेकर १७१७ ई० में या उसके आस-पास हिरात वापस चला गया था*। अहमदखाँ का जन्म, जो उसका वास्तविक नाम था, हिरात में १७२४ ई० में हुआ था। यहाँ अपने प्रान्त के ईरानी राज्यपाल से अफ़ग़ान संघर्ष में और उसकी वापसी पर हिरात में प्रभुता के लिये संमर्दन में अब्दुल्लाखाँ और उसके परिवार को भाग्य के अनेक पतनों और उदयों का अनुभव हुआ। परन्तु नगर पर पुनः नादिरशाह ने अधिकार कर लिया और अहमदखाँ और उसका भाई जुल्फ़िक़ारखां क़न्धार को भाग गये जहां पर उनको शाह हुसैन गिलज़ई ने उनको बन्दी बना लिया। मार्च १७३७ ई० में जब नादिर ने क़न्धार को हस्तगत कर लिया अहमदखां छोड़ दिया गया और फ़ारसी बादशाह ने उसको एक साधारण अनुगामी नियुक्त कर दिया। नेतृत्व के दुष्प्राप्य गुणों से सम्पन्न जैसा कि वह था खां नादिर की सेना में जल्दी ही अधिकारी हो गया, और जब १६ जून १७४७ ई०† की अर्धरात्रि में खुरासान में कुचान के समीप फ़तेहाबाद के शिविर में उसके स्वामी की हत्या हुई, वह क़न्धार को भाग गया, काबुल के राज्यपाल नसीरखां द्वारा संरक्षित कोष के सहचर दल को उसने पकड़ लिया, नगर के राज्यपाल को उसने पराजित कर दिया और उसको मार

---

* हुसैनशाह ३ अ।

† जहाँ गुश २४५; हुसैनशाह ४ ब–दोनों रविवार ११ जमादी II ११६१ हि० बताते हैं। मालूम होता है रविवार ग़लती से मंगलवार की जगह दिया है।

डाला और जुलाई या अगस्त १७४७ ई० में अहमदशाह अब्दाली की उपाधि धारण कर उसने अपने को सिंहासन आसीन कर दिया‡।

अहमदशाह ने अब नासिरखां को छोड़ दिया, अपनी ओर से उसको काबुल का राज्यपाल नियुक्त कर दिया और उसको उसके प्रान्त को निर्दिष्ट आज्ञायें देकर भेज दिया कि वह अविलम्ब ५ लाख रुपये भेजे*। काबुल में अपने आगमन पर नगर के अफगान सरदारों की राय पर उसने शर्तनामा को अस्वीकृत कर दिया, शाह के आदमियों को निकाल बाहर किया और भारत के बादशाह के सामने सारा प्रश्न रख दिया। उसके द्वारा प्रतिज्ञा भंग के लिये १७४७ ई० के अक्तूबर में उसके प्रान्त पर आक्रमण के रूप में उसको शीघ्र ही दण्ड दिया गया और पेशावर में शरण लेने पर बाध्य किया गया। जहां खां के नेतृत्व में जब अब्दाली अग्रदल पेशावर के पास पहुँचा नासिरखाँ मन की घबराहट में लाहौर को भाग गया जहां वह २५ नवम्बर को पहुँचा। शाह ने काबुल और पेशावर पर अधिकार कर लिया, सिन्धु को अटक पर पार किया और हसन अब्दाल के पास कुछ गाँवों को लूट कर पेशावर को भारत पर आक्रमण करने की तैयारियां करने के लिये वापस गया†।

शाह नवाज की पराजय और पंजाब का अपहरण—जनवरी १७४८ ई०

पंजाब जो उस समय मुग़ल साम्राज्य का उत्तर पश्चिमी प्रान्त था और मृतक राज्यपाल ज़कारियाखां के पुत्रों में भ्रातृ युद्ध के कारण छिन्न भिन्न था, १७४५ ई० से विदेशी आक्रमण को आमन्त्रित कर रहा था। अन्तिम उल्लेखनीय राज्यपाल ज़कारियाखां की मृत्यु पर उसका ज्येष्ठ पुत्र यहयाखां अपने चाचा और श्वसुर क़मरुद्दीनखाँ की ओर से मिताबर १७४५ ई० में लाहौर और मुल्तान का उपराज्यपाल नियुक्त किया गया था।

---

‡ हुसैनशाही ५५, अब्दुलकरीम ६४ ब; आनन्दराम २६७; सियर III ८६१, एक सन्त द्वारा रखा हुआ अब्दुल अहमदशाह के एक पूर्वज का नाम था। इसका अर्थ है—सांसारिक राग से निर्लिप्त। अहमद अफ़ग़ानों की सदुदज़ई जाति का था। उसने दुर्रेदुर्रानी (मोतियों का मोती) की उपाधि धारण की।

* हुसैनशाही ५ अ; अब्दुलकरीम ६४ ब; आनन्द राम २६७; सियर III ६१।

† आनन्द राम ३०२, ३०३, ३०८ और ३०६।

परन्तु ज़कारिया के द्वितीय पुत्र हयातुल्ला उपाधि से शाह नवाज़ ने अपने बड़े भाई को हटा दिया, उसको कारागार में डाल दिया और प्रान्तों पर बलात् अधिकार कर लिया। २५ दिसम्बर १७४७ ई० को अर्धरात्रि में यहयाखां कारागार से छुप कर निकल गया और वज़ीर के पास भाग गया। अपने एक अधिकारी "जो मनुष्य के रूप में राक्षस था" अदीनाबेग खाँ द्वारा उकसाये जाने पर शाह नवाज़ ने अपने भाई और वज़ीर के विरुद्ध अब्दाली से सहायता की याचना की*।

भारत में नादिरशाह को पूरी दाय के पुनः प्राप्त करने का शीघ्र अवसर पाकर प्रसन्न होकर जनवरी १७४८ ई० के प्रथम सप्ताह में १८ हज़ार सैनिक लेकर अहमद शाह ने सिन्धु पार किया और मार्ग में गांवों को लूटता जलाता हुआ लाहौर की ओर चल पड़ा। उसने अपने धर्म गुरु शाह साबिर को शाह नवाज़ खाँ से वार्तालाप करने, उसको मिला लेने और उसको भारत साम्राज्य के प्रधान मन्त्री के पद का वादा करने के लिए आगे भेजा, यदि अब्दाली मुहम्मद शाह का स्थान प्राप्त करने में सफल हो जाए‡। परन्तु शाह नवाज़ ने अपने वज़ीर के उपदेश पर ध्यान देकर कि वह अपने परिवार के शुभ नाम को कलंक न लगाये और यह जान कर कि अब्दाली के पास तोपें न थीं शाह साबिर को बन्दी कर लिया और उसको मार डाला और आक्रान्ता के प्रयाण मार्ग को काट देने की तैयारियां कीं। इसकी सूचना पाकर अहमद शाह ने २० जनवरी को रावी को पैदल पार किया, वर्तमान लाहौर नगर से ५ मील पूर्व शालीमार बाग़ में पड़ाव डाला और दूसरे दिन स्थानीय राज्यपाल से उसका युद्ध हुआ जो २५ हज़ार सैनिक लेकर उससे लड़ने आया था। युद्ध निर्णायक न हुआ, परन्तु जब सायंकाल भारतीय सेना रण स्थल से लौट रही थी। घुड़सवार अफ़गान बन्दूकचियों ने एक आक्रमण किया, गोलियों की एक बौछार चलाई और उनको युद्ध-स्थल से विवश कर हटा दिया। रात को अधियारी ने और नगर के बाहर कुछ भारतीय सैनिकों की उपस्थिति ने अफ़ग़ानों को लाहौर में प्रवेश करने से रोक दिया।

रात्रि में शाह नवाज़ खाँ ने भयभीत होकर लाहौर का परित्याग किया और अपने परिवार, बहुमूल्य रत्नों और आभूषणों को लेकर दिल्ली

* सियर III-८८१; आशाब ४४३; आनन्दराम ३०६, ३०७।

‡ आनन्दराम १२५; सियर III, ८८२।

की ओर भाग निकला। अब अपने भाग्य पर आश्रित मीर मोमिन, लखपतराय, सूरतसिंह ऐसे अन्य नगर के प्रमुख व्यक्ति आक्रांता की सेवा में बाहर आकर उपस्थित हुए जिसने ३० लाख रुपये मुक्ति दण्ड पर उनको शरण दी। तब शाह ने नगर पर अधिकार कर लिया, लाहौर में समस्त तोपों, सैनिक कोषों, घोड़ों और ऊँटों को आत्मसात् कर लिया और शर्तनामे के बावजूद नगर के अधिकांश भागों को लूट लिया। यहां वह १ मास १० दिन ठहरा रहा, अपने ही राज्यपाल नियुक्त किया और सैन्यवृद्धि की ‡।

शाहजादा अहमद अब्दाली के विरुद्ध प्रस्थानित

ऐसी आशा की जा सकती थी कि नादिर के आक्रमण के अपमान और अपहरण के बाद मुहम्मद शाह और उसके दरबारियों की आँखें खुल गई होंगी और काबुल की ओर अब्दाली के प्रयान के समाचार पाकर उन्होंने अपनी अकर्मण्यता त्याग दी होगी। परन्तु १७३६ ई० को शिक्षा के होते हुए भी दिल्ली दरबार की कार्यवाही उतनी ही असावधानी, अज्ञान और अनिपुणता से १७४८ में अंकित रही जितनी कि ईरानी आक्रमण के वर्ष में थी। बादशाह को काबुल में अब्दाली के आगमन का और १२ नवम्बर १७४७ ई० को अटक की ओर अपनी अग्रसेना को भेजने का विश्वस्त ठीक समाचार मिला। यद्यपि ३ दिसम्बर को उसने अपने अग्रगामी तम्बू आदि दिल्ली के बाहर भेज दिये उसने अपना प्रस्थान पहिले १३ के लिए और फिर २४ के लिए स्थगित कर दिया। बीच में यह सुनकर कि आक्रान्ता हसन अब्दाल से वापस हो गया है उसने अभियान के विचार को छोड़ दिया। तब पहिली जनवरी को, दिल्ली में नासिर खाँ के आगमन के केवल ३ दिन बाद समाचार आया कि अब्दाली पेशावर से चल पड़ा था और लाहौर की ओर प्रयाण कर रहा था। उस समय अपने अस्वस्थ होने के कारण १८ को उसने अपने सामन्तों, कमरुद्दीन खाँ वज़ीर, सफ़दर जंग, मीर आतिश, काबुल के भूतपूर्व राज्यपाल नासिरखां और दूसरों को विशाल सेना और बड़े

‡ आनन्दराम ३२६-३३०; अब्दुलकरीम ६५ ब, ६६ अ; सियर III ८९२-३। सियर कहता है कि अदीना बेग सर्व प्रथम भागा और उसका अनुकरण दूसरों ने किया। युद्ध में भी काष्ठ की मूर्ति की तरह वह खड़ा रहा।

तोपखाना सहित व्यय के लिये ६० लाख रुपए देकर भेजा। इसमें सफ़दर जंग का भाग ८ लाख ५० हज़ार रुपयों का था। इसके अतिरिक्त अम्बाला और कुछ और परगने उसको जागीर में दे दिये गये। यद्यपि सफ़दर जंग और वज़ीर की सलाह पर जयपुर के ईश्वरी सिंह की प्रार्थना की कि उसको रणथम्बौर का किला दे दिया जाय, उपेक्षित कर दी गई, वह दल में सम्मिलित होने के लिए २३ को दिल्ली चल पड़ा‡।

सामन्त वर्ग दिल्ली के उत्तर पश्चिम १६ मील पर नरेला भी नहीं पहुँचा था जब उन्होंने लाहौर के पतन का समाचार सुना। वे चिन्ता से व्याकुल हो गये और बादशाह को आवेदन-पत्र भेजा कि वह स्वयं आए या अपने स्थान पर शहज़ादा को भेजे। अतः ८ फरवरी को मुहम्मदशाह ने सआदत खां जुल्फ़िक़ारजंगकी संरक्षता में शाहज़ादा अहमद को भेजा। नरेला के ४ मील दक्षिण बुरौना पर शाहज़ादा १० को सेना से जा मिला और २० को पानीपत पहुँच गया। यहां पर वज़ीर अग्रदल का नेता नियुक्त हुआ, सफ़दर जंग दक्षिण पक्ष का, और ईश्वरी सिंह वाम पक्ष का—शहज़ादा स्वयं साआदत्खां और सेना के मुख्य भाग सहित केन्द्र में रहा। काबुल के भूतपूर्व राज्यपाल नासिर खां को पृष्ठ भाग की रक्षा का आदेश मिला। इस क्रम में शाहज़ादा आगे बढ़ा, करनाल को २६ और सरहिन्द को ६ मार्च को पहुँचा। सरहिन्द पर वह एक दिन के लिये ठहर गया जहाँ पर गढ़ में शक्तिशाली रक्षा वर्ग की देख-रेख में अपना खज़ाना और भारी सामान रख दिया और तब अपने प्रयाण को पुनः आरम्भ किया कि सतलज को लुधियाना पर, जो लाहौर के सीधे मार्ग पर था, पार करने के बजाय मच्छीवाड़ा के घाट पर उसको पैदल पार करे। वह केवल १४ मील ही बढ़ पाया था और मच्छीवाड़ा से क़रीब ११ मील दक्षिण में मरौली के गाँव के पास संत्रासक सूचना मिली कि सरहिन्द शत्रु के हाथों में जा चुका है@।

‡आनन्दराम ३०८-३१५; अब्दुलकरीम ६७ अ; दिल्ली समाचार पृ० ३३ ईश्वरीसिंह के प्रस्थान की तारीख २२ बुधवार देता है। स्पष्ट है कि यह २३ के स्थान पर लेखक की भूल है।

@ आनन्दराम—३२३, ३२४, ३३३, ३३६ और ३३७; अब्दुलकरीम ६७ ब; सियर III ८६३; गुलिस्तां १०१।

अहमद शाह एक ही लेखक है जो कहता है कि शाहज़ादा को अब्दाली की गतिविधि के समाचार बराबर मिलते थे। यह कहता है कि

यह घटना इस प्रकार हुई। विश्वस्त समाचार पाकर कि मुग़ल शाहज़ादा सड़क के साथ-साथ पंजाब को प्रयाण कर रहा था, अहमद शाह अब्दाली ने २६ फ़रवरी को लाहौर छोड़ दिया और दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। उसने अपनी गति विधि को अत्यन्त गुप्त रखा और अपने आदमियों को आज्ञा दी कि प्रत्येक भारती को जो उन्हें शिविर के पास मिल जाये मार डालें। मार्ग में उसके गुप्तचरों ने उसको सूचना दी कि शाहज़ादा ने सरहिन्द के क़िला में अपने ख़ज़ाना का कुछ भाग रख दिया था और सतलज की ओर उसकी मच्छीवाड़ा पर पार करने के लिये बढ़ रहा था। अब्दाली ने अतः भारतीय सेना के मार्ग से हट कर सतलज को मच्छीवाड़ा से २२ मील पश्चिम ११ मार्च को पार किया। रात ही में ४० मील बढ़ गया और लुधियाना के मार्ग से सरहिन्द पहुंच कर ख़ज़ाना और क़स्बा लूट लिया और दूसरे दिन गढ़ की सेना को मार डाला। तब उसने अपना डेरा सरहिन्द के बाहर बादशाह के बाग में डाला†।

भारतीय सेना का गुप्तचर विभाग इतना अकुशल था कि यद्यपि अब्दाली शाहज़ादा की फौज के कुछ मील पश्चिम से निकल गया था उसकी गति की कोई सूचना प्राप्त न हुई जब तक कि सरहिन्द में उसने भयानक अत्याचार न कर डाले। जब नवाब सफ़दर जंग ने यह दुखद

सरहिन्द में उसने सुना था कि शत्रु लाहौर से चल चुका है। मच्छीवाड़ा के पास पहुंच कर उसको पहिले पहल मालूम हुआ कि आक्रान्ता सतलज की ओर आ रहा है और फिर यह सुना कि उसने नदी को लुधियाना के पास पार किया है। शाहज़ादा ने इस कारण से लुधियाना की ओर प्रयाण आरम्भ किया और प्रस्थान के दो तीन पहरों के पश्चात् यह समाचार आया कि शत्रु सरहिन्द पहुंच गया और उसको लूट लिया। देखो पृ० ५ अ, ६ अ। यह उन सब वर्णनों से विपरीत है जो अन्य सब समकालीन ग्रन्थों में दिये गये हैं, जिनमें आनन्द राम का 'तज़किरा' भी शामिल है जो युद्ध के तुरन्त पश्चात् लिखा गया था और जो इस विषय पर सब अधिक विस्तरित और यथार्थ ग्रन्थ है।

†आनन्दराम ११७; अब्दुल करीम ६७ ब; सियर III-८८१; इलियट में T.A.III-१०७; तारबीर १५१ ब।

समाचार सुनाये जो उसके ईरानी सैनिक लाये थे, वज़ीर को विश्वास न हुआ। परन्तु स्वयं वज़ीर के सन्देश हरों ने इसकी पुष्टि शीघ्र पश्चात् करदी जो अब सरहिन्द की सत्य का पता लगाने भेजे गये थे**। अतः शाहज़ादा ने अपना वापसी प्रयाण १३ मार्च को प्रारम्भ किया और सरहिन्द के १० मील उत्तर-पश्चिम में मनुपुर के गाँव पर पहुँचा। यहाँ पर खाइयाँ खोद दी गईं, बड़ी बड़ी तोपें मिट्टी की भित्तियों पर रख दी गईं, रूमी शैली में सजा दी गईं और परस्पर बाँध दी गईं जिसके चारों ओर गहरी खाई थी। एक बड़ी न्यूनता पानी की कमी थी। बहुत से कुँएँ खोदे गये परन्तु वे मनुष्यों और पशुओं के इतने बड़े विशाल समूह की आवश्यकता को पर्याप्त रूप से पूरा न कर सके*।

सरहिन्द के लूट की वार्ता घटना के कुछ दिनों में ही दिल्ली पहुच गई और बादशाही शहर भारी त्रास से व्याप्त हो गया। बादशाह और दरबार ने रक्षा की बड़ी तैयारियाँ कीं और शत्रु की भावी गति की प्रतीक्षा करने लगे†।

दुर्रानी शाह अब सरहिन्द से ४ मील आगे बढ़ा और दोनों विरोधी दलों में केवल ६ मील का अन्तर रह गया। अफ़ग़ान सेना १२ हजार हल्के अश्वारोहियों की थी जिनमें से ६ हजार घुड़ सवार बन्दूकची थे। इसके पास बड़ी तोपें न थीं सिवाय उनके जिनको आक्रान्ता ने लाहौर और सरहिन्द में छीन ली थीं। भारतीय सेना सख्या में प्रबल थी। इसके भिन्न भिन्न अनुमान थे–ढाई लाख,‡ २ लाख से अधिक,S एक लाख दस हज़ार§ सैनिक और क़रीब दो हज़ार बन्दूकें। परन्तु योधाओं की बहुत बड़ी सख्या को ध्यान में रखते हुए जो उस समय योधाओं के साथ जाती थी, सारी भारतीय युद्ध सेना ७० हज़ार|| से अधिक न हो सकती थी।

मनपुर का रण २१ मार्च १७४८ ई०

१४ मार्च से जिस दिन दोनों सेनाएँ एक दूसरे के समीप आगई

** गुलिस्ता १०१-१०३।

*आनन्दराम ३३६ ; सियर III-८६४।

†ता-अहमद शाही-६ ब-आनन्दराम ३४१-४२।

‡हुसैन शाही-६ ब।

Sगुलिस्तां-१०१।

§गुलिस्तां-२५।

||त-अहमद शाही-६ अ।

दोनों पक्षों के गुप्तचरों में छेड़ छाड़ हुआ करती थी। ईश्वरी सिंह डट कर लड़ाई के पक्ष में था और उसने तुरन्त आक्रमण का सुझाव रखा। परन्तु वज़ीर इस पक्ष में था कि उनके प्रयत्न शत्रु की रसद काट देने में केन्द्रित कर दिये जाएँ, जिससे उसको भागना पड़ेगा। अतः उसने राजा के प्रस्ताव को अस्वीकृत कर दिया†।

अब्दाली भी संख्या में अपनी तुच्छता को जानता था। अतः उसने भारतीय सेना की रसद में विघ्न उपस्थित करने और अनियमित आक्रमणों से उसको तंग करने की नीति अपनायी।

६ दिनों की अनिर्णायक छेड़छाड़ और और असफल वार्तालाप के बाद अब्दाली अन्तिम संघर्ष के लिए तैयार हो गया। १६ मार्च को कमरुद्दीन के शिविर के सामने और दोनों सेनाओं के बीच मैदान में स्थित मिट्टी के एक टीला को उसने हस्तगत कर लिया, उस पर एक बड़ी तोप लगा दी और मुग़लों पर अग्नि वर्षा करने लगा। अब वज़ीर अन्तिम युद्ध को स्थगित न कर सकता था, उसने २१ मार्च को अध्यासित युद्ध करना निश्चित किया और इसके लिये उचित तैयारियाँ कीं। परन्तु दुर्भाग्य से शाहज़ादा अहमद के प्रस्थान के कुछ मिनट पहिले ही वज़ीर को उसके डेरे के एक भीतरी कमरे में तोप का एक गोला लगा जहाँ वह प्रातः कालीन नमाज़ के बाद धार्मिक छन्दों का पाठ कर रहा था और उसने थोड़ी देर में प्राण छोड़ दिये। बिना घबड़ाये हुए उसके ज्येष्ठ पुत्र मीर मन्नू ने वज़ीर के अन्तकाल के उपदेश के पालनार्थ और शाहज़ादा और सफ़दर जंग के विमर्ष से अपने पिता की मृत्यु को गुप्त रहने दिया और छावनी में यह घोषित कर दिया कि अस्वस्थ होने के कारण वज़ीर स्वयं सेना का नेतृत्व नहीं कर सकता है और अपने स्थान पर अपने पुत्र को भेज रहा है। कम से कम समय में बिना विलम्ब के शाहज़ादा की सेना युद्ध सुसज्जा में प्रवर्त्त हो गई। शाही तोपख़ाना सामने था, मीर मन्नू (मुईनुलमुल्क) अग्रदल का सञ्चालक था, सफ़दर जंग दक्षिण पक्ष के अधिकार में था और ईश्वरी सिंह वाम पक्ष में। शाहज़ादा स्वयं सेना

---

† आनन्दराम २४५। परन्तु गुलिस्तॉ-पृ० १०४-१०५ कहता है कि यह प्रस्ताव सफ़दर जंग का था और वज़ीर ने इसको अस्वीकृत किया।

‡ अहमदशाही पृष्ट ७ पर १२ मार्च देता है जब छेड़-छाड़ आरम्भ हुई। परन्तु यह गलत है।

के मुख्य भाग सहित केन्द्र में था। पृष्ठ रक्षक नासिर खां के अधिकार में थे। अहमद शाह अब्दाली ने जो रण स्थल में सबसे पहिले पहुंचा, अपनी चल-सेना को तीन भागों में विभाजित कर दिया, उनमें से दो को मुग़ल दक्षिण और वाम पक्षों के विरुद्ध नियुक्त कर दिया और तीसरा भाग जिसमें ६ हजार घुड़सवार बन्दूकची* और ज़मबुर्क लदे हुये ऊँटोंपर थे जो स्वयं उसकी कमान में था मीर मन्नू और उसके मुग़लों केसामने रखा। दोनों पक्षों की ओर से दोपहर को तोपों की मार से युद्ध शुरू हुआ। अफ़ग़ान दक्षिण पक्ष ने अपने को दो भागों में बाँट लिये जिनमें से हरएक एक दूसरे के बाद राजपूतों पर जल्दी से आक्रमण करता और घोड़ों के पीछे दौड़ा कर अपनी पहली जगह पहुँच जाता। राजपूत जो हथाहत्थी युद्ध की तैयारी में थे आश्चर्य में पड़ गये और उनमें बहुत से मारे गये बिना एक बार किये ईश्वरी सिंह ने, जिसको गुप्त रीति से वज़ीर की मृत्यु का समाचार मिल गया था, अपनी २० हज़ार राजपूतों की सेना सहित रण स्थल छोड़ दिया और अपनी बहुत सी तोपों और सामान मुग़ल छावनी में छोड़कर जयपुर की ओर भाग निकला†। शहज़ादा के बाँईं ओर जो इस तरह से खाली जगह हो गई उससे होकर अफ़ग़ान दक्षिण पक्ष ने भारतीय पृष्ठ भाग और सामान पर आक्रमण प्रारम्भ कर दिया। यद्यपि उसने मुग़ल पृष्ट भाग को बहुत हानि पहुँचाई नासिर खाँ शत्रु को भगाने में समर्थ हुआ। अफ़ग़ान अब शहज़ादा के केन्द्र के पास पहुँचे, परन्तु मीरमन्नू, सआदत खां और ज़ुल्फ़िकार जंग ने वीरता से उन पर आक्रमण किया और उनको कुछ हानि पहुंचाकर पीछे ढकेल दिया। अब्दाली शाह ने इस समय भारतीय हरावल पर आक्रमण किया जो इस समय तक

---

* आनन्दराम इनकी संख्या १२ हज़ार बताता है।

† सभी ग्रन्थकार कहते हैं कि ईश्वरीसिंह बिना एक वार किये ही युद्ध के आरम्भ में ही भाग गया। परन्तु गुलिस्तां जो अप्रधान मूल ग्रन्थ है कहता है कि राजपूत अच्छी तरह लड़े और युद्ध के अन्त के पास ही अपनी बची हुई सेना लेकर रण भूमि से चल दिए। गुलिस्तां पृष्ट ११०। आनन्दराम के अनुसार राजपूत सेना की संख्या २० हज़ार थी। सियर २० से ३० हज़ार तक बताता है। गुलिस्तां ३० हज़ार। और इमाद और माउदन इससे बढ़ कर भी अतिशयोक्ति कर के क्रमशः इसको १२ से ४० ४० हज़ार तक पहुंचा देते हैं।

केन्द्र से मिल आया था। अपने भाइयों फ़खरुद्दीन, सद्रुद्दीन और नज्मुद्दीन की सहायता से मीरमन्नू अतिमानुषीय वीरता से लड़ा। उसके दो तरकश खाली हो गये और उसने बहुत से अफ़ग़ानों को मार गिराया। परन्तु जाँनिसार खां, शिहाबुद्दीन खां और उसका पुत्र और बाहरोज खां ऐसे उसके कुछ मुख्य याचक मारे गये और स्वयं और उसके छोटे भाई फ़खरुद्दीन को छोटे छोटे घाव लगे। अब्दाली दबाता ही गया और ऐसा प्रतीत होता था कि मुग़ल सेना पर बड़ी विपत्ति टूटने वाली थी।

युद्ध स्थल के इस भाग में जब भविष्य निराशा मय था दक्षिण पक्ष सफ़दर जंग के नेतृत्व में शत्रु पर पूर्ण विजय प्राप्त कर रहा था। अब्दाली सैन्य-भाग जो सफ़दर जंग के सामने था, भारतीय दक्षिण पक्ष के सामने एक टेकरी पर अधिकार कर लिया था और मीर आतिश की तोपों से अधिक ऊँची भूमि पर बैठे हुये ऊँटों की पीठ से वह लम्बी बन्दूकों की मार कर रहा था। सफ़दर जंग ने अपने बन्दूकचियों को आज्ञा दी कि घोड़ों से उतर पड़ें और अफ़ग़ानों पर आक्रमण करें। ये लोग शत्रु पर झपटे, अपनी लम्बी बन्दूकें इन्होंने चलाईं, प्रायः सब अफ़ग़ानों को मार डाला, टेकरी पर शत्रु के सारे ऊँटों और बन्दूकों सहित अधिकार कर लिया। बचे हुये शत्रु भाग निकले, उन पर सफ़दर जंग के क़िज़िलबाशों ने आक्रमण किया और उनकी सब लम्बी बन्दूकों और ऊँटों को छीन लिया। अब्दाली की सेना ने अपनी स्थिति संभालने का और टेकरी पर पुनः अधिकार करने का नव प्रयास किया परन्तु अवध के राज्यपाल ने उनको पीट कर पीछे हटा दिया। इस समय बादशाही अग्रदल और केन्द्र की दीन दशा की सूचना सफ़दर जंग को मिली। सो उसने बहुत जल्दी शाहज़ादा को सैनिकों और तोपों की कुमक भेजी और उसी समय अपनी ओर से शाह के आदमियों पर आक्रमण कर दिया। अपने को अपने सैनिकों को और अपने तोपख़ाना को मीर मन्नू और अफ़ग़ान सेना के बीच में झोंक कर उसने अफ़ग़ानों की गति को रोक दिया। पहले भाग शत्रु पर ताज़ा ईरानी सैनिकों के एक दल ने अकस्मात् आक्रमण किया और उन्होंने उन पर विनाशक अग्नि-वर्षा की। इस समय कई गाड़ी भर हवाइयों में जिनको शाह ने सरहिन्द में छीन ली थीं और लाया था, आग लग गयी और उनके यकायक विस्फोट से हज़ारों मर गये। प्रत्येक दिशा में उड़ कर उन्होंने बहुत दबे हुये अफ़ग़ानों में अनेकों को मार दिया और

उनको रण भूमि में तितर बितर कर दिया। उनको सगठित करने के अपने प्रयासों मे असफल होने पर अहमदशाह ने बुद्धिमानी से जब उसकी सेना छिन्न-भिन्न हो गई थी और उसके सैनिक अपने डेरों को भाग गये थे रणभूमि को छोड़ दिया। सायं को मुगल शाहजादा विजयी होकर अपने शिविर को लौट आया*।

अब्दाली शाह का पलायन २५ मार्च

यकायक आक्रमण के भय से भारतीय सेना ने घोड़ों की पीठों पर रात बिताई। सरदार और सामन्त अपने हाथियों पर बैठे रहे। चूँकि अब्दाली अपने शिविर के बाहर न निकला, २२ मार्च को या और किसी आगामी दिवस को युद्ध न हुआ। मुग़ल शाहज़ादा की शका को शान्त रखने के लिये और अपनी पराजय को छुपाने के लिये अहमदशाह अब्दाली ने सफदर जंग द्वारा शान्ति के लिये वार्तालाप शुरू किया। वह वापस जाने को तैयार हो गया यदि सिन्धुपार प्रान्त अफग़ानिस्तान सहित विधिवत् उसको दे दिये जायें और पंजाब के राजस्व कर से २५ लाख रुपये प्रतिवर्ष उसके कोष में भेज दिये जाया करें। निस्सन्देह ये मांगें अस्वीकृत रहीं और २६ मार्च को प्रभात में भारतीय सेना युद्ध के लिये तैयार हो गई जब बड़े आश्चर्य और हर्ष से उनको पता चला कि सर-हिन्द के बाहर एक बाग़ में अपनी बहुत सी तोपें और अपना भारी सामान छोड़ कर शत्रु गतरात्रि में भाग गया था। कोई उल्लेखनीय

* आनन्दराम ३५१-३६२ अब्दुलकरीम ६८ब; सियर III ६६४; त० अहमदशाही ७ब-८ब; त० म० १३४ अ और ब; शाकिर ६२; म० उ० I ३६६; गुलिस्तां जिसका लेखक जन्म से ईरानी है, विजय का श्रेय केवल सफ़दर जंग और उसके सैनिकों की वीरता को देता है और कहता है कि हिन्दुस्तानी और तूरानी सैनिकों ने कुछ नहीं किया। देखो गुलिस्तां पृ० १११-११२। वज़ीर का मीर मुन्शी आनन्दराम इसके विपरीत मीर मन्नू की वीरता की सराहना करता है और कहता है कि विजय का श्रेय मुख्यतया उसको है। परन्तु वह यह बढ़ा देता है कि सफ़दर जंग ने अपनी ओर से उन पर आक्रमण किया वीरता से लड़ा।

त०-अहमदशाह-पृ० ७ अ और ब० हिन्द युद्ध की और क़मरुद्दीन ख़ाँ की मृत्यु की ग़लत तिथियाँ देता है। इसके अनुसार सफ़दर जंग वाम पक्ष के अधिकार में था और दक्षिण पक्ष पर ईश्वरी सिंह।

पीछा न किया गया। अब्दाली के पते से अपरिचित और यकायक आक्रमण से भयभीत भारतीय सेना मन्द गति से ठहर-ठहर कर शत्रु के पीछे चली और २६ और २७ मार्च को डिम्ब युद्ध हुआ। परन्तु अब्दाली को प्रस्थान करने के लिये कुछ दिन साफ मिल गये थे और इसलिये शाहज़ादा ने उससे पुनः युद्ध करने का विचार छोड़ दिया*। वह २ दिन और छावनी में ठहरा रहा और २८ मार्च को सरहिन्द पर पुनः अधिकार कर लिया।

दूसरे दिन शाहज़ादा अहमद ने लाहौर की ओर अपना प्रयाण पुनः आरम्भ कर दिया। ३१ को लुधियाना के समीप सतलज के तट पर पहुँचा। यहाँ पर नवाब सफ़दर जंग की बीमारी के कारण वह बहुत दिनों तक ठहरा रहा, जो शाहज़ादा का उपदेशा और क़मरुद्दीन खाँ की मृत्यु के पीछे सेना का वास्तविक नेता बन गया था। सफ़दर जंग द्वारा स्वास्थ्य लाभ पर भी सेना आगे न बढ़ सकी। इस समय अब्दाली के विरुद्ध अभियान के विचार को सफ़दर जंग ने ठीक न समझा।

शाहज़ादा की विजय और शत्रु के पलायन का समाचार २८ मार्च को दिल्ली पहुँच गया। मीर मन्नू और सफ़दर जंग की वीरता पर अति प्रसन्न होकर मुहम्मद शाह ने लाहौर और मुलतान की राजधानी मीर मन्नू को दे दी और शाहज़ादा और सफ़दर जंग को वापस दिल्ली बुला लिया। १६ अप्रेल को एक शाही फरमान शाहज़ादा के पास पहुँचा अतः उसने मीर मन्नू को २१ को अपने नये कार्य भार पर भेज दिया, और २२ को नासिर खाँ को काबुल भेज दिया दूसरे दिन राजधानी के प्रति उसने अपना वापसी प्रयाण प्रारम्भ कर दिया†।

* आनन्दराम २६८, १३५ और २३६। न अहमदशाह १०ग ११ख

† सियर III पृ० ६४; अब्दुलकरीम १०३ अ; न अहमदशाह ११०

अध्याय १२

सफ़दर जंग साम्राज्य का वज़ीर

(१७४८-१७५३ ई०)

अहमदशाह की राजगद्दी २८ अप्रेल १७४८ ई०

अब्दाली आक्रान्ता के विरुद्ध अपने पुत्र के प्रस्थान के कुछ दिनों बाद बादशाह मुहम्मदशाह की बीमारी ने उग्ररूप धारण कर लिया और दिल्ली के क़िला के मोती महल में २५ अप्रेल १७४८ ई० की रात्रि को २ बजे के क़रीब उसका देहान्त हो गया।* मलकए ज़मानी (मृतक की पटरानी) ने बुद्धिमत्ता से अपनी पति की मृत्यु छुपा दी और अपने सौतेले पुत्र को दूत पत्र भेजे कि शीघ्र दिल्ली वापस आये। शाहज़ादा अहमद को ये पत्र पानीपत के ऐतिहासिक नगर के पास अपने शिविर में २८ अप्रेल को प्राप्त हुये। सफ़दर जंग की राय से† उसने अपनी राजगद्दी उसी दिन करवाली और मुजाहिदुद्दीन अहमद शाह बहादुर गाज़ी की उपाधि धारण की। अपने ही हाथों से शाहज़ादा के सिर पर सफ़दर जंग राजछत्र थामे रहा जिसे उसने एक साधारण टोकरी को सोने चाँदी के काम के कपड़े से ढक कर बनाया था। सफ़दर जंग ने अपनी नज़रें पेश कीं और राजगद्दी पर बैठने का उसको मुबारकबाद दिया। छावनी के अन्य सामन्तों ने उसका अनुकरण किया। नये बादशाह ने सफ़दर जंग को वज़ारत का वादा

---

* दिल्ली समाचार १४; अब्दुलकरीम १०२ ब; सियर III ८६४; त अहमदशाही ११ ब।

† शाहज़ादा की इच्छा थी कि दिल्ली पहुँचने तक अपनी राजगद्दी को स्थगित रखे परन्तु सफ़दर जंग ने बहुत बुद्धिमत्ता से इस पर बल दिया कि उसका राज्यारोहण तुरन्त घोषित कर दिया जाये और एक दम के भी अन्तरावकाश को अवसर न दिया जाये जो सम्भवतया विपत्ति पूर्ण हो सकता था (ता० अहमदशाही, १२ अ)

किया—यह कहते हुए—"मैं आपको आपकी वज़ारत की मुबारक बाद देता हूँ"‡।

अहमद शाह ने अब अपनी यात्रा पुनः आरम्भ कर दी और १ मई को दिल्ली से कुछ मील अन्दर पहुँच गया। अतः मुहम्मद शाह की मृत्यु घोषित कर दी गई और शव को जुलूस में गढ़ के बाहर लाया गया और निज़ामुद्दीन औलिया की क़ब्र के पास दफ़न कर दिया। २ मई को नया बादशाह शालीमार बाग़ पहुँचा और यहाँ पर फिर उपयुक्त शोभा और आमोद प्रमोद से उसको राजगद्दी पर बैठाया गया। ४ मई को प्रभात में ११ बजे के क़रीब एक विशाल काय हाथी पर सवार होकर उसने नगर में प्रवेश किया और ६ मई को पहिली बार वह बादशाह की हैसियत से जामा मस्जिद को गया जहां पर अपने नाम का ख़ुत्बा उच्चारित होते उसने सुना§।

सफ़दर जंग की वज़ीर पद पर नियुक्ति—२६ जून १७४८ ई०

यद्यपि पानीपत में अहमद शाह के राज्यारोहण के दिन ही सफ़दर जंग को वज़ीर के पद पर नामज़द कर दिया गया था, परन्तु विधिवत् नियुक्ति अब तक न हुई थी। दक्षिण के योग्य, वृद्ध षड्यन्त्रकारी निज़ामुल्मुल्क के इरादा की ओर से, जिसकी सत्ता और पद की लिप्सा आयु के साथ घटी न थी, नया बादशाह और सफ़दर जंग दोनों चिन्तित थे। उसके विचारों का पता लगाने के लिये उन्होंने उसको लिखा कि वह दिल्ली आवे और साम्राज्य का प्रधान मन्त्री के रूप में पथ-प्रदर्शन करे। निज़ाम ने वृद्धावस्था और अस्वस्थता के कारण क्षमा मान्गना कर ली और इन शब्दों के साथ—"समय के बालकों में आप सब से होनहार हैं। राज्य

---

‡ दिल्ली समाचार ३५; सियर III ८६४; ता० अहमदशाही १२ अ समाचार की तिथि है—३० रबी II; इसको होना चाहिये १ जमादी प्रथम ११६१ हि०।

§ दिल्ली समाचार पृ० ३५-३६; ता० अहमदशाही १३ ब; सियर III ८६५। दिल्ली समाचार ता० अहमदशाही और दूसरी पुस्तकों में दी हुई तारीख़ों में एक दिन का अन्तर पड़ता है। इसका कारण यह है कि पहिले दो के अनुसार ११६१ हि० के रबी II में ३० दिन थे और दूसरों के अनुसार केवल २६। मैं इन पीछे वालों को मानता हूँ जैसा कि स्वामी कन्नू पिल्लाई की भारतीय पञ्चांग में दिया है।

के हित में जो आप उचित समझें करें और राज्य में जिस प्रकार आप से हो सके सुव्यवस्था स्थापित करें" अपने पत्र को समाप्त करते हुये सफ़दर जंग को उपदेश दिया कि वह पद को स्वीकार कर ले। यद्यपि वज़ीर के कार्यों को वह बराबर करता रहा परन्तु सफ़दर जंग की हिम्मत पत्र की प्राप्ति के बाद भी पद को ग्रहण करने की न हुई। निज़ाम की मृत्यु पर जो ३१ मई १७४८ ई० को करीब ४ बजे सायंकाल हुई, बादशाह ने विधि पूर्वक २६ जून १७४८ ई० को रिक्त स्थान पर सफ़दर जंग को नियुक्त कर दिया; उसको बहुमूल्य पुरस्कारों से आभारी किया, ८ हज़ार ज़ात और ८ हज़ार सवार के मन्सब पर उसको उन्नत किया और उसको जमतुल्मुल्क अबुल मन्सूर खाँ बहादुर सफ़दर जंग सिपहसालार की उपाधियों से विभूषित किया†। उसी दिन वह स्नानागार (गुसलखाना) का भी अध्यक्ष नियुक्त हुआ। १६ जुलाई को अजमेर की राज्यपाली और नारनौल की फ़ौजदारी अपने पैतृक प्रान्त अवध के अतिरिक्त उसको दिये गये और उसके पुत्र जलालुद्दीन हैदर को शुजाउद्दौला बहादुर की उपाधि दी गई और वह अपने पिता के पूर्व पद—बादशाही तोपख़ाना का अध्यक्ष—पर भी नियुक्त कर दिया गया‡। सफ़दर जंग ने अपने नये सूबा अजमेर

†सियर III-८६८-८६६; शाकिर ६२; आज़ाद ८७ ब और ८ आ; त-म० १३७ अ० १३८ ब; दिल्ली समाचार ३५-३७; तबसीर २५ ब०, ता० अहमद शाही १४ ब०।

गुलाम अली और सुल्तान अली सफ़वी, जो १६ वीं शती के आरम्भ में लखनऊ दरबार के पक्षपाती वायुमण्डल में लिख रहे थे, यह सिद्ध करते हैं कि सफ़दर जंग उसी दिन मन्त्री नियुक्त हो गया था जिस दिन अहमद शाह राजगद्दी पर बैठा था और कहते हैं कि यह राय ग़लत है कि निज़ाम की मृत्यु तक उसने अपने पद के वस्त्र न धारण किये। कोई समकालीन इतिहासकार उनका साथ नहीं देता है। इमाद ३६; मासिरुल IV १६५ ब; गुलिस्तां पृ० २६-२७; कहता है कि क़मरुद्दीन का पुत्र इन्तिज़ामुद्दौला भी प्रधान मन्त्री के पद के लिये उम्मीदवार था। सो सफ़दर जंग ने अली मुहम्मद खां रुहेला से मदद मांगी। खाँ ने हाफ़िज़ रहमत को एक पठान टोली देकर भेजा जिसने इन्तिज़ामुद्दौला का दरबार जाने का मार्ग रोक लिया। इस बीच में सफ़दर जंग महल को गया और पद के वस्त्र से सम्मानित किया गया। यह पीछे की गप्प है।

‡दिल्ली समाचार १६; सियर III ८०२; ता० अहमद शाही १५ ब०

को इलाहाबाद से बदल लियाई§; जो अवध से मिला हुआ था और जो नये अमीरुलउमरा और मीर बख्शी सआदत खाँ ज़ुल्फ़िक़ार जंग को दिया गया था। इन दो सामन्तों और जवेद खां ने भूतपूर्व निज़ाम और क़मरुद्दीन खाँ की जागीरों को आपस में बाँट लिया—दूसरे के पुत्रों को केवल वे परगने छोड़ दिये जो उनकी पिताओं के जीवन काल में उनके हाथों में थे‡।

वज़ीर का कार्य भार और उसकी कठिनाइयाँ

प्रसिद्ध बालक अकबर के संरक्षक बैरम खां के दिनों १५५६ ई० से किसी मुग़ल प्रधान मन्त्री को इतना कठिन कार्य भार नहीं उठाना पड़ा था जितना कि नये वज़ीर को। साम्राज्य जो वास्तव में भारत के महाद्वीप में फैला हुआ था तुच्छता को प्राप्त हो गया था और अधिकांश प्रान्तों ने इसका जुआ उतार फेंका था। बंगाल, बिहार और उड़ीसा अलीवर्दी खां की अधीनस्थता में और अवध और इलाहाबाद स्वयं वज़ीर की अधीनस्थता में होते हुए भी स्वतन्त्र से ही थे। रुहेल खण्ड का अपहरण अली मुहम्मदखां रुहेला ने कर लिया था। आगरा का अधिकांश भाग और फ़र्रुख़ाबाद तक उत्तर में दिल्ली का कुछ भाग सूरज-मल जाट के और उसके जाति भाइयों के अधीन थे*। जब कि अजमेर सहित राजपूताना मुग़ल प्रभुता की चद्दर से सर्वथा बाहर राजपूत शासन का आनन्द ले रहे थे। मुग़ल राज्यपाल के विद्यमान रहते भी गुजरात कई वर्षों से मराठों के प्रभाव क्षेत्र में आ चुका था जिन्होंने अपने को बुन्देल खंड और मालवा में भी स्थायी रूप से जमा लिया था। सारा दक्षिण केवल उपाधिधारी बादशाह से उदासीन था और नवम्बर १७४७ ई० में सिन्धुपार प्रान्त अहमद शाह अब्दाली के अधीन हो चुके थे। इस प्रकार मुग़ल प्रदेश आगरा से अटक तक सीमित हो गया था और साम्राज्य का शब्द मिथ्यानाम हो गया था।

साम्राज्य के नैतिक गौरव द्वारा सहन की हुई हानि इससे भी अधिक थी। जिसका अपनी प्रजा में न कोई भय था न मान ऐसी शीघ्र नष्ट होती हुई मुग़ल शक्ति की कोई परवाह न करते हुये मराठे पिछले कई वर्षों से

§सियर III ८८६।
‡त० अहमदशाही ३१५ ब-३६ अ।
* ता० अहमदशाही २३ ब०

१ भा

दिल्ली में मनमानी कर रहे थे। अपने नियमित वार्षिक अभियानों द्वारा होल्कर और सिन्धिया उत्तर भारत को अपनी शक्ति के आगे नत मस्तक कर रहे थे। पूर्वी प्रान्तों में रघुजी भौंसले के आवर्तित उपप्लवों ने बंगाल से वार्षिक करके प्रवाह को रोक दिया था। अब्दाली आक्रान्ता ने नादिरशाह का कार्य आरम्भ कर दिया था। उसके साथ मित्र सम्बन्ध में बँधे हुये रुहेल खण्ड के विश्वासघाती रुहेले थे जिनका उद्देश्य हिन्दुस्तान में अफ़ग़ान प्रभुता की स्थापना था। अतः अफ़ग़ान आक्रान्ता की छोटी से छोटी चाल भी दिल्ली दरबार में भय का सञ्चार कर देती थी। मुगल साम्राज्य का सर्वनाश केवल समय का प्रश्न मालूम होता था।

इन विपत्तियों के प्रति सफ़दर जंग तुष्ट-संज्ञ न था। वह साम्राज्य को बचाने का इच्छुक था†। परन्तु उसके शत्रुओं ने उसको कोई अवसर न दिया। भूतपूर्व वज़ीर क़मरुद्दीन ख़ाँ का द्वितीय पुत्र इन्तिज़ामुद्दौला के नेतृत्व में तूरानी दल विज़ारत को उसका पैतृक अधिकार मानता था और वह अपने दो शक्तिशाली नातेदारों लाहौर और मुलतान के राज्यपाल मीर मन्नू और दक्षिण के राज्यपाल नासिरख़ाँ की सहायता से वज़ीर को प्राप्त करने का षडयन्त्र कर रहा था। नीच उद्‌गम और रुचि की महिला राजमाता ऊधमबाई की मित्रता में नवाब बहादुर की उपाधि से प्रसिद्ध षण्ड जावेद ख़ाँ प्रधान मन्त्री के कर्तव्य का अपहरण कर रहा था, चतुरता से बादशाह को सफ़दरजंग के विरुद्ध कर रहा था और अपने नववयस्क स्वामी को प्रत्येक प्रकार के इन्द्रिय भोग से परिचित कर रहा था। अल्प बुद्धि नवयुवक अहमदशाह वज़ीर को विश्वास और सहायता न देता था‡ और अपने समस्त गौरवहीन राजत्वकाल में उसने

---

† सरदेसाई जिल्द ३ पृ० ८।

‡ ता० अहमदशाही के लेखक जो बादशाह अहमद शाह का दरबारी था बादशाह की विचार हीनता और उसके अनुत्तरदायी आचरण का एक प्रतिरूपक उदाहरण देता है जिससे प्रगट होता है कि अपने राजत्व काल के आरम्भ से ही वह जावेदख़ाँ के दुष्ट प्रभाव में कितना पूरी तरह फँस गया था और वह स्वयं कैसे वज़ीर के कार्य में विघ्न उपस्थित करता। वह लिखता है—"अहमदशाह ने अपने को भोग-विलास में व्यस्त कर दिया और सारा कार्य जावेदख़ाँ पर छोड़ दिया जो बादशाही अन्तःपुर के भीतर और बाहर सब बातों का अधिकारी हो

एक दल को दूसरे से लड़ाने की आत्मघातक नीति का अनुसरण किया जो इतनी प्रत्यक्षता से मराठा वकीलों हिंगने भ्राताओं और अन्ताजी मानकेश्वर के पत्रों में व्यक्त है।

वज़ीर की नीति

वज़ीर के पद पर अपना नाम निर्दिष्ट के बाद सफ़दर जंग ने अपने सामने एक साहसी और महत्वाकांक्षी कार्यक्रम रखा जो हमको पूर्णतया कार्यान्वित होने के अयोग्य मालूम होता है यद्यपि वह इतना भाग्यशाली भी होता कि उसको बादशाह और उसके दरबार की सहायता प्राप्त होती। अपने मन्त्रीत्व के प्रथम तीन वर्षों में वह यह स्वप्न लेता रहा कि छिन्न साम्राज्य की सीमाओं को उत्तर-पश्चिम में फारसी राज्य के दक्षिण पूर्व तक और दक्षिण में नर्मदा नदी तक बढ़ा दे*। साम्राज्य के अन्दर वह जाटों, बंगशों और रुहेला अफ़गानों के उपनिवेशों को उखाड़ फेंकना चाहता था। शालीमार बाग़ में अहमद शाह की दूसरी राजगद्दी के बाद उसने नये बादशाह को यह प्रेरणा दी कि वह राजधानी में प्रवेश न करे

गया। यह अनुभव करके कि जावेदखां कितना चालाक और महत्वकाँक्षी था सफ़दर जंग ने एक दिन सायंकाल को बादशाह से निवेदन किया—'जब तक हुजूर स्वयं प्रशासन की ओर ध्यान नहीं देंगे, साम्राज्य की दशा नहीं सुधरेगी'। अहमदशाह ने उत्तर दिया—'जो कुछ आप कहना चाहते हैं नवाब बहादुर से कहें और वह उसको मुझ तक पहुँचा देंगे'। इन शब्दों को बोलता हुआ वह हरम में चला गया। सफ़दर जंग ने जावेदखां को कहा कि यदि बादशाह देश, सेना, सेवक वर्ग और आर्थिक स्थिति की ओर ध्यान नहीं देगा वह विज़ारत के कर्तव्यों का पालन न कर पायेगा। यदि बादशाह अपने समय में से उसको एक या दो घण्टा देवे, वह बातों को सविवरण उसके सामने रखेगा और फिर उसकी आज्ञानुसार कार्य करेगा। हिजड़ा ने उत्तर दिया कि वज़ीर स्वयं बादशाह को यह बात कह सकता है और यह भी कहा कि वह (सफ़दर जंग) वज़ीर था और सारा प्रशासन उसके हाथों में था, वह अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकता था। सफ़दर जंग रुष्ट हो गया और यह सोचता हुआ अपने घर चला गया कि बादशाह स्वयं जावेदखाँ द्वारा प्रशासन के अपहरण का उत्तरदायी था। (देखो ता० अहमदशाही १७ ब)

*शाकिर ६४।

परन्तु अब्दाली के विरुद्ध अपनी नवीन सफलता का अनुसरण करे, सिन्धु के आगे प्रयाण करे और अफ़ग़ानिस्तान पर पुनः अधिकार कर ले†। परन्तु जावेद ख़ाँ के द्वारा उकसाये हुये अहमद शाह ने संकटमय उद्योग की अपेक्षा आलस्यमय विश्राम के जीवन को पसन्द किया। जब १७५२ ई० के प्रारम्भ में रुहेला और बंगश पठानों के विरुद्ध अपने अभियान की सफल समाप्ति पर वज़ीर दिल्ली को वापस आया उसने मराठों की सहायता से पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान की पुनः प्राप्ति का प्रश्न उठाया‡। परन्तु इस समय भी इसका भाग्य वही रहा जो पहिले था। जैसे-जैसे समय बीतता गया सफ़दर जंग अपनी योजना की असाध्यता समझता गया जिसको उसे विवश होकर धारा प्रतिधारा छोड़ना पड़ा। अन्त में शत्रुओं के दल के विरुद्ध दरबार में अपनी स्थिति को बनाये रखने की उसकी इच्छा ने उसके सारे ध्यान को आसक्त कर लिया। अपनी योजना के किसी अंग को वास्तविकता का रूप देने के और दरबार में प्रतिक्रियावादी शक्तियों से युद्ध करने के उसके असफल प्रयत्नों का वर्णन आगे के पृष्ठ देंगे। अन्त में वह इनके षड्यन्त्रों का शिकार हुआ।

वज़ीर के जीवन पर एक घात—३० नवम्बर ७४८ ई०

वज़ीर के अपसरण की इच्छा से इन्तिज़ामुद्दौला ने, जो अपने प्रतिद्वन्दी से योग्यता, साहस और सैनिक बल में बहुत कम था, नवम्बर १७४८ ई० के अन्त में, उसके जीवन के विरुद्ध षड्यन्त्र की रचना की। छत्ता निगमबोध के नाम से प्रसिद्ध एक ढके हुए रास्ते के अन्दर स्थित एक मकान की अदृश्य छत पर उसने कुछ हल्की तोपें, तोड़े दार बन्दूकें, हवाइयाँ, सुरंगें और दूसरे दहनशील पदार्थ छुपा दिये और चतुर बन्दूकचियों द्वारा नीचे सड़क पर जाते हुए सवार पर उनको साध कर लगवा दिये। लाल क़िला के कलकत्ता फाटक के उत्तर, दिल्ली के मोहल्ला निगमबोध में नहर के पास यह रास्ता था और दरबार से आते-जाते इस रास्ते से सफ़दर जंग प्रायः निकलता था। ईद के दिन जो ३० नवम्बर १७४८ ई० को था, ईदगाह में बादशाह के साथ सामूहिक नमाज़ में शामिल होकर और बादशाह को बादशाही क़िला में पहुंचा कर सफ़दर जंग अपने मकान को वापिस हो रहा था, और जैसे ही वह उस अन्धेरे

†शाकिर ६३; हरिचरण ३६६ ब।
‡ता० अहमदशाही–२४ ब।

ढके हुए रास्ता में पहुँचा षड्यन्त्र कारी के कर्ताओं ने होशियारी से रखे हुए तोपख़ाना में आग लगा दी। यकायक विस्फोट हुआ, रास्ता धुएँ से भर गया और पास की कुछ दुकानों के छप्परों में आग लग गई। तोपें टोपीदार बन्दूकें और टोंटीदार हवाइयां छुट पड़ीं जिन से वज़ीर के कुछ अनुचर जो उसके आगे घोड़ों पर थे मर गये। सफ़दर जंग के घोड़े को भी गोली लगी और वह अपने मालिक सहित जमीन पर गिर गया परन्तु वज़ीर सौभाग्य से चोट खाने से बच गया। दल भयभीत हो गया और तुरन्त तलाश के बावजूद किसी अपराधी का पता न चला। सुरक्षित रास्ता की बाहरी और उस दुकान का पिछला दरवाज़ा जिससे तोपख़ाना को आग आई थी बाहर से बन्द पाया गया। जन साधारण का विश्वास था कि इस उपघात का उत्पादक इन्तिज़ामुद्दौला था सफ़दर जंग ने आज्ञा दी कि वह ढका हुआ रास्ता और मकान जो उसके दोनों ओर बने हुये थे गिरा दिये जायें। दारा शिकोह का महल—अर्थात् वज़ीर का निवास स्थान और मोहल्ला निगम बोध के पास बहने वाली नहर के बीच की सब दुकानें और मकान भूमिसात् कर दिये गये। बहुत प्राचीन समय से हिन्दु साधु और भिखारी नगर के इस भाग में रहा करते थे, वे अब निकाल दिये गये और उनके घरों की जगह पर सफ़दर जंग के सैनिकों के निवास स्थान बन गये*। इस उपघात ने, जो उस के पदग्रहण के कुछ ही महीनों के अन्दर हुआ था, वज़ीर और बादशाह में ग़लत-फ़हमी उपस्थित कर दी क्योंकि उसको सन्देह हुआ कि बादशाह ने जान बूझ कर तूरानी वैर भाव की ओर उपेक्षा कर दी है। सफ़दर जंग को आने वाली विपत्तियों की गन्ध लग गई, उसने दरबार में आना बन्द कर दिया और ५ दिसम्बर १८४८ को† अवध को प्रस्थान के लिये तैयार होकर उसने अपने अग्रिम डेरे नदी तट पर भेज दिये। निकट भविष्य में होने वाली घटनाओं ने यह सिद्ध कर दिया कि यह अपने

*दिल्ली समाचार ४६; ता० अहमदशाही १७ ब-१८ ब; शाकिर ७२; अब्दुल करीम १०४ अ; त.म. १६३ अ और ब; तारीखे अली १६३ अ और ब; मीराते आफ़ताब नुमा २४१ अ। तारीखे अली सब से अच्छा वर्णन देती है। शाकिर ग़लती से समझता है कि यह उपघात जावेद ख़ाँ की हत्या के बाद हुआ।

†दिल्ली समाचार ४६।

शत्रुओं और दोनों के सामान्य स्वामी के प्रयोजनों और उद्देश्यों को ठीक ठीक समझ गया था।

वज़ीर को पदच्युत करने का षड्यन्त्र जनवरी-मई १७४६ ई०।

वज़ीर के नगर से हट जाने पर जावेद खाँ और इन्तिज़ामुद्दौला को अवसर प्राप्त हुआ। देश में सत्ता और बादशाह पर सर्वोपरि प्रभाव प्राप्त करने की अपनी महत्त्वाकांक्षी और दुराशयी योजना के मार्ग में लालची षण्ड सफ़दरजंग को बाधक समझता था। इन्तिज़ामुद्दौला उसको प्रधान मन्त्री के पद का अपहारक समझता था, जो उसके पिता की मृत्यु के पीछे अवश्य उसी को मिलती यदि सफ़दरजंग न होता। इन षड्यन्त्रकारी महाव्यक्तियों ने मूर्ख बादशाह को यह समझा दिया कि सफ़दरजंग पर वार करने का अविलम्ब और उपयुक्त अवसर आ गया है। इसका ध्यान न रखकर कि अहमदशाह अब्दाली अपनी लालच भरी आँखों को पंजाब पर लगाये हुये है बादशाह ने तूरानी दल के सामन्तों से मिलकर वज़ीर को परास्त करने का षड्यन्त्र आरम्भ किया। वह इस भ्रम में पड़ा हुआ था कि सफ़दरजंग की प्रादेशिक, आर्थिक और सैनिक शक्ति उसकी रक्षा के लिये भयकारी थी और निज़ाम के द्वितीय पुत्र और दक्षिण के राजप्रतिनिधि की गद्दी पर उसके उत्तराधिकारी नासिर जंग को उसने एक पत्र लिखा जिसमें उससे प्रेरणा की गई कि अपने प्रान्तों से वह जितने सैनिक ला सके उनको लेकर तुरन्त दरबार में उपस्थित हो*। जावेद खाँ ने भी उसी आशय का पत्र उसको लिखा। षड्यन्त्रकारियों बादशाह, जावेद खाँ, इन्तिज़ामुद्दौला, नासिर जंग और सादीउद्दीन खाँ फ़ीरोज़ जंग का उद्देश्य यह था कि वज़ीर और मीर बख़्शी की (सआदत खाँ जुल्फ़िक़ार जंग जो वज़ीर का मित्र था) पदच्युति सैनिक दबाव से प्राप्त की जावे और इन्तिज़ामुद्दौला और नासिर जंग को क्रमशः उनके स्थानों पर नियुक्त करा दिया जाये जैसे ही नासिर जंग अपने भयानक दल लेकर पहुँचे।

अपने नायब सैयद लश्कर खाँ को औरंगाबाद में छोड़कर, जो उस समय निज़ाम के प्रदेश की राजधानी था, नासिर जंग ने केवल यह घोषित कर कि वह बादशाह के दर्शन करने जा रहा था मार्च १७४६ ई० में अनुमानतः ७० हज़ार सैनिकों और बड़ा तोपख़ाना की अशास्त्र सेना

*सियर III ८८६; मआसिरे आलमगीरी १२७; म० उ० III ८५०।

लेकर दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। वज़ीर को अशंक रखने के लिये नीचे की पंक्तियों का कूट नीतिक पत्र उसने वज़ीर को लिखा :—

"मेरे उत्तर अभ्यागमन का एक मात्र उद्देश्य यहाँ पर मराठों को दण्ड देना है। आप उदारता पूर्वक मुझ पर यह कृपा करें कि दक्षिण की राजधानी में मैं स्थिर कर दिया जाऊँ और सआदत खां ज़ुल्फ़िक़ार जंग की जगह पर मैं मीर बख्शी नियुक्त कर दिया जाऊँ जिसने वह पद मुझ से छीन लिया है। हम दोनों सविचार होकर साम्राज्य को व्यवस्था में लावेंगे। बालाजीराव ने हिन्दुस्तान तक साम्राज्य पर अधिकार जमा लिया है। वह बेईमान धोखाबाज़ है। यदि आप उसकी मित्रता पर विश्वास करेंगे आप को अवश्य धोखा होगा। धोखा देना उसका पेशा है और वह केवल धन का ध्यान रखता है और किसी का नहीं। मुझ को सुरक्षित पहुँचने दीजिये और बालाजीराव को दण्ड देने के लिये हम संयत हो जायें। विश्वास रखें मैं आपकी आज्ञा-वश हूँ।"

मराठों की संस्थिति जानने के लिये जिनस १७४७ ई० से उसकी मित्रता थी सफदरजंग ने दिल्ली के मराठा वकील बापूजी महादेव को बुलाया और उसको नासिर जंग का असली पत्र दिखाया यह कहते हुए "यदि बालाजीराव का विश्वास ऐसा ही हो जैसा इसमें वर्णित है, मुझे नासिर जंग से सन्धि कर लेना चाहिये तब आप मुझे दोष न देंगे।" नासिर जंग की योजना और उन पत्रों के अन्तर्गत से पूर्व परिचित जो उसने बादशाह, फ़ीरोज़जंग और इन्तिज़ामुद्दौला को लिखे थे महादेव ने नासिर जंग के द्वेष भाव को स्पष्ट कर दिया और वज़ीर को कहा कि दक्षिण का तूरानी नेता उसमें और पेशवा में शत्रुता के बीज बोना चाहता है और यदि वह इसमें सफल हो गया तो वह अपने मुख्य उद्देश्य को प्राप्त कर सकता है अर्थात् बिना बहुत कष्ट के वज़ीर का अपसरण। नासिर जंग की गति से पूर्व शकित सफ़दर जंग को अपनी विपत्ति का बोध हो गया और उसने महादेव से प्रार्थना की कि वह मलहर राव होलकर और जयाप्पा सिन्धिया को पत्र लिखे कि वे शत्रु को उत्तर भारत की ओर अधिक प्रगति को रोक दें और इस सेवा के लिये उसने उनको पर्याप्त धन भी देना स्वीकार किया। वज़ीर ने मराठा वकील को कहा कि पेशवा को पत्र लिखे कि वह अवसर मित्रता की मराठा उक्तियों की परीक्षा का था; परन्तु यदि वे आवश्यकता पर उसकी सहायता न दे सके वह जानता था कि शत्रु पर कैसे विजयी हो। उसके पास ५० हज़ार सैनिक थे और वह

किसी संकट काल के लिये तैयार था। होल्कर और सिन्धिया जो शाहु की गिरती हुई स्वास्थ्य के कारण दक्षिण को लौट रहे थे, शक्तिशाली तूरानी सरदारों को छेड़ना न चाहते थे। और न वे नवाब वजीर से बिगाड़ना चाहते थे। अतः उन्होंने बड़ी बड़ी शर्तें प्रस्तावित कर दीं जो वे जानते थे सफदर जंग स्वीकृत न कर सकता था।

अपने मराठा मित्रों से निराश होकर वज़ीर ने सावधानी और चिन्ता से स्थिति का निरीक्षण किया और साथ-साथ उसका सामना करने की तैयारी की। उसने बीजापुर और अदोनी के उप-राज्यपाल सादुल्ला को नासिर जंग के विरुद्ध विद्रोह पर उकसा दिया, राजा नवलराय को अवध से सब सैनिक लेकर जो प्रान्त दे सकता हो बुलाया और अपने दूसरे मित्रों और अनुचरों को प्रत्येक दिशा से आमन्त्रित किया। इस बीच में (अप्रेल १७४६ ई० के क़रीब मध्य में) नासिर जंग बुर्हानपुर पहुँच गया और नर्मदा की ओर चल पड़ा। जयपुर के महाराजा ईश्वरी सिंह और कोटा के राजा ने इसकी तैयारी की कि जब वह नदी के उत्तर बढ़े उससे मिल जायें। परन्तु वज़ीर की ओर से जयाप्पा सिन्ध्या ने, जिसको मालूम होता है सफदर जंग ने फिर लिखा था, नासिर जंग की प्रगति का विरोध करने के लिये और उसको स्थानीय राजा या उदयपुर के महाराणा से झगड़ा में फसा देने के लिये, कोटा के समीप में अपना शिविर डाल दिया। परन्तु तूफान जितनी जल्दी उठा था उतनी ही जल्दी बैठ गया। वज़ीर की सैनिक तैयारियों पर दुःखी होकर बादशाह ने नासिर जंग को आज्ञा दी कि दक्षिण को वापिस जाये। उसको ४ मई को बादशाह का पत्र मिला जब वह नर्वदा पार करने वाला था। बड़ी अनिच्छा से वह औरंगाबाद वापस हुआ और वज़ीर इस प्रकार अनिवार्य विनाश से बच गया*।

इसके बाद भी सफदरजंग शान्त न हो सका और नगर में अपने निवास स्थान को वह वापस न आया। अतः पागल बादशाह और कायर पयर को और भी नीचे झुकना पड़ा। अपनी माता उधम बाई और

*पेशवा दफ्तर का संग्रह—II पत्र नं० २२ और १३; ता० अहमद शाही ३६ ब; म० उ० III ८३१; मसिरि आलमी १२७ ब; नासिर जंग का पत्र अहमदशाह को मजमुलगनी की तारीख़े हैदराबाद दक्खिन में अनूदित (उर्दू) पृ० ६०-६१।

नवाब बहादुर जावेदखां के साथ अहमदशाह १७ अप्रैल १७४६ ई० को नदी तट पर वज़ीर के डेरों में उससे मिलने गया; षड्यन्त्रों के सम्बन्ध में अपनी निर्दोषता का उसको विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया और विनम्रता और मित्रता के स्पष्ट संकेतों से उसको शान्त किया। बादशाह ने प्रतिज्ञा की कि वह वज़ीर को अपना समर्थन और विश्वास देगा और उसको दरबार म वापस लाया*।

तूरानी सामन्तों के विरुद्ध वज़ीर के प्रति षड्यन्त्र।

वे षड्यन्त्रकारी जिनका उद्देश्य वज़ीर के सर्वनाश से कम न था सफ़दरजंग के अद्भुद चित पर निकृष्ट प्रभाव उत्पन्न करने में असफल न हुये। षड्यन्त्र और आत्मोत्कर्ष की कलाओं म किसी से पीछे न रहने वाला वह अपनी राजकीय स्थिति का पहिले से ही उपयोग कर रहा था कि तूरानी सामन्तों इन्तिज़ामुद्दौला और फ़ीरोज़जंग की शक्ति और गौरव को उनकी पितृगत जागीरों का अपहरण करके और अपने अनुचरों को उनकी हानि से धनाढ्य बनाकर, खोखला करदें†। नासिरजंग की दूषित योजनाओं के प्रतिकार में उसने बीजापुर और अर्काट के उपराज्यपाल सादुल्लाखां को (अपनी उपाधि मुज़फ़्फ़रजंग से अधिक प्रसिद्ध) प्रलोभक पत्र लिखे जिनमें उसको प्रेरणा दी गई कि अपने स्वामी (नासिर जंग जो सफ़दरजंग की पदच्युति प्राप्त करने के लिये उस समय दिल्ली की ओर बढ़ रहा था) के विरुद्ध विद्रोह करदे और उसके सूबों पर अधिकार करले जो वज़ीर ने प्रतिज्ञा की खों को उसके प्रभाव द्वारा‡ प्राप्त नियुक्ति के विशेषाधिकार पत्र से दे दिये जायेंगे। उसके पद और जीवन पर तूरानी प्रयत्नों ने उसको विवश कर दिया कि वह अपने दल और अपने अनुचरों को शक्तिशाली बनाये, कि वह अपने शत्रुओं के विरुद्ध प्रतिशोध की प्रतिज्ञा करे और उनको सदा के लिये पंगु बनाने का प्रयत्न करे कि वे अहित करने के लिये हमेशा के वास्ते नपुंसक हो जायें।

यह प्रत्यक्ष रूप से जान कर कि दरबार में तूरानी सरदारों की शक्ति

---

* अब्दुलकरीम १०४ अ; ता० अहमदशाही १८ ब, ३५ ब; हदीक़तुलअक़ालिम II १६१।

† ता० अहमदशाही १६ अ।

‡ ता० अहमदशाही १६ ब।

के मुख्य साधन पंजाब और दक्षिण थे, सफ़दरजंग ने पहिले पंजाब प्रान्त के राजप्रतिनिधि मुईनुल्मुल्क को अपनी दुष्ट योजना का बलि होने के लिये निर्वाचित किया। इस प्रयोजन के लिये काबुल और गज़नी के भूतपूर्व राज्यपाल नासिर ख़ाँ को उसने अपना यन्त्र बनाया। मनुपुर की मुग़लविजय के पश्चात् यह नासिर ख़ाँ काबुल का राज्यपाल पुनः नियुक्त हुआ था। परन्तु उसके पास न तो सैनिक थे, न धन कि अहमदशाह अब्दाली के हाथों से वह अपने नर्म कार्यक्षेत्र को छीन ले। कुछ समय तक वह लाहौर में दरिद्रता और बेरोज़गारी की दशा में रहा। मुईनुल्मुल्क ने उस पर दया की, और उसको सियालकोट, गुजरात, औरंगाबाद और पसूर के चार महलों का फौजदार नियुक्त कर दिया और अफ़गानिस्तान को पुन. प्राप्त करने में अपनी पूरी सहायता की प्रतिज्ञा की। सफ़दरजंग ने उसको लालच दिया कि अपनी सेना बढ़ाये, मीर मन्नू से लड़ जाये और उसको पंजाब से निकाल दे। उसने यह प्रतिज्ञा की कि अपने प्रयास में वह जैसे ही सफल होगा उसको उस प्रान्त में नियुक्त का विशेषाधिकार पत्र भेज दिया जायगा। कृतघ्न प्रकृति का निर्बल चित्त मूर्ख नासिरख़ाँ आसानी से उसके जाल में फँस गया। वह अब अपने स्वामी के विरुद्ध हो गया, उसके एक हज़ार सैनिकों को उसने सफलता पूर्वक फुसला लिया कि अपने मालिक को छोड़ कर उसकी सेवा में आ जायें और मुईनुल्मुल्क पर आक्रमण करने के उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में वह गुप्त रूप से रहा। परन्तु षड्यन्त्र प्रगट होगया और जुलाई १७४६ ई० के पास मुईनुल्मुल्क ने सियालकोट की ओर प्रयाण किया। ४ घण्टों के मयुद्ध के बाद नासिरख़ाँ सर्वथा पराजित हुआ और अपने चारों महल विजेता के अधिकार में छोड़ कर वह रणस्थल से भाग निकला। लज्जा और अपमान की अवस्था में ख़ाँ दिल्ली पहुँचा और जन साधारण के उपहास और तिरस्कार का विषय बन गया*।

पहिला षड्यन्त्र अभी तक पूरी तरह कार्यान्वित न हुआ था कि सफ़दर जंग ने एक नये षड्यन्त्र की रचना कर डाली। इस योजना का उद्देश्य प्रत्यक्ष यह था कि मुईनुल्मुल्क पर उसके ही सूबों में दो भिन्न-भिन्न स्थानों पर एक साथ दो आकस्मिक और प्रबल प्रहार किये जायें इस समय ज़कारिया ख़ाँ का दूसरा पुत्र और स्वयं मुईनुल्मुल्क का निकट

---

* ता० अहमदशाही २५ अ; न० न० १४५ अ०

का नातेदार शाहनवाज़ खां उसका यन्त्र था। वह कुछ समय तक लाहौर का राजप्रतिनिधि रहा था और जनवरी १७४८ ई० में अब्दाली द्वारा अपनी पराजय के बाद वे रोज़गारी में दिल्ली रहता था। यद्यपि वह मध्य एशिया के कट्टर सुन्नी वंश से था वह कुछ समय पहिले शिया हो गया था। अतः सफ़दर जंग को जो स्वयं शिया था, यह व्यक्ति पसन्द आ गया और उसने उसको मुल्तान का सूबेदार नियुक्त करवा दिया जो मुईनुल्मुल्क के प्रदेश में सम्मिलित था। तब उसने उसको कुछ सैनिक और धन दिया और उसको सम्भवतया मई १७४६ में मुल्तान भेज दिया और उसको यह सलाह दी कि वह अपने सैन्य संस्थापन की वृद्धि करे और मुईनुल्मुल्क से लाहौर छीन ले क्योंकि वह व्यक्तिगत और पैतृक अधिकार से उसका था। खां मुल्तान पहुँचा और सब ओर से सैनिक इकट्ठे करने लगा। मुईनुल्मुल्क के भी कुछ सिपाहियों को उसने राजी कर लिया कि उसकी सेवा में आजायें। कुछ मासों में उसने अपने पास १५ हजार घुड़सवार और पैदल इकट्ठे कर लिये और गुप्त तैयारियां की कि लाहौर पर चढ़ जाये और राजप्रतिनिधि पर अकस्मात् आक्रमण करदे। परन्तु मुईनुल्मुल्क को षड्यन्त्र का जल्दी पता चल गया और जल्दी से कूड़ामल और अरगत खां के नेतृत्व में उसने एक सुसज्जित दल मुल्तान को भेजा कि इसके पहिले कि वह अधिक शक्ति संचय कर सके शाह नवाज़ खां को कुचल दिया जाये। शाह नवाज़ ने जो वीर और साहसी योधा था निश्शंक पंजाबी दल पर आक्रमण किया और बहुत वीरता से लड़ा, परन्तु उसे तोप का एक गोला लगा और वह रण-स्थल में मुर्दा होकर गिर पड़ा। इस प्रकार सफ़दर जंग का दूसरा प्रयास कि मुईनुल्मुल्क का नाश कर दिया जाये असफल रहा (सितम्बर-अक्तूबर १७४६ ई०) और उसने अपने दीवान कूड़ामल को मुल्तान दे दिया‡।

सफ़दर जंग की स्थिति अब शनैः शनैः असह्यनीय हो रही थी। कुछ अंश तक परिस्थितियों के कारण जिन पर उसका कोई वश न था, परन्तु मुख्यतय अपने स्वार्थ, आत्मोत्कर्ष, गुणहीनता और तूरानी सामन्तों और पठान नाइमिकों के प्रति अपनी घृणा के कारण उसने अपने चारों ओर बहुत से शत्रु पैदा कर लिये थे। अवेदना की नीच और असाधारण महत्वाकांक्षा का व्यक्ति किसी का पिट्ठू बन कर नहीं रह सकता था जब

‡ता० अहमदशाही २५ब; त० स० १५४ अ; सवकीत ७–८।

कि वह दरबार या प्रशासन में अशक्त बादशाह को आसानी से अपने पञ्जों में रख सकता हो। इन्तिज़ामुद्दौला सफ़दर जंग को क्षमा नहीं कर सकता था क्योंकि उसने उसकी पितृगत विज़ारत का उससे अपहरण किया था। दक्षिण और पंजाब के राज्यपाल नासिर जंग और मुईनुल्मुल्क जो इन्तिज़ामुद्दौला के साथ पारिवारिक और वैवाहिक बन्धनों से बंधे हुए थे, अपने ही नेता का साथ देना चाहते थे। तब भी न्याय, समान अवसर और कभी-कभी अनुग्रह कार्यों से उनको शान्त और सन्तुष्ट रखने के बजाय सफ़दर जंग उनका अधिपति बनता और प्रत्येक और सबका पतन उपस्थित करने के लिये षडयन्त्र करता। वह ईरानियों, अन्य शियों और अपने हिन्दू मित्रों को विश्वास और महत्व के स्थानों पर पहुँचा देता और अपने चारों ओर कृपापात्रों के दलों को इकट्ठा करता कि वह अपने शत्रुओं का समतुलन कर सके जिनके सामन्तवर्ग के साथ सम्बन्ध थे और जिन्होंने भूतकाल में कई पीढियों से पैतृक प्रभाव और गौरव स्थापित कर लिया था और जिनका सम्मान देश के बड़े से बड़े राजा और महाराजा भी करते थे। अपने वास्ते देश के अत्यधिक उपजाऊ क्षेत्रों को रख कर, ख़ालसा के राजस्व का अपहरण करके और बादशाह के सैनिकों एवं नौकरों को भूखा मार कर उसने बादशाह तथा राजपरिवार की भी सद्भावनायें खो दी थीं। कोई आश्चर्य नहीं कि इस दशा में नया वज़ीर समझ गया कि उसकी स्थिति काँटों की शैया के समान थी।

अहमदशाह अब्दाली का दूसरा आक्रमण—१७४६ ई०

यह सुन कर कि पंजाब गृह-युद्ध से व्याकुल है और दिल्ली अपने ही विरुद्ध विभाजित है, अहमदशाह अब्दाली ने विचार किया कि अवसर अच्छा है कि वह अपने पूर्व पराजय के कलंक को धो डाले। अतः १७४६ ई० के अन्त के पास उसने अटक पर सिन्ध को पार किया और सतत् निरन्तर प्रयानों के पीछे लाहौर के पास पहुँच गया। स्थानीय राज्यपाल मुईनुल्मुल्क जो अपनी स्थिति को पूर्णतया स्थिर करने में अब तक समर्थ न हुआ था, जितने सैनिक जल्दी से इकट्ठा कर सका उनको लेकर उत्तर को चला। उसने रावी को पार किया और वज़ीराबाद के ३ मील पूर्व में डेरा डाल दिया। दोनों दल बराबर के थे और इसलिये न तो अब्दाली न मीर मन्नू अप्रत्याशित युद्ध के लिये तैयार हुआ। दोनों दलों के गुप्तचर हल्की छेड़छाड़ करते जिनके कोई निर्णायक परिणाम न होते। अफ़ग़ानों ने अपने को चारों ओर फैला दिया और लाहौर के

समीप गाँवों को लूटने-जलाने का निर्दयी कार्य प्रारम्भ कर दिया। महीनों की अनियत परन्तु बराबर की टक्कर के बाद दोनों प्रतिद्वन्दियों ने समझौता कर लिया जिनमें से एक भी दूसरे की अपेक्षा सैनिक शक्ति में प्रबल न था। दिल्ली के अशक्त दरबार से निकट भविष्य में कोई सहायता प्राप्त होने की आशा न थी और साम्राज्य की उत्तर-पश्चिम सीमा की सुरक्षा के लिए कुछ करने के स्थान में वज़ीर अपने तूरानी प्रतिस्पर्धी के भाई के दुर्भाग्य पर खुश था। काबुल के कोटस्थ सैनिकों के वेतन के लिए १७३६ ई० में बादशाह मुहम्मदशाह द्वारा नादिरशाह को दिए हुए स्यालकोट, औरंगाबाद, गुजरात और पसरूर के चार ज़िलों के अधिक-कर के रूप में १४ हज़ार रुपया प्रतिवर्ष शाह को देने के लिए अन्त: मुईनुलमुल्क राजी हो गया। इस निश्चय के बाद अफ़ग़ानों का बादशाह अपने देश को वापस गया* और शाही सामन्त यथापूर्व कठोर संघर्ष में व्यस्त रहे।

बल्लमगढ़ के जाटों के विरुद्ध प्रथम अभियान दिसम्बर १७४९ ई०

दिसम्बर १७४९ ई० में किसी दिन सफ़दरजंग ने जिसको अब दरबार के षड्यन्त्रों से थोड़ा-सा समय मिला था कि राजकीय प्रश्नों पर विचार कर सके, बल्लमगढ़ की जाट बस्ती के विरुद्ध प्रस्थान किया जो दिल्ली के दक्षिण में २४ मील पर स्थित है। यहां पर स्थानीय जाट नेता बलराम (उर्फ़ बल्लू जिसका नाम क़स्बा से संबंधित है) खुल्लम-खुल्ला हिन्दुस्तान के अधिपति की अवज्ञा कर रहा था। पहिले फ़रीदाबाद के क़स्बा का एक अज्ञात माल गुज़ार, वह उस सहायता के कारण जो उसको अपनी जाति के नेता भरतपुर के सूरजमल से मिल रही थी, प्रसिद्धि को प्राप्त हो गया था। भूतपूर्व ज़करिया ख़ाँ के एक पुत्र मीर भइया ख़ां के सैनिकों को पराजित कर और उनको परगना फ़रीदाबाद में मीर की जागीर से बाहर निकाल कर उसने यश लाभ किया था। चूँकि इस आक्रमण का दण्ड उसको नहीं मिला था। वह प्रोत्साहित हुआ कि धीरे-धीरे पड़ोस के गाँवों को अपने अधिकार में ले आवे। अपने विक्रम को चिरस्थायी करने के लिये उसने अपने जन्म के गाँव में एक दृढ़ मिट्टी का दुर्ग निर्माण किया और (अपने ही नाम पर) इसका नाम बल्लमगढ़ रखा और क़मरुद्दीन ख़ाँ के निर्बल प्रशासन के अन्तिम दिनों में उसने अपने राज्य को फ़रीदा-

---

*अब्दुल करीम १०४ ब; म.उ. I ३६०; सियर III ८७५; मस्कीन ४।

बाद और पलवल के समस्त परगनों में स्थापित कर लिया। जिन पर "राव"* की उपाधि से वह शासन करने लगा। नये वज़ीर ने, जिसको फरीदाबाद जागीर में मिला था, सूरजमल और बलराम को कहलाया कि क़िला को समर्पित कर दें, परन्तु उन्होंने ऐसा करने से इन्कार कर दिया। अतः सफ़दर जंग ने दिल्ली से प्रयान किया कि जाटों का दमन कर उनको अधीन बनाये। वज़ीर के साथ-साथ मीर बख्शी सआदत खाँ जुल्फ़िकार-जंग ने, जिसने दिल्ली को पहिले ही २६ नवम्बर १७४८ ई० को छोड़ा था और मुहर्रम के प्रथम १० दिन, (६-१८ दिसम्बर १७४८ ई०) राजधानी से ४० मील दक्षिण-पश्चिम पतौड़ी में बिताये थे, अपने को तैयार कर लिया कि भरतपुर प्रदेश की उत्तरी सीमा पर सूरजमल से मोर्चा ले। ऐसा मालूम होता है कि वज़ीर और मीर बख्शी में गुप्त समझौता था कि वे जाटों के विरुद्ध अपने अभियानों को दो भिन्न दिशाओं से एक ही समय प्रारम्भ करें और सूरजमल को दो अग्नियों के बीच में पकड़ लें। तदनुसार सफ़दर जंग ने फरीदाबाद को हस्तगत कर लिया, इसको अपने आदमियों की देखरेख में रख दिया और सूरजमल को कहा कि सारे बादशाही प्रदेश को जो उसके अधिकार में था, खाली कर दे। परन्तु सूरजमल ऐसा व्यक्ति न था जो डर कर वज़ीर के द्वारा माँगी हुई जगहों को शान्ति से समर्पित कर दे। अतः दोनों पक्षों ने तैयारियाँ कीं कि रणस्थल में खुले युद्ध के द्वारा संघर्ष का निर्णय करें। परन्तु भाग्य ने वीर जाट का साथ दिया। सफ़दर जंग ने, जिसको फ़र्रुखाबाद के क़ायम ख़ां बंगश की मृत्यु और पराजय के समाचार मिल चुके थे, जाटों का दमन भावी पर छोड़ दिया और दिल्ली को वापस आ गया कि बादशाह को फ़र्रुखाबाद के बंगश पठानों के विरुद्ध अभियान पर जाने को राज़ी कर लें†।

---

*ता. अहमदशाही २१ ब।

†ता. अहमदशाही २८ ब।

अध्याय १३

सफ़दर जंग और फ़र्रुख़ाबाद के बंगश नवाब

१७४६-१७५०

बंगश नवाबों का प्रारम्भिक इतिहास

फ़र्रुख़ाबाद के शासक वंश का संस्थापक मुहम्मद खां बंगश पठानों की करलई कारज़ई जाति का था। शब्द बंगश का आदि अर्थ पहाड़ी प्रदेश था—अनुमानतः अफ़ग़ानिस्तान का दक्षिण-पूर्वी भाग—परन्तु आगे चल कर जब उसका उपयोग उस प्रदेश के निवासियों के अर्थ में होने लगा, यह शब्द उसके पूर्वजों की अल्प बन गया*। उसका पिता मलिक ऐन खां अपनी जन्म-भूमि को छोड़ कर औरंगज़ेब के राजत्व काल में हिन्दुस्तान आया और आधुनिक क़स्बा क़ायमगञ्ज के उत्तर में २ मील पर मऊ रशीदाबाद में बस गया जहां पर मुहम्मदखां का जन्म १६६५ ई० में या उसके आस-पास हुआ। छोटी ही आयु में मुहम्मद पड़ोस के पठान लुटेरों के गिरोह में मिल गया जो बुन्देलखण्ड के परस्पर लड़ने वाले राजाओं के यहां कुछ काल के लिये नौकर रह जाया करते थे। शीघ्र ही अपने साहस और योग्यता के कारण वह प्रसिद्धि में आ गया और स्वयं नेता बनकर उसने उस स्थान में बड़ी ख्याति प्राप्त करली। परन्तु १७१२ ई० तक भारत के विस्तृत क्षेत्र में अपने गुणों को बताने का अवसर उसको नहीं मिला। उस वर्ष के नवम्बर मास में वह ४-५ हज़ार आदमी लेकर फ़र्रुख़सियर से आ मिला और १० जनवरी १७१३ ई० को आगरा के युद्ध में बहुत उत्साह दिखाया जिसके पुरस्कार में बुन्देलखण्ड और फ़र्रुख़ाबाद के आधुनिक ज़िला में उसको भूमि मिली। यहां पर उसने क़ायमगञ्ज, मुहम्मदाबाद और फ़र्रुख़ाबाद के क़स्बे बसाये अन्तिम का नाम बादशाह के नाम पर रख कर उसको अपना निवास-स्थान बनाया। सैयद अब्दुल्ला खां का पक्ष-त्याग के और हसनपुर के युद्ध में उसकी सेवाओं के पुरस्कार में मुहम्मदशाह ने उसको इलाहाबाद का राज्यपाल २५ दिसंबर १७२० ई०

---

* पर्लीडला ४५ अ, ४६ ब।

को* नियुक्त कर दिया जिसमें काल्पी की सरकार को छोड़ कर सारा बुन्देलखण्ड था। दो बार वह छत्रसाल के राज्य के बीच में घुस गया और दिसम्बर १७२८ ई० में जयतपुर के दृढ़दुर्ग को हस्तगत कर लिया। परन्तु बाजीराव बुन्देला सरदार की सहायता पर आ गया, खान को जयतपुर पर घेर लिया और १७२६ ई० की ग्रीष्म ऋतु में उसको बुन्देलखण्ड से हटने पर विवश कर दिया§। अतः इलाहाबाद उससे छीन लिया गया और सितम्बर १७३० ई० में वह मालवा में नियुक्त कर दिया गया। यहां भी मराठों से आशा छोड़ कर लड़ने में उसने अपना समय बिताया, परन्तु सफलता कुछ भी न मिली। अतः १७३२ ई० के अन्त पर उसको मालवा से हटा लिया गया जो जयपुर के सवाई जयसिंह को दिया गया*। १७३५ ई० के अन्त के समीप एक बार फिर इलाहाबाद उसको दिया गया परन्तु पहिला राज्यपाल सर बुलन्दखां मई १७३६ ई० में यहां पर पुनः बिठाया गया। उस वर्ष से मालूम होता है वह अपनी रियासत में एकाकी हो रहा और जनसाधारण की दृष्टि में कभी-कभी मराठों या दूसरे विद्रोहियों से लड़ता हुआ आया। १० दिसंबर १७४३ ई० को उसका देहान्त हो गया† और उसकी रियासत जिसमें फ़र्रुखाबाद का पूरा जिला, कानपुर का आधा पश्चिमी, मैनपुरी का क़रीब-क़रीब पूरा, एटा का आधा से ज्यादा, गंगापार बदायूँ के दो परगने और अलीगढ़ और इटावा के कुछ हिस्से में उसके ज्येष्ठ पुत्र क़ायमखां को मिली‡।

कायमखां की मृत्यु और पराजय २२ नवम्बर १७४६ ई०

मुहम्मदखां बंगश और सआदत खां बुर्हानुलमुल्क के बीच स्पष्ट शत्रुता में मिलती हुई प्रतिस्पर्धा की भावना रही थी। कहा जाता है कि १७२८ ई० में उसने छत्रसाल बुन्देला को बंगश सरदार के विरुद्ध उसके प्रतिरोध में प्रोत्साहित किया था और आगामी वर्ष उसने असफल षड्यन्त्र किया कि स्वयं क़ायमखां को पकड़ ले जब वह अपने घिरे हुये पिता को

* कमवर II ३३१ ब।

§ पेशवा दफ़्तर का संग्रह-जिल्द XIII।

* पूर्ववत् ल० म० २४६-२५५।

† वलीउल्ला १२०।

‡ ज० ए० सु० बं० (१८७८) पृ० २४६।

छुड़ाने के लिये अवध सेना के एक भाग का दान कुछ समय के लिये मांगने फैज़ाबाद गया था‡। सफ़दर जंग की फ़र्रुखाबाद के नवाब के प्रति उसकी नीति अपने ससुर से पैतृक सम्पत्ति में मिली थी। अपने समयोग्य सरदार का अस्तित्व वह सहन नहीं कर सकता था जिसकी रियासत अवध की पश्चिमी सीमा पर हो और जो नवाब वज़ीर के शत्रु अली मुहम्मद खां रुहेला से घनिष्ठ मैत्री-भाव रखता हो। अपने ही वंश और धर्म के होने के कारण मुहम्मदखां बंगश ने रुहेला को कई बादशाही दरबार के क्रोध से बचाया था। १७४५ ई० में क़ायमखां ने रुहेला के परिवार और खज़ाना को शरण दिया था और सफ़दरजंग के प्रतिस्पर्धी क़मरुद्दीन खां से मिल कर उसने रुहेला को अवश्यम्भावी नाश से बचा लिया था। बंगश और रुहेला सरदारों में मैत्री के डर से, जो सर्वदा प्राकृतिक थी, सफ़दरजंग उस अवसर की प्रतीक्षा में था जब वह दोनों का नाश एक साथ कर सके।

जुलाई १७४६ ई० के बाद जब तूरानी षड्यन्त्रों से उसको कुछ अल्पकालीन विश्राम प्राप्त हुआ, उसका अवसर आ गया। उसने बादशाह अहमदशाह को राज़ी कर लिया कि क़ायम खाँ को रुहेलखण्ड का राज्यपाल नियुक्त कर दे और उसको आदेश दे कि कुछ दिन पहिले ही मृत्यु को प्राप्त अली मुहम्मद खां रुहेला के पुत्र सादुल्ला खाँ से वह प्रान्त छीन ले। बादशाह का फ़रमान और वज़ीर का लिखा हुआ चाटुकारक पत्र शेर जंग के हाथों क़ायम खाँ को भेजा गया*। इस भारी भोज्य के प्रलोभन को सहन करने में असमर्थ खान उस जाल में फंस गया जो वज़ीर ने इतनी चतुरता से लगाया था†। जब सादुल्ला खां ने रुहेलखण्ड को समर्पित कर देने की उसकी माँग की ओर ध्यान न दिया क़ायम खाँ ने ५० हज़ार सैनिक और तोपखाना लेकर गंगा पार किया जिसको सबेंडी, रुड़ और शिवराजपुर के मित्र राजाओं की टोलियाँ परिपूरित करती थीं। जहाँ पर रुहेला ने २५ हज़ार आदमी इकट्ठे कर रखे थे उस

‡ ल० म० II २३७ और २४०; ज० ए० सु० बं० (१८७८) पृ० १० ।

*अब्दुल करीम १०४ ब ; सियर III, ८७४ ।

†इमाद पृ० ४, हरचरण ४०२ अ; मासिरुल IV-१०७ ब। ऐसे अन्य लखनऊ के इतिहासकार या तो सफ़दर जंग के प्रोत्साहन को नहीं मानते हैं या उस पर बिना दृष्टि डाले आगे बढ़ जाते हैं।

बदायूँ के ५ मील दक्षिण-पूर्व में दौरी रसूलपुर के गाँव से कुछ मील पर उसने छावनी डाली। लड़ाई २२ नवम्बर १७४८ ई०‡ को प्रातः प्रारम्भ हुई। प्रारम्भिक भिड़न्त के बाद क़ायम खाँ ने शत्रु पर आक्रमण किया और एक विस्तृत कन्दरा में फँसा लिया गया जिसके दोनों ओर लम्बे-लम्बे बाजरों की फसल खड़ी थी जिसमें रुहेला ने अपने ८ हजार अनुभवी तोड़ेदार बन्दूक वालों को छुपा दिया था। वहाँ उस पर यकायक रुहेलों ने आक्रमण किया जो अपनी तोड़ेदार बन्दूकों को कन्दरा के किनारा से चलाते थे। अपने बहुत से सरदारों के साथ खाँन काम आया और उसकी सेना अत्यन्त भय और अव्यवस्था में भाग गई†।

सफ़दर जंग बंगश रियासत ज़ब्त करता है—जनवरी १७५० ई०

क़ायम खाँ के पराजय और मृत्यु का समाचार, जो अपनी घटना के थोड़े ही दिनों में दिल्ली पहुंच गया था, वज़ीर के लिये बहुत हर्षदायक था। उसने बादशाह को प्रेरित किया कि प्रसिद्ध मुग़ल रीति के अनुसार कि बादशाह अपने सब सामन्तों की भूमि और व्यक्तिगत सम्पत्ति का वारिस है वह मृतक की रियासत और सम्पत्ति को ज़ब्त कर ले और यह सुझाव दिया कि फर्रुखाबाद के समीप में बादशाह की उपस्थिति से क़ायम की माता भयभीत होकर तुरन्त ही उसकी सम्पत्ति को समर्पित कर देगी। बादशाह ने योजना को अपनी मान्यता दे दी और सफ़दर जंग को आज्ञा दी कि ७ दिसम्बर १७४९ ई० को फर्रुखाबाद के लिये प्रस्थान कर दे। वह स्वयं ६ को दिल्ली से चला कि वज़ीर और उसके दल से मिल जाये*।

---

‡इरविन की तारीख ज. ए. सु. बं. (१८७५ ई०) पृ० २८०, एक वर्ष पहले है। प्रथम श्रेणी के इतिहासकार जैसे दिल्ली समाचार, ५२ और तबसीर २५४ ब० दोनों १२ ज़िल्हज्ज-११६२ हि० देते हैं। परन्तु सियर और त० म० माअदन ग़लती से ११६१ हि० देते हैं।

†गुलिस्ताँ २६-३०; सियर III ८७४; तबसीर २५४ ब०; हादिक़ा १४१; इमाद २४-४५; ता० अहमदशाही २२ ब, २३ अ०।

*दिल्ली समाचार ५३; ता० अहमदशाही २४ अ; अब्दुल करीम कहता है कि क़ायम खाँ की माता बीबी साहिबा के विरुद्ध सफ़दर जंग के प्रयाण का एक कारण यह था कि उसने मराठों को रुहेलों के विरुद्ध आमन्त्रित किया था। अतः सफ़दर जंग को भय था कि यदि मराठे सफल हो गये तो वे अवध को भी लूट देंगे।

जब वे अलीगढ़ पहुंचे सफ़दर जंग ने बादशाह को वहाँ ठहरा दिया और स्वयं ४० हज़ार मुग़लों को लेकर फर्रुख़ाबाद के उत्तर-पश्चिम ३५ मील पर थाना दरयावगंज को चल पड़ा। लगभग उसके साथ ही साथ अपने स्वामी के आह्वान—पालनार्थ राजा नवलराय एक बड़ी सेना लिये हुये २६ दिसम्बर को● फर्रुख़ाबाद के दक्षिण-पूर्व १५ मील पर ख़ुदागंज से ३ मील के अन्दर पहुँच गया। स्पष्टतया वज़ीर की चाल यह थी कि यदि पठानों में प्रतिरोध के लक्षण दिखाई दें उनको उत्तर और दक्षिण से दोनों सेनाओं के बीच में विच्छेदित कर दिया जाये। परन्तु वह इतना चतुर था कि पहिले उसने कला-कौशल से काम लिया। क़ायम ख़ाँ की माता की प्रार्थना पर कि उसके पुत्र इमाम खां को उसकी पैतृक सम्पत्ति दे दी जाय, सफ़दर जंग ने उत्तर में लिखा कि इसके लिये उसने पहिले से बादशाह की अनुमति प्राप्त करली है, परन्तु ऐसे अवसरों पर जैसा कि प्रायः होता है वह स्वयं और इमाम खां व्यक्तिगत उसके डेरे में उपस्थित हों और बादशाह को आचारिक उपहार (पेशकश) भेंट करें। उसने धूर्तता से यह भी लिखा कि क़ायम खां उसके भाई के समान था और वह उसकी मृत्यु का बदला लेने का पूरा प्रयत्न करेगा‡। इन चाटुता के शब्दों से धोखा खाकर बीबी साहिबा (क़ायम की माता) ने उन सैनिकों को वापस बुला लिया जिनको नवलराय का मार्ग रोकने के लिये उसने ख़ुदागंज में स्थापित किये थे, और ३० हज़ार पठानों के रक्षा-दल के साथ वज़ीर के डेरा पर दरयावगंज में ३ जनवरी १७५० ई० को उपस्थित हुई*। कुछ दिन पीछे नवलराय भी आ गया। कुछ दिनों की सन्धि-चर्चा के बाद यह निश्चित हुआ कि ६० लाख रुपये देने पर† बंगश रियासत इमाम ख़ाँ को

●ज. ए. सु. बं. (१८७६) पृ० ५०।

‡इमाद ४५।

*दिल्ली समाचार ४४।

†अब्दुल करीम २५१, ५० लाख बताता है जब कि दूसरे लेखक ६० लाख। इर्विन ज.ए.सु.-बं (१८७६) पृ० ५१ कहता है कि बीबी हाजिमान (मुहम्मद खां की एक दूसरी विधवा) के ५० लाख पर सहमत हो जाने पर सफ़दरजंग ने सादा काग़ज़ मांगा जिस पर उसकी मुहर लगी हो। ऐसा हो जाने पर वज़ीर ने ५० के स्थान पर ६० लाख लिख दिये। यह कथन किसी अ-पठान समकालीन ग्रन्थ (non-pathan contemporary work) में मुझे नहीं मिला है।

प्रदान-पत्र द्वारा दे दी जायेगी। तब बीबी साहिबा को फर्रुखाबाद वापस भेज दिया गया कि प्रतिशत धन देने का प्रबन्ध करे और अब १८ जनवरी को बादशाह अलीगढ़ से चल दिया और २६ को दिल्ली वापस पहुंच गया‡। परन्तु फर्रुखाबाद में मिले नक़द और सामान का अनुमान ४५ लाख रु० लगाया गया। अत बीबी साहिबा को फिर बुलाया गया और वज़ीर के शिविर में शरीरबंधक के रूप में रोक लिया गया जब तक कि शेष धन का चुकारा न हो जावे। मुहम्मद खाँ के कुछ पुत्रों और दासों (चेलों) की माँ अवेक्षा में रख लिया गया।

पठान विद्रोही की चिन्ता से मुक्त होकर सफदर जंग ने अब फर्रुखाबाद को प्रयाण किया और उसके दक्षिण पश्चिम ५ मील पर याकूतगंज में छावनी डाली। नवल राय अपने मालिक से अलग होकर शमसाबाद और फ़र्रुखाबाद होता हुआ दूसरे दिन याकूतगंज पहुँच गया। कई दिन व्यतीत हो गये परन्तु इमाम खाँ को अपनी पैतृक रियासत का प्रदान न मिला। अपनी प्रतिज्ञा का अतिनिन्द्य भंग करते हुये वज़ीर ने बंगश रियासत को ज़ब्त कर लिया। फर्रुखाबाद के क़स्बा को मिला कर केवल १२ गाँव उसने छोड़ दिये जो भूतपूर्व बादशाह फर्रुखसियर द्वारा मुहम्मद खाँ बंगश को सदा के लिये प्रदान किये गये थे●। अनुबन्धित प्रदेश में उसने अपने ही आदमियों को माल और पोलिस के अफसर नियुक्त किये और याकूतगंज में पर्याप्त समय तक ठहरा रहा कि अपने नये कार्य-भार को सभालने में उनकी सहायता दे। तब अपने नवप्राप्त प्रदेश को उसने नवल राय के अधिकार में छोड़ दिया जो अवध और इलाहाबाद में भी उसका नायब था और बंगश परिवार के ५ चेलों को लेकर वह दिल्ली को वापस हुआ एवं ८ जून १७५० ई० को पहुंचा‡‡।

बल्लभगढ़ के जाटों के विरुद्ध दूसरा अभियान—जुलाई १७५० ई०

फर्रुखाबाद से अपनी वापसी के दो महीनों के अन्दर ही सफ़दर जंग

---

‡दिल्ली समाचार ५४ और ५५; ता. अहमदशाही २४ ब०।

●सियर III ८७५; पेशवा दफ्तर का संग्रह, जिल्द II पत्र नं० १४अ, ता. अहमदशाही २४ ब; म- उ. III ७७२, इर्विन इस बात पर मौन है।

‡‡दिल्ली समाचार ५४; अब्दुल करीम २५१; तबसीर २५४ ब., ता. अहमदशाही २४ ब०। ५ चेले ये थे :—शमशेर खाँ, जाफर खाँ, मुकीम खाँ, इस्माइल खाँ और सरदार खाँ।

विवश हुआ कि बल्लभगढ़ के जाटों के विरुद्ध दूसरा अभियान करे जिनका निग्रह जनवरी १७४६ ई० में उसने अधूरा ही छोड़ दिया था। २८ जुलाई १७५० ई० को बलराम के कुछ आदमियों ने दिल्ली के दक्षिण कुछ मील शम्सपुर में वज़ीर के थाना पर आक्रमण किया, उसको लूट लिया और नष्ट कर दिया। इस उपद्रव का समाचार पाकर सफदर जंग ने अपराधियों को दण्ड देने के लिये एक सेना भेजी। परन्तु सम्बन्धित आदमियों को छोड़ देने के बजाय बलराम युद्ध के लिये तैयार हो गया। अतः ३० जुलाई को वर्षा होते हुये वज़ीर ने दिल्ली से प्रस्थान किया और शम्सपुर पहुंच कर थाना के पास रात बिताई। यहां पर उसको नवल राय का पत्र मिला जिसमें मऊ और फर्रुखाबाद में भयानक पठान विद्रोह का वृत्तान्त था। विपत्ति की गम्भीरता को समझ कर सफदर जंग ने निर्णय किया कि जाटों से सन्धि कर ले और नवलराय को लिखा कि शीघ्रता में कोई कार्य न करें परन्तु सैन्य सहायता लेकर उसके आगमन की प्रतीक्षा करें। दूसरे दिन प्रभात ही राजधानी से ७ मील दक्षिण खिज़िराबाद को वह गया और अपने डेरा में मराठी वकील की मध्यस्थता द्वारा उसने बलराम से सन्धि-वार्ता प्रारम्भ कर दी। उसके दोनों हाथों को एक रूमाल से बाँध कर वकील बलराम को लाया और वज़ीर ने उसको क्षमा कर दिया*। इस प्रकार 'उसको विधि विरुद्ध प्राप्ति की मोक्ष स्वीकृति दे दी।' उसी दिन वज़ीर ने अपनी सेना का एक भाग अपने भाई मसीउद्दीन हैदर के नेतृत्व में और मुहम्मद अली खां और कुछ अन्य सेनापतियों की टोलियों को नवलराय की सहायता के लिये भेज दिया। वह स्वयं फ़र्रुखाबाद जाने के लिये बादशाह की अनुमति प्राप्त करने दिल्ली वापस आया। इस बीच में वज़ीर के आमन्त्रण के उत्तर में सूरजमल, जो बल्लभगढ़ के अपने जाति भाइयों की सहायता कर रहा था, दिल्ली के पास आया। सफदर जंग खिज़िराबाद के समीपस्थ किशन दास के तालाब के पास उससे मिला और दोनों में मित्रता की सन्धि हो गई। तब सूरजमल अपने प्रदेश को वापस गया और वज़ीर दिल्ली लौटे‡।

---

*दिल्ली समाचार ५७; ता. अहमदशाही २३ अ और ब।

†सियर III ८७६।

‡पेशवा दफ्तर का संग्रह–जिल्द II, पत्र नं० १५।

मऊ और फर्रुखाबाद में पठान विद्रोह जुलाई १७५० ई०

यह समझने के लिये कि पठानों का विद्रोह कैसे उत्पन्न हुआ, आवश्यक है कि हमको उन द्रुतगामी घटनाओं का ज्ञान हो जो बंगश प्रदेश में दिल्ली को वज़ीर की वापसी के बाद घट रही थीं। सफदरजंग के याकूतगंज छोड़ने के कुछ ही दिन बाद नवलराय ने मुहम्मदखां बंगश के पांच पुत्रों—इमामखां, हुसैनखां, फखरुद्दीनखां, इस्माईलखां और करीमदादखां के हथकड़ियां डाल दीं और उनको बन्दी बनाकर इलाहाबाद के किले में भेज दिया*। तब उसने कन्नौज के ऐतिहासिक नगर को अपना मुख्य स्थान बनाया क्योंकि यह अवध, इलाहाबाद और बंगश रियासत के बीच में था जो सब उसके उत्तरदायित्व में थी। यह विश्वास कर कि पठान शान्ति से उसके शासन के अधीन हो गये थे उसने वर्षा ऋतु के आरम्भ में (जुलाई) अपने अधिकांश सैनिकों को छुट्टी दे दी यहां तक कि ४० हज़ार सैनिकों में से जो उसकी सेना में थे उसके पास केवल ७-८ हजार रह गये†। बीबी साहिबा अभी अवेक्षा में थी। बंगश परिवार के एक स्वामी भक्त नौकर साहिब राय कायस्थ ने, जिसने नवलराय की सेवा में लिये जाने का प्रबन्ध कर लिया था, एक रात को चतुरता से अपनी भूतपूर्व स्वामिनी को मुक्त करा लिया। जब राजा शराब के वश में था। तुरन्त उसको एक गाड़ी में बिठा कर, जिसमें द्रुतगामी, शीघ्रगामी बैल जुते हुवे थे, उसने उसको मऊ भेज दिया। दूसरे ही प्रभात नवलराय अपनी मूर्खता पर दुखित हुआ और उसने कुछ तेज घुड़सवार भगोड़िका का पीछा करने भेजे। परन्तु अति विलम्ब हो गयी थी। प्रभात ही वह मऊ पहुंच गई‡।

मऊ के क़स्बा में जहां कि आजकल की भांति ही उस समय अति अधिकांश निवासी पठान थे, अति दुखित बीबी साहिबा ने अपना सिर खोल दिया, अपने वंश के मुख्य व्यक्तियों को अपने यहाँ और अपमान की कथा सुनाई और उनकी कायरता एवं अकर्मण्यता पर उनको

---

* ज० ए० सु० बं० (१८७९) पृ० ५५; वली उल्ला ६५ ब; अब्दुलकरीम २५१; तबसीर २५४ ब०।

† पेशवा दफ्तर का संग्रह, जिल्द II, पत्र नं० १४ अ०।

‡ अब्दुलकरीम २५२; गुलिस्तां ३६ अ; सियर III ८७५-७६ भी सहमत है। गुलिस्तां का विचार ग़लत है कि नवलराय लखनऊ में था।

के लिये आ जाये। तब वह फ़र्रुखाबाद की ओर चला, काली नदी को पार किया और फ़र्रुखाबाद के १६ मील दक्षिण-पूर्व में ख़ुदागंज के समीप नदी तट पर छावनी डाल दी। वहां पर उसको वज़ीर से स्पष्ट आज्ञा मिली कि सैन्य सहायता लेकर उसके आगमन तक प्रतीक्षा करें। तदनुसार जिस स्थान पर वह था वहाँ रक्षा परिखा बना ली, अपने शिविर के चारों ओर खाई खोद दी जिस पर अपनी तोपों को, जो परस्पर लोहे की जंजीरों से मज़बूत बंधी थीं, लगा दी*। सब मिला कर उसकी सेना ८ हज़ार की थी§।

इस बीच में अहमद खाँ बंगश अपनी २४ हज़ार सेना लेकर पहुँच गया। और ख़ुदागंज के ४ मील उत्तर-पश्चिम में राजेपुर गाँव के दक्षिण उस स्थान पर छावनी डाली जहाँ से नवलराय का शिविर दो मील से कुछ ही दूर था। क़रीब एक सप्ताह तक विरोधी सेनायें एक दूसरे के सामने पड़ी रहीं†। राजा ने कठोर आज्ञा अपनी सेना को दी थी कि युद्ध के लिये तैयारी न करें परन्तु अपने स्थान पर सतर्क डटे रहें। उसका सन्देह जाग्रत न हो और वह असावधान हो जाये, इस इच्छा से अहमद खाँ ने शान्ति-शान्ति की वार्ता प्रारम्भ की और केवल अपने भाइयों की मुक्ति की माँग रक्खी‡। मैनपुरी के राजा जसवन्त सिंह ने अब बंगश सरदार को पता चला कि वज़ीर द्वारा भेजी हुई सहायक सेना मैनपुरी के उत्तर पश्चिम २० मील सकीट तक पहुँच गई है, और इसलिए दूसरे ही दिन प्रभात को राजा पर आक्रमण करने का उसने निश्चय किया। शत्रु की स्थिति जानने के लिये उसने गुलमियाँ नामक एक चतुर गुप्तचर को भिखारी के वेश में नवलराय की रक्षापरिखा को भेजा। इस आदमी ने बताया कि राजा की परिखा में केवल एक वेध्य स्थान था जो पृष्ठ भाग में काली नदी के तट पर स्थित था और जहाँ पर तोपों की रक्षा प्राप्त न थी। इस पर प्रभात पूर्व ही यकायक हमला करने का पठान ने निश्चय किया।

१२ अगस्त १७५० ई० की रात्रि में अहमद खाँ बंगश अपनी

*सियर III, ८७६।

§इमाद पृ० ४७; पठान पुस्तकें इससे बड़ी संख्या बताती हैं।

† तब्सीर २५६ ब।

‡ सियर III, ८७६; बर्मा उल्ला ६६ ब।

पालकी पर सवार हो गया (क्योंकि वह लंगड़ा था), अपनी सेना लेकर शिविर से चल पड़ा और शत्रु की परिस्था का पश्चिम की ओर से एक लम्बा चक्कर लगाकर नवलराय के अग्रभाग से बचता हुआ प्रभात के डेढ़ घण्टा पहिले काली नदी पर उसके पृष्ठ भाग को पहुँच गया। पठानों ने तुरन्त घोड़ों की लगामें ढीली छोड़ दीं और बाराह सैयदों द्वारा रक्षित स्थान पर हमला किया। सैयद लोग जो सतर्क थे वीरता से लड़े और आक्रमणकारियों को पीछे ढकेल दिया। परन्तु आत्महत्या कर लेने की धमकी देकर अहमद खाँ अपने आदमियों को एकत्रित करने में और उनको दूसरे आक्रमण के लिए जुटाने में सफल हो गया। पठान अपने घोड़ों से कूद पड़े, अपने लम्बे अँगरखों के पर्दन्तों को कमरों में लपेट लिया और उसना से सैयदों पर टूट पड़े। इस बार उन्होंने अपने शत्रु को परास्त कर दिया। उनमें से कुछ मारे गये और बाकी अव्यवस्था में भाग निकले जिससे पठानों के लिये मार्ग खुल गया। अहमदखाँ और उसके सैनिक इस प्रकार रक्षा-परिखा में प्रविष्ट हो गये। चूँकि उस दिन हिन्दुओं के श्रावण मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी थी, रात्रि का अन्तिम चरण घोर अन्धकारमय था, और वर्षा से अस्तव्यस्तता और भी बढ़ गई थी। कुछ न दिखाई पड़ता था और अहमद खाँ के सौभाग्य से राजा की तोपें बिना कोई हानि पहुँचाये अव्यवस्था से चलती रहीं। प्राणघातक १३ अगस्त १७५० ई० को* क्षितिज पर सूर्योदय के समय पठान स्वयं राजा के डेरा के समीप पहुँच गये। उसकी सेना के अधिकांश भाग के तोपों की भित्तियों पर लगे होने से उसके डेरे पर नियुक्त सैनिकों की सख्या बहुत ही कम थी। राजा को पठानों के निकट आगमन की सूचना प्राप्त हुई। परन्तु वह अपने स्वभावानुसार बिना प्रातःकालीन प्रार्थना के बाहर न आ सकता था। दूसरा सदेशवाहक प्रगट हुआ और सूचना दी

---

* सर देसाई पेशवा दफ्तर का संग्रह, जिल्द II, २ पृ० २४, १५ जुलाई १७४६ ई० देता है। इर्विन ज० ए० सु० बं (१८७६ ई०) पृ० ६२ २अगस्त १७५० ई० (पुरानी शैली) देता है जो न० शै० के अनुसार १२ अगस्त होना चाहिये। वास्तविक तारीख शुक्रवार, ११ रमजान ११६३ हि० थी (देगी-लस्मार २५५ व) दूसरे इतिहास शुक्रवार १० रमजान देते हैं। शुक्रवार ११ (१६ नहीं) रमजान २ अगस्त (पु० शै०) को था और १३ को (न० शै०)।

कि सब कुछ नष्ट होने वाला है। अब नवलराय ने अस्त्र धारण किये, अपने हाथी पर सवार हो गया† और ३-४ सौ सिपाही और ६-७ अफसर लेकर अहमद खाँ के विरुद्ध प्रस्थान करने को प्रस्तुत हुआ। बीच में रुस्तम खाँ आफ्रीदी और मुहम्मद खाँ आफ्रीदी ५ हज़ार सैनिक लेकर कुछ दूर पर प्रगट हुये और राजा के अनुचर वर्ग के पास से बिना यह जाने कि वह कौन है निकल गये। यह देख कर नवलराय के रहा-दन में एक पठान ने स्वामिद्रोही बनकर अपने अल्गोजा के मीठे-मीठे पुश्तो स्वरों में उनको वहाँ पर आमन्त्रित किया जहाँ राजा खड़ा था। संकेत समझ लिया गया। रुस्तम खाँ और उसके आदमी पीछे मुड़ पड़े और नवल के अनुचर वर्ग पर हमला किया। आफ्रीदी बन्दूकचियों ने बहुत से शत्रुओं को मार गिराया और बाकी में से बहुतों ने मुँह मोड़ लिया और भाग निकले। परन्तु गालियाँ देता हुआ राजा बराबर पठानों पर तीर चलाता गया। उनमें से एक बिना बहुत घाव किये मुहम्मद खाँ आफ्रीदी की छाती में लगा। दूसरा मुहम्मद खाँ के पास एक पठान सिपाही की गरदन में घुस गया और वह वहीं मर गया। इस तरह कुछ पठान राजा के घातक तीरों के शिकार बने। इस समय बाराह का स्वामिभक्त सैयद मीर मुहम्मद सालेह, जो नवलराय की नौकरी में उसको सहायता के लिये आगे बढ़ा; परन्तु मुहम्मद खाँ आफ्रीदी के पिता के एक गुलाम ने तुरन्त अपनी गोली से उसको मार गिराया। नवलराय अब पूर्णतया अपने आक्रान्ताओं द्वारा घेर लिया गया। युद्ध के घमसान में उसे एक गोली लगी और वह अपने हाथी के हौदा में बेजान होकर गिर गया। नेताहीन उसकी सेना मयाकुल होकर अव्यवस्था में भाग निकली। पठानों ने भागकों का पीछा किया और बहुतों को तलवार के घाट उतार दिया*। शेष काली नदी पार करने में सफल हुए और इसके पहिले ही इनमें अनेक प्राण हरण कर लिये थे। राजा का महावत अपने हाथी को राजा के शव सहित नदी को पार करा ले गया और क़न्नौज को भाग गया। नवलराय का सम्पूर्ण शिविर,

† ज० ए० सु० बं० (१८७६ई०) पृ० ६२-६३; आशार ह० अ० और ब०।

* इमाद ४५-४८; तबसीर २५५ व; मा० अहमदशाही २६ अ० और ४० संक्षिप्त और कई स्थलों पर ग़लत वृत्तांत देता है।

बहुमूल्य खज़ाना, सामान और तोपखाना सहित विजेताओं के हाथ लगा† । राजा की ओर से कुल मिलाकर ५०० आदमी मारे गये‡ और उनके अतिरिक्त प्रसिद्ध व्यक्ति जो युद्ध में काम आये मीर मुहम्मद सालेह और हाजी अहमद का दामाद, बंगाल के अलीवर्दी खाँ का बड़ा भाई अताउल्ला खाँ थे ।

इस अनपेक्षित विजय के दूसरे ही दिन अहमदखां की सेना बढ़कर ६० हजार हो गई जिसके एक भाग को अपने पिता के एक गुलाम भूरेखां के अधीन उसने नवलराय के आदमियों के हाथों से क़न्नौज छीनने के लिये भेजा । तब वह फ़र्रुखाबाद वापस आया और उसकी सारी पैतृक रियासत अविलम्ब उसके हाथों आ गई । युद्ध के दिन इलाहाबाद का बक़ाउल्लाखां राजा की सहायतार्थ रणस्थल से ८ मील अन्दर पहुँच गया था । जब खुदागंज से झुंड के झुंड भागने वालों से उसको दुखद समाचार मिला तदनुसार वह शीघ्रता से क़न्नौज वापस आया और राजा के परिवार और आश्रितों को सबल सुरक्षा दल के साथ लखनऊ भेज दिया और वह स्वयं कोड़ा जहानाबाद वापस गया । अतः भूरेखां को क़न्नौज सैन्य विहीन मिला और उसको उसने बिना किसी प्रतिरोध के हस्तगत कर लिया । उसको बहुत धन, फरनीचर और रण-सामग्री प्राप्त हुई* ।

---

† सियर III ८७६; तज़्मीर पूर्ववत् ।

‡ पेशवा दफ़्तर का संग्रह-जिल्द II, पत्र नं० १४ अ० ।

* ज० ए० सु० बं० (१८७६) पृ० ६५-६६

अध्याय १४

प्रथम पठान युद्ध और तत्पश्चात् (१७५०-५१ ई०)

नवाब का बंगश की प्रयाण

खुदागंज की विपत् के ठीक १० दिन पहिले बादशाह को इस पर राज़ी कर लिया गया कि अतिपीड़ित नवलराय की सहायतार्थ सफ़दर जंग को प्रस्थान करने की अनुमति दे दी जाये। १ अगस्त १७५० ई० को विदाई का दरबार हुआ जब अहमदशाह ने वज़ीर को एक कटार, एक तलवार, एक ढाल और एक फूलमाला अर्पित की और जलालउद्दीन हैदर को नायब वज़ीर नियुक्त किया कि दिल्ली में अपने पिता की अनुपस्थिति में वह उसकी जगह कार्य करे*। इस्हाक़खां नज्मुद्दौला, भूतपूर्व क़मरुद्दीनखां के एक पुत्र मीर बक़ा, शेरजंग और कुछ अन्य सामन्तों को आज्ञा हुई कि वज़ीर के साथ प्रयाण करें। सफ़दर जंग १० हज़ार सैनिक और तोपखाना लेकर दिल्ली से चला और केवल ४० मील† पार किये होंगे जब नवलराय की पराजय और मृत्यु का आकुलकारी समाचार उसको मिला। प्रतिशोध की भावनाओं से मिश्रित क्रोध के आवेश में उसने इलाहाबाद के क़िला के आज्ञापक और दिल्ली में अपने पुत्र को आज्ञा भेजी कि मुहम्मदखां बंगश के पांचों गुलामों और पांचों पुत्रों को मृत्यु के अर्पित कर दें‡। परन्तु शान्त होने पर उसको प्रतीत हुआ कि विजेता शत्रु के क़ुद्धों का अपने १० हज़ार अनुयायी सैनिकों द्वारा मान-मर्दन करना सरल न था। अतः उसने निश्चय किया कि पठानों से शक्ति परीक्षा करने से पहिले वह बड़ी सेना एकत्रित कर ले और मराठा सरदारों सिन्धिया और होल्कर को, राजा सूरजमल जाट को और कुछ अन्य मित्रों को उसने पत्र लिखे कि उसकी सहायतार्थ वे तुरन्त आ जायें। अपने जाटों को लेकर सूरजमल जाट अलीगढ़ पर उससे मिल गया** जिसके बाद

---

* दिल्ली समाचार १७।

† पेशवा दफ़्तर का संग्रह, जिल्द II पत्र नं० १४ अ; सियर III ८७६।

‡ अ० ए० सु० मं० (१८७६) पृ० ६८-६६; इमाद ४५; हादिक़ ७१।

** सुजान चरित, ६१-६४।

एटा ज़िला में कासगंज के दक्षिण पश्चिम ७ मील पर मारहरा क़स्बा को वज़ीर ने कूच किया। वहाँ पर वह एक मास से अधिक शिविरस्थ रहा कि उसके मित्रगण अपनी सेनायें लेकर उससे मिल जायें। वहाँ पर इस्माईल बेगखां, नसीरुद्दीन हैदर, राजा देवी दत्त और मुहम्मदअली खां जो नवलराय को सैन्य-सहायता देने आगे भेजे गये थे, मैनपुरी से आगे खुदागंज की विपत् के पहिले बढ़ने नहीं पाये थे, सफ़दर जंग से आ मिले। जयपुर के महाराजा ने अपने बख्शी हेमराज के अधीन ५ हज़ार सिपाही भेजे* और भदावर का राजा हिम्मतसिंह, घसेरी का राव बहादुर सिंह†, कामगरखां बलूच और कुछ अन्य सरदार मराठों को छोड़ कर जो दक्षिण में थे अपने-अपने दल लेकर पहुँच गये। वज़ीर ने अब अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ की, काली नदी को पैदल पार किया और कासगंज के पूर्व ५ मील पर स्थित बधरी‡ के गांव के दक्षिण पूर्व कुछ मील पर छावनी डाली।

विरोधी सेनायें रणस्थल में :

सुजानचरित का लेखक सूदन, सफदरजंग की सेना की कुल शक्ति सूरजमल के १५ हज़ार सैनिकों को मिला कर ६५ हज़ार सवार, अगण्य पैदल, ३०० हाथी और एक हजार तोपों की बताता†† । मुर्तज़ा हुसैन खां इसको १ लाख ३० हज़ार तक ले जाता है‡‡ और गुलामअली और भी अतिशयोक्ति से ढाई लाख की संख्या के अविश्वास्य आंकड़े तक इसको पहुँचा देता है●●। शाकिरखां ने जो दिल्ली में था इसका अनुमान ६० हज़ार सवार और बन्दूकची दिया है**। और गुलामहुसैन खां ने जिसका पिता रण-स्थल में उपस्थित था सफ़दर जंग की योग्य-शक्ति ७० हज़ार सवार दी है§। अन्तिम संख्या सत्य के निकटतम है।

---

* पेशवा दफ़्तर संग्रह जिल्द II, पत्र नं० २३।
† सुजान चरित ७१ ; संग्रह आदि जिल्द II, पत्र नं० २३।
‡ दिल्ली समाचार ३६ ; हरिचरण २०४ अ।
†† सुजान चरित पृ० ६० और ७१।
‡‡ हादिक़ १७४।
●● इमाद ४८।
** शाकिर ६४।
§ सियार III ८७७।

परन्तु यह विशाल सैन्य परस्पर विरोधी तत्वों से निर्मित था जिनमें वज़ीर के व्यक्तित्व के सिवाय और कोई एकता का बन्धन नहीं था। परन्तु इसमें कोई संश्लेष और अनुशासन न था और इस कारण यह शस्त्रधारी जनसमूह से भिन्न न था। एक तुच्छ घटना ने जो मारहरा में घटित हुई इसकी युद्ध-साधन की दृष्टि से अन्तर्जात निर्बलता प्रगट करती है। २० अगस्त को एक मुग़ल सैनिक के ऊँटवाले ने वज़ीर की सेना के एक सैनिक मारहरा निवासी इनायत ख़ाँ के घर के सामने एक पेड़ काट डाला। इनायत ख़ाँ ने अपराधी को दण्ड दिया। इस पर मुग़लों ने उत्तेजित होकर क़स्बा को लूट लिया, इनायत ख़ाँ और उसके पुत्र को मार डाला और मारहरा के बहुत से आदमियों, औरतों और बच्चों को बन्दी बना लिया। वज़ीर की आज्ञा पर उसके साले नसीरुद्दीन हैदर को व्यवस्था स्थापित करने में सारी रात काम करना पड़ा और तब कहीं बन्दी छुड़ाये जा सके और उनकी सम्पत्ति उनको वापस हुई*।

इस समय तक अहमद ख़ाँ बंगश २० हज़ार पठानों को लेकर पहुंच चुका था और वज़ीर की रक्षा-परिखा के १० मील पूर्व में गंगा के दक्षिण उसने छावनी डाल दी थी। ऐसा प्रतीत होता है कि स्वयं वज़ीर के आगमन के समाचार पर उसके नये रंगरूट भाग गये थे और शाहजहाँपुर, तिलहर, बरेली और जौनपुर के पठानों ने उसकी सहायता की मांग का सन्तोष जनक उत्तर न दिया था। परन्तु रुहेलखण्ड के अलीमुहम्मद ख़ाँ के पुत्र सादुल्ला ख़ाँ रुहेला ने अपनी रियासत पर क़ायम ख़ाँ के आक्रमण को विस्मृत कर परमल ख़ाँ और दायर ख़ाँ के नेतृत्व में ठीक समय पर १० हज़ार वीर सैनिक भेजें†। गंगा को पारकर ये अहमद ख़ाँ से जा मिले और उसकी छोटी सी सेना को बढ़ाकर ३० हज़ार तक पहुँचा दिया।

---

* सियर III ८७७। सियर का अनुवादक मुस्तफ़ा ग़लती से 'मारहरा' को 'बर' पढ़ लेता है (इसलिए अनुवाद जिल्द III ९६३) इसी के कारण इलियट (परिशिष्ट दर्पण पृ० ११०) और एल्फिन्स्टन (मा० ई० ६टा संस्करण पृ० ७३६) ने लिखा है कि सफ़दर जंग ने माराह का क़स्बा लूट लिया।

† मुज़फ़्फ़र चरित्र ७३ ; गुलिस्ता ३७; ता० अहमदशाही ३६ ब; पेशवा दफ़्तर संग्रह-जिल्द II पत्र नं० २०। संख्या के सम्बन्ध में मुज़फ़्फ़र

रामछटौनी का रण और वज़ीर की पराजय, २३ सितम्बर १७५० ई०

रण के पहिले की रात्रि में वज़ीर ने युद्ध-परिषद को आमन्त्रित किया और इतिहासकार गुलामहुसैन खाँ के पिता हिदायतअली खाँ को, जिसको पठानों की युद्ध शैली का कुछ अनुभव था, बुलाया कि वह अपनी राय बताये कि निकटवर्ती रण में किस नीति का अनुसरण उचित होगा। खाँ ने कहा—"वे (पठान लोग) प्रायः अपने को किसी गुप्त स्थान में छुपा लेते हैं और जब वे दूसरे पक्ष को अतर्क पाते हैं वे अकस्मात किसी दिशा से प्रगट हो जाते हैं और एक साथ बड़े कुलाहल से हमला करते हैं। यदि इस संकट के समय में पर्याप्त धैर्य रखा जाये तो पठान ज्यादा नहीं ठहर सकते हैं और पराजित होते हैं। अतः हुज़ूर अपने हाथी के सामने बन्दूक धारण किये हुए तीन चार हज़ार विश्वास पात्र मुग़ल पैदल रखें कि संकट काल उपस्थित होने पर वे शत्रु को अपनी बन्दूकों की अग्नि से दबा दें।" हिदायतअली अपनी बात पूरी न कर पाया था कि वज़ीर का मुख्य आज्ञापक ईस्माईल बेग खाँ बीच में बोल उठा कि आगामी दिन वह अहमद और उसके आश्रितों को अपनी कमान के कोने बाँध कर उपस्थित कर देगा। हिदायत अली चुप हो गया और उसके अधिक बुद्धि-युक्त विमर्श पर कोई ध्यान न दिया गया*।

२३ सितम्बर, १७५० ई० का घातक दिन उदय हुआ। अपनी स्वाभाविक प्रातःकालीन प्रार्थना के बाद वज़ीर अपने हाथी पर चढ़ा और अपने विशाल जन-समूह को रण की मुसज्जा में जमा किया। जाटों सहित सूरजमल उसके दक्षिण पर था; इस्माइल बेग खाँ और राजा हिम्मत सिंह भदवरिया अपनी सेनाओं सहित वाम पक्ष पर थे। वह स्वयं अपनी सेना के बहुत बड़े भाग सहित सेन्ट्र में था। नसीरुद्दीन हैदर और इस्हाक़ खां नज्मुद्दौला उसके साथ थे और ५ हज़ार चुने हुए क़िज़िलबाश सिपाही ठीक उसके आगे। अग्रदल में कामगर खां बलूच, मीर बक्श, शेर जंग,

चरित १० हज़ार देता है और मराठी पत्र १५ हज़ार; इर्विन ने ग़लती से यह विश्वास कर लिया कि रुहेलों ने इस बार अहमद खाँ का साथ न दिया। वह समझता है कि सफ़दर जंग से दूसरे युद्ध में प्रथम बार उन्होंने बंगश का साथ दिया। देखो ज० ए० सु० बं (१८७६ पृ० ६१)। यह निस्सन्देह इमाद के पाठान्तर पर आधारित है।

* सियर III ८७१।

बहादुर खां और रमज़ान खां अपने दलों सहित थे। तोपखाना—सब प्रकार की क़रीब १ हज़ार तोपें—सारे अग्र भाग के साथ-साथ एक लम्बी रेखा में लगा हुआ था जिसकी रक्षा में सेना आगे बढ़ी और क़रीब ६ बजे प्रातः पटियाली के कस्बे से क़रीब ६ मील पश्चिम में रामछटौनी के विस्तृत मैदान में पहुंच गई[1]।

अहमद खां बंगश ने अपनी सेना को मुख्य भागों में विभाजित किया-एक को जिसमें १० हज़ार पठान विशेषकर आफ़्रीदी थे उसने रुस्तम खां आफ़्रीदी की कमान में शत्रु के विरुद्ध भेज दिया और दूसरे को जो उसके व्यक्तिगत कमान में था उसने अकस्मात आक्रमण के लिये जंगल में छुपा दिया जो उस मैदान के एक कोने में उगा हुआ था। जैसे ही कुछ दूर पर पठान गति करते हुए दिखाई पड़े, सफ़दर जंग के सिपाहियों ने धावा बोल दिया और रण दोनों ओर से तोपों द्वारा अग्निवर्षा से और पटाकों के छोड़ने से प्रारम्भ हुआ। जब तोपों की अग्नि कम पड़ गई, वज़ीर के दक्षिण और वाम पक्ष क्रमशः सूरजमल और इस्माइल बेग खां की कमान में रुस्तम खां के विरुद्ध आगे बढ़े। बलराम के जाटों ने जो अग्रपंक्ति में थे एक टीले पर, जो एक उजड़ हुये गाँव का स्थान था, और जो उनके और शत्रु के बीच में पड़ता था, अधिकार कर लिया, इसकी चोटी पर अपनी तोपें लगा दीं और अपनी विनाशक अग्नि से पठानों को बहुत दबा दिया। ६-७ हज़ार सैनिक लेकर रुस्तम खां जल्दी से अपने आदमियों की सहायता पर आ गया। उसने टीले पर अधिकार कर लिया, जाटों की तोपें छीन लीं और शत्रु से हाथों हाथ लड़ाई शुरू कर दी। यद्यपि जाट संख्या में निराशा पूर्ण दब गये थे, कुछ समय तक वे अपने पैरों को स्थिरता से जमाये रहे। परन्तु उनकी हानि बहुत हुई और उनके कुछ वीर अधिकारी जैसे, चैनसिंह, साहिब राम और तिलोक सिंह तोमर अन्त तक वीरता से लड़ते हुए मारे गये। यह देख कर सूरज मल ने अपने मामा सुखराम को बलराम की सहायता करने भेजा*। सूरज मल, इस्माइल बेग खां और

[1]सुजानचरित ७६-८०; सियर III ८७६; पेशवा दफ़्तर का संग्रह जिल्द II पत्र नं० २०; राम छटौनी एक हिन्दू मन्दिर और स्थानीय तीर्थ स्थान है। यह कासगंज के रेलवे स्टेशन और मोहनपुर गाँव के बिल्कुल पास है। नक़्शा नं० ५४।

*सुजान चरित ८३-८६ और ६१-६७; सियर III ८७८; गुलिस्तां रहमत ३६; हादिक १७४; पेशवा दफ़्तर संग्रह जिल्द II पत्र नं० २०।

हिम्मत सिंह भी अर्ध चक्राकार में आगे बढ़े और वे बाण-वर्षा करते हुये और बन्दूकें चलाते पठानों के पास जा पहुंचे। रुस्तम खां अपनी पाल्की से कूद कर बाहर आ गया और अपने वीर जाति-भाइयों को अपने चारों ओर लेकर बड़ी वीरता से लड़ा। परन्तु अत्याधिक शत्रुओं का सामना उसको करना पड़ा। उसके गोली लगी और वह मर गया, उसके ६-७ हज़ार सिपाही मारे गये परन्तु उन्होंने भी मरने से पहिले ३-४ हज़ार जाटों को गिरा दिया था। खां के शेष आदमी अत्यन्त भय ग्रस्त होकर अलीगंज की ओर भाग निकले। विजेताओं ने इनका पीछा किया और इस तरह वे वज़ीर के केन्द्र से ४ मील से भी अधिक आगे निकल गये†।

इस बीच में अहमद खाँ बगश को सूचना मिली कि रुस्तम खाँ आफ़्रीदी हार गया है और मार डाला गया है और जाट उसकी शेष सेना का पीछा बहुत तेज़ी से कर रहे हैं। बिना क्षुब्ध हुए उसने अपने जाति भाइयों को बुलाया और उनसे कहा कि रुस्तम अली खाँ ने जाटों को हरा दिया है और सूरजमल इस्माइल बेग और हिम्मतसिंह को कैद कर लिया है और यदि उन्होंने (बगशों ने) वज़ीर को हराने की उनकी ऐसी ही कोशिश की तो आफ़्रीदियों को उन पर ताना कसने का अवसर न मिलेगा। सब सहमत हो गये। अहमद खाँ ने पहिले १० हज़ार रुहेले परमुल खाँ के नेतृत्व में आगे भेजे। वज़ीर के अग्र भाग पर वे यकायक झपटे। बिना किसी प्रतिरोध के कामगार खां बलूच, मीर बक्श और बहादुर सिंह जो शत्रु का विश्वासघाती पक्षपात करते थे, पीछे हटे और भाग गए। शेर जग ने उनका अनुकरण किया। सफ़दर जग ने अब मुहम्मद अली खाँ और नूरुलहसन खाँ बिल्गामी को आज्ञा दी कि अग्रदल के शेष भाग को मदद देने के लिए आगे बढ़ें। मनुष्यों और हाथियों के झूँडों में से बहुत कष्ट से अपना रास्ता चीरकर नूरुलहसन, उसके भाई और मुहम्मद अली खां का चेला अब्दुलबाकी खां १०० सैनिक लेकर मूर्चा पर पहुँचने में सफल हुए। परन्तु भुसान इतने भयाकुल थे कि उनको पुनः संगठित करने के नूरुलहसन खाँ के सब प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुए। इसलिये खान और उसके साथी बाईं ओर को मुड़ पड़े कि उस ओर से वज़ीर के केन्द्र में मिल जायें। परन्तु उनके पृष्ठ भाग पर २०० रुहेलों ने अकस्मात् आक्रमण किया जो अपने मुख्य दल से भेजे गए थे। नूरुलहसन खाँ ने

---

† हरिचरण ४०५ अ; पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द I पृ० ३५।

का सामना किया और उनकी पंक्तियों को छिन्न भिन्न कर दिया। परन्तु रुहेले जल्दी संभल गए और मुहम्मद अली खाँ के सैन्य भाग को राह चीरकर पहुंच गये जहाँ पर घमासान में मुहम्मद अली खाँ को गोली लगी, नूरुलहुसैन खाँ का हाथी तलवारों के कई घावों से बेकार हो गया और बिलग्राम के दोनों सैयद, मीर गुलामनबी और मीर अज़ीमुद्दीन काम आये†।

जब वज़ीर के केन्द्र के वाम पक्ष की स्थिति ऐसी थी, रुहेलों की मुख्य सेना उसके अग्र पंक्तियों की ओर जल्दी से बढ़ी चली आ रही थी। जैसे ही शत्रु समीप पहुँचा, ५ हज़ार मुग़लों ने जो वज़ीर के बिल्कुल सामने ही नियुक्त थे, अपनी तोपें छोड़ीं जो गोलों के बजाय भालों से भरी थीं‡। इससे बहुत शोर और धुआँ पैदा हुआ, परन्तु काम कुछ न बना। जब धुआँ कम पड़ गया अहमदख़ां बंगश क़रीब २ बजे दोपहर को पलाश के पेड़ों के एक झुंड के पीछे से अकस्मात प्रगट हुआ और अपने आदमियों को हमले के लिये आगे बढ़ाया। पठान धनुर्धरों और बन्दूकचियों ने मुग़ल पंक्तियों को अस्तव्यस्त कर दिया और उनको भगा दिया। आसक्त अनुचरों के एक दल सहित नसीरुद्दीन हैदर इस समय वीरता से आगे बढ़ा, अहमदख़ां के मुख्य भाग पर तीव्र आक्रमण किया। सात पठानों को अपनी तलवार से मार कर वह मुस्तफ़ाख़ां मतानिया से द्वन्द युद्ध में जुट गया। दोनों वीरता से लड़े, अपने घोड़ों से गिर गये और अपने-अपने लगे हुये घावों के कारण मर गये। अहमदख़ां तुरन्त बढ़ कर उस जगह पहुँच गया जो नसीरुद्दीन के गिर जाने से ख़ाली हो गई थी और वज़ीर के

---

† सियर III ८७८; इमाद ४६, हरिचरण ४०५ अ; हादिक़ १७४; तo मo १५० ब; पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द II, पत्र नं० २०; सुजान चरित्र ८६-८६। संग्रह का पत्र नं० २१ अनश्रुति पर आधारित है। इन्तिज़ामुद्दौला के भाई मीर बक्श के लिए यह स्वाभाविक हो था कि पठानों से कोई समझौता कर ले। परन्तु संग्रह का पत्र नं० २० आदि कहता है कि शेर जंग भी षड्यन्त्र में सम्मिलित था। अहमद खाँ ने सूरजमल को भी फुसला लेने की असफल चेष्टा की थी। (देखो सुजान चरित्र पृ०-७६-७८)

‡ संग्रह-आदि पृ० १५; हादिक़ १७४; ल० ए० सु० बं० (१८७१) पृ० ७४।

केन्द्र पर आक्रमण किया जिसको उसने अपने पर्चों और अग्रदल को सहायता भेज कर असावधानी से निर्बल बना लिया था। इस समय करीब २०० पठान सफ़दरजंग के पृष्ठ भाग पर पहुंच गये थे और उसके सिपाहियों पर अपनी बन्दूकें खाली करदी थीं। इस प्रकार उस पर एक और उसी समय दो ओर से आक्रमण हुआ। उसका महावत और उसका सेवक मिर्ज़ा अलीनकी गोलियों से मारे जा चुके थे। स्वयं वज़ीर के जबड़े में गोली लगी थी और वह हौदा में बेहोश गिर गया था। सौभाग्य से अमारी धातु की लम्बी तीलियों की बनी हुई थी, सो वह अधिक चोट खाने से बच गया। हौदा को खाली समझ कर पठान आगे निकल गये। वे यह न जान सके कि वज़ीर कहां था। इस संकट के अवसर पर दीवान आत्माराम का पोता जगतनारायण अपने घोड़े पर से कूद पड़ा, सफ़दरजंग के हाथी पर चढ़ गया और महावत की जगह बैठ कर इसको आपत्ति से निकाल लाया। वज़ीर को खोज में व्यस्त विजयी बंगश अब वहां पहुँचे जहां इस्हाक़खां नजमुद्दौला अपने स्वामिभक्त सिपाहियों की एक टोली लिये हुये खड़ा था। वे चिल्लाये "अबुलमन्सूरखां कहां है? अबुलमन्सूरखां कहां है?" शत्रु के प्रतिरोध को तैयार होकर इस्हाक़खां ने उतनी ही तेज़ आवाज़ में उत्तर दिया—"मैं अबुलमन्सूरखां हूँ" इन शब्दों पर पठानों के दल सब ओर से उस पर टूट पड़े और यद्यपि वह बराबर तीर चलाता रहा, उन्होंने उसका सिर काट लिया और उसको अहमदखां बंगश के पास ले गये। वहां पर यह पहिचाना गया कि यह इस्हाक़खां का सिर है। इस समय तक वज़ीर अपनी मूर्छा से जाग गया था। उसने आज्ञा दी कि ढालें ज़ोर से बजाई जायें कि उसके सिपाही पुनः सगठित हो जायें। परन्तु २०० व्यक्तियों को छोड़ कर और कोई उसकी सहायता पर इकट्ठा न हुआ। तीसरे पहर के ३ बज चुके थे। बड़ी अनिच्छा से सफ़दरजंग रणस्थल से वापस हुआ और मारहरा को प्रयाण किया वहां वह सन्ध्या के बाद पहुंचा। उसका बहुत सा ख़ज़ाना और सामान उसके ही कृतघ्न मुग़ल सैनिकों ने लूट लिया था और जो बचा था वह विजयी पठानों का शिकार बना*।

* सियर III ८३८; इमाद ४६; हादिक़ १७४; हरिचरण ४०५ ब; सुजान चरित ८८-६०; पेशवा दफ़्तर संग्रह जिल्द II, पत्र २; ता० अहमदशाही २७ अ। अन्तिम पुस्तक संक्षिप्त और कुछ अंश में अशुद्ध वृत्तान्त देती है।

इस बीच में सूरजमल, इस्माईल बेग खां और राजा हिम्मतसिंह आफ्रीदियों का पीछा करके लौट रहे थे। मार्ग में वज़ीर की पराजय और रणस्थल से उसकी वापसी की सूचना उनको मिली। अतः वे पलाश वृक्षों के एक झुंड के समीप ठहर गये कि पठानों की भावी गति को प्रतीक्षा करें। परन्तु अहमदखां बंगश भी यद्यपि वह उसके बहुमूल्य खज़ाना और सामान सहित वज़ीर की छावनी का मालिक हो चुका था, सूरजमल के प्रयोजन की ओर से सशंक और चिन्तित था। उसने बुद्धिमत्ता से अपने सैनिकों को जाटों की ओर बढ़ने से मना कर दिया। अतः सूरजमल और उसके मित्रों ने जो विजयी पठानों की ओर से उतना ही सशंक थे, काली नदी के तट पर ठहर गये, रात वहीं बिताई और दूसरे दिन जल्दी प्रभात में अपने-अपने घरों को वापस हो गये।

वज़ीर का प्रत्यागमन और उसके विरुद्ध एक असफल षडयन्त्र।

मारहरा में सफदरजंग ने अपने घाव पर पट्टी बँधवाई और रात वहीं पर बिताई। आधी रात को हिदायत अली खां उससे आ मिला। वह अपने साथ कुछ तोपें और सेना के कुछ भ्रान्त पर्यों को भी लाया था। दूसरे प्रातःकाल २४ सितम्बर का उसने अपनी यात्रा पुनः प्रारम्भ कर दी, परन्तु अब उसके साथ पहिले की विशाल सेना का एक अंश ही था। वह ६ मील से अधिक न गया होगा जब एक ऊँट वाले ने राजा लक्ष्मीनारायण का पत्र उसको दिया इस पत्र में वज़ीर के ज्येष्ठ पौत्र अवध के भावी नवाब आसफुद्दौला के जन्म का शुभ संवाद था। उसका शोक थोड़ी देर के लिये हर्ष में बदल गया परन्तु पराजय की विपत्त और अपमान से उसका चित्त इतना खिन्न हो गया था कि उसने कोई खुशी न मनाई जैसा इन अवसरों पर लोग प्रायः किया करते हैं*। ३० सितम्बर को वह यमुना के समीप पहुँचा और बारापुला पर छावनी डाली।

सारे देश में वन्याग्नि के समान वज़ीर की पराजय का समाचार फैल गया था। प्रत्येक स्थान पर लोगों का पक्का विश्वास था कि कलह प्रिय पठानों के हाथों उसकी मृत्यु हो गई है†। दिल्ली में अत्यन्त निरर्थक अफवाहें उड़ रही थीं। बादशाह, जावेद खां और तूरानी सामन्त उन उपायों पर विमर्श करने लगे जिनके द्वारा सफदर जंग की सम्पत्ति ज़ब्त

---

*सुजान चरित ६१-६६।

†इमाद ५०।

की जा सके और इन्तिज़ामुद्दौला को विज़ारत दी जा सके। परन्तु वज़ीर की बहू शदरुन्निसा ने १० हज़ार सैनिक एकत्रित कर लिये और अपने पुत्र जलालुद्दीन हैदर को प्रोत्साहित किया कि अपनी रक्षा का प्रबन्ध करे‡। इससे षडयन्त्रकारियों की योजना ग्रस्त व्यस्त हो गई। उन्होंने बुद्धिमानी से यह निश्चय किया कि उसकी बहू से निपटने के पहिले वे वज़ीर की मृत्यु के समाचार की पुष्टि की प्रतीक्षा करें। कुछ दिन बाद सफ़दर जंग बारापुला पहुंच गया। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने संकल्प कर लिया था कि दिल्ली में प्रवेश करने के पहले वह दूसरी सेना जमा कर ले और पठानों को हरा दे। परन्तु बादशाह की ज़िद के कारण वह शहर में अपने घर को चला गया*। दिल्ली से अपनी अनुपस्थिति के समय में अपने दरबारी शत्रुओं के आचरण से सूचित होकर उसने (राजमाता) उधम बाई को भयावह सन्देश भेजे और जावेद खां को भी कि वह अब तक उनके बराबर शक्तिशाली था। दोनों ने इन्कार कर दिया कि उन्होंने

‡मल्हरराव होल्कर ने अपने दो-तीन पत्रों में पेशवा को लिखा था कि सफ़दर जंग की मृत्यु हो गई है। देखो पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द II-I-२३२४। सियर II २८१; इमाद ५०।

*पेशवा दफ्तर संग्रह II, जिल्द II पत्र नं० २०; सियर III ८८१; मैं पठानों के पक्षपाती रूपान्तर को तिरस्कृत करता हूँ जिसको बिना समालोचना के इर्विन ने मान्यता दे दी है कि दिल्ली पहुंच कर सफ़दर जंग अपने घर को चला गया। मुझे सियर का रूपान्तर अपेक्षित है क्योंकि यह अधिक समकालीन है और इतिहास कार का पिता हिदायत अली खां उस समय दिल्ली में उपस्थित था।

एक समकालीन दरबारी द्वारा लिखित ता० अहमदशाही इस विषय पर मौन है। यह केवल इतना कहता है कि सफ़दर जंग घायल आया और करीब २ मास तक दरबार को नहीं गया। एक दिन जब बादशाह कुदसिया बाग़ को देखने गया वह वज़ीर के मकान के पास से निकला और तब सफ़दर जंग बाहर आकर उससे मिला। अहमदशाह ने उसका स्वास्थ्य पूछा, उसका घाव देखा और उसको सांत्वना दी। घाव अच्छा होने पर अपमानित की भांति वज़ीर दरबार को गया। देखो ता. अहमदशाही-२६ ब, २७ अ। इस ग्रन्थ में सफ़दर जङ्ग के प्रत्यागमन की दी हुई तारीख ग़लत है।

उसके विरुद्ध कभी कोई पाप इच्छा न की थी और तुरन्त क्षमा याचना कर लीं††।

अब भी वज़ीर के शत्रु हतोत्साह न हुए। वे इस कार्य में जुट गये कि वज़ीर के अभिभव से जो लाभ उठा सकें उठा लें। मुग़ल इतिहास में प्रथम बार बादशाह के वज़ीर को उपेक्षणीय और अज्ञात शत्रु ने परास्त कर दिया था। तूरानी नेता इन्तिज़ामुद्दौला से यह न हो सकता था कि ऐसी आशातीत घटना को बिना उससे लाभ उठाये विस्मृत कर दे। उसने बादशाह को उकसाया कि सफदर जंग का दरबार में प्रवेश निषेध कर दे क्योंकि मुग़ल वंश के एक प्राचीन नियमानुसार पराजित वज़ीर को अपना स्थान रिक्त करना पड़ता है और उसको अवकाशग्राही बनना पड़ता है। सफदर जंग इस पर हतबुद्धि हो गया। अपने संकटों से छुटकारा पाने का इससे अच्छा उपाय उसको न सूझा कि अपने चतुर प्रतिस्पर्धी जावेद खां को वह प्रसन्न कर ले। उसने खां को ७० लाख रुपये की भारी घूस दी और चालाक लालची षंढ ने सफदर जंग को क्षमा दिला दी और पुनः उसको विज़ारत पर बिठा दिया*।

अपनी विजय के पीछे अहमद खाँ का कार्य

साम्राज्य के वज़ीर पर अपनी आशातीत विजय से हर्षित होकर अहमद खां बंगश ने तुरन्त इसका प्रबन्ध किया कि फर्रुखाबाद के चारों ओर के बादशाही प्रदेश पर और वज़ीर के अवध और इलाहाबाद के प्रान्तों पर अपना अधिकार जमा ले। उसने अपने अनेक सौतेले भाइयों और चेलों में से कुछ को उनके दलों सहित प्रत्येक दिशा में भेजा और अलीगढ़ से कड़ापुर के २६ मील पूर्व में अकबरपुर तक सारे देश को उन्होंने हस्तगत कर लिया†। इलाहाबाद पर‡ अधिकार जमाने के लिये २० हज़ार सेना देकर उसने अपने एक सौतेले भाई शादी खां को भेजा; ग़ाज़ीपुर ज़िला को अधीनस्थ करने के लिये उसने मुहम्मद अमीन खां को

††सियर III ८८१।

*त० म० १५१ ब; सियर III ८८१; इमाद ५०; अब्दुलकरीम २६१।

†वली उल्ला ६८ ब; ज० ए० सु० बं० (१८७६) पृ० ७६; संग्रह आदि जिल्द II पत्र नं० ३०।

‡तारीख़ १७४।

भेजा और अवध को अपने नियन्त्रण में लाने के लिये उसने स्वयं अपने पुत्र महमूद खां को १० हज़ार सवार, असंख्य पैदल और बहुत बड़ा तोपख़ाना देकर और शहां खां को उसका मुख्य मन्त्री बना कर भेजा। मुनव्वर खां सांडी और पाली का फ़ौजदार नियुक्त किया गया* और खुदादाद खां बिल्ग्राम का** (दोनों से अवध की पश्चिमी सीमा बनती थी और वे दोनों उसमें शामिल थे)। अहमद खां की विनम्र प्रार्थना पर कि वज़ीर की रियासत पर अधिकार जमाने में वह अपना सहयोग प्रदान करे हाफ़िज़ रहमत खाँ ने रुहेला सिपाहियों के एक शक्ति सम्पन्न दल के साथ परमुल खाँ को भेजा जिन्होंने शाहाबाद के परगने और खैराबाद की सरकार पर† अधिकार कर लिया। जो स्थूल रूप से हरदोई, लखीमपुर-खीरी का पश्चिमार्ध और सीतापुर के आधुनिक ज़िलों के बराबर होते हैं। जनता की ओर से कोई कठिन विरोध न हुआ‡।

अवध पर पठानों का अधिकार

राम छटौनी के रण के थोड़े ही दिन बाद महमूद खाँ बंगश ने लखनऊ की ओर अपना प्रयाण प्रारम्भ किया। हरदोई से १६ मील दक्षिण-पश्चिम बिल्ग्राम की पश्चिमी सीमा के पास पहुँचने पर उसके सिपाहियों ने नगरवासियों से झगड़ा कर लिया और उनको कुछ चोट भी पहुंचाई। बिल्ग्रामी उस समय तल्वार और क़लम के व्यवहार में समकुशल थे। उन्होंने प्रतिकार किया, कुछ पठानों को घायल कर दिया और उनकी छावनी से २०० लद्दू जानवर पकड़ ले गये। अति क्रुद्ध होकर महमूद खाँ ने क़स्बे को लूटने की प्रतिज्ञा की। लोगों ने भी उसकी रक्षा करने की विशाल तैयारियाँ कीं। परन्तु वहाँ के कुछ आदरणीय शेख़ों की मध्यस्थता से जिनका अहमद खाँ बंगश से पूर्व परिचय था, इस अनर्थ की अनावृत्ति हुई और शान्तिमय समझौते के बाद महमूद खाँ ने इलाहाबाद की ओर अपना प्रयाण पुनः आरम्भ किया। उसने अपने एक चाचा को २० हज़ार

---

*सांडी-क़न्नौज के १६ मील उत्तर में है और पाली सांडी के १८ मील उत्तर-पश्चिम में है।

**बिल्ग्राम हरदोई से ६१ मील दक्षिण-पश्चिम में है-शीट ६३ अ।

†खैराबाद जो पहिले ज़िले का मुख्य स्थान था सीतापुर के क़रीब ४ मील दक्षिण-पूर्व में है। शीट ६३ अ।

‡गुलिस्ताँ ३६।

इलाहाबाद का घेरा।

रामछटौनी के विजय के पश्चात्, अवध की ओर महमूदखाँ के प्रस्थान के साथ ही साथ, अहमदखाँ बंगश के एक सौतेले भाई शादीखाँ ने २० हज़ार सवार और पैदल लेकर इलाहाबाद की ओर अपना प्रयाण प्रारम्भ किया। जैसे ही यह खबर लखनऊ पहुँची दिवगत अमीरखां का एक भतीजा बक़ाउल्लाखां और दीवान आत्माराम का कनिष्ट पुत्र प्रताप नारायण, इस भय से कि दो अग्नियों के बीच में फँस न जाये, तुरन्त इलाहाबाद की ओर हटे और उसके दृढ़ गढ़ में शरण ली। प्लायकों से यह जान कर कि शादीखाँ उसके शहर की ओर आ रहा है, इलाहाबाद का उपराज्यपाल अलीकुली खां स्वयं अपनी सेना और कुछ प्रतापनारायण की सेना लेकर शत्रु से लड़ने आगे बढ़ा। विरोधी दल कानपुर से २४ मील दक्षिण कोड़ा जहानाबाद में आ मिले जहाँ पर घमासान रण हुआ। इसमें शादीखां हार कर भाग निकला। अली कुलीखां तब इलाहाबाद को वापस हुआ†।

शादीखां को पराजय की सूचना पाकर अहमदखां बंगश स्वयं इलाहाबाद के विरुद्ध चल पड़ा। इस समाचार पर प्रतापनारायण, बक़ाउल्ला खां और अलीकुली खां ने, शत्रु की बहु संख्यक सेना का सामना करने में अपने को असमर्थ पाकर, अपने को गढ़ में बन्द कर लिया और घेरा सहन करने के बड़े-बड़े प्रबन्ध किये। गढ़ के त्रिवेनी फाटक से यमुना के दक्षिण तट पर स्थित क़िले से क़रीब आधे मील पर अरैल के छोटे क़स्बे तक इन्होंने यमुना पर नावों का पुल बाँध दिया। रक्षा को दृढ़ करने के लिये और समीपवर्ती प्रदेश से मनुष्यों और रसद का मार्ग निश्चयात्मक सुरक्षित रखने के लिये इन लोगों ने अपनी सेना का एक शक्तिशाली दल बक़ाउल्ला खां के अधीन पुल के दक्षिण छोर पर नियुक्त कर दिया‡।

इस बीच में अहमद खाँ बंगश कोड़ा पहुँच गया जहाँ पर प्रतापगढ़ के राजा प्रथीपत और बनारस के राजा बलवन्त सिंह के मैत्री के पत्र उसको प्राप्त हुए। इन लोगों ने वचन दिया था कि इलाहाबाद के क़िला को हस्तगत करने में वे उसकी मदद करेंगे जिसके बाद वह पूरा सूबा और पूर्वी अवध आसानी से उसके हाथ आ जायेंगे। इन आमन्त्रणों

---

† हादिक़ १७४।

‡ हादिक़ १७४।

से प्रोत्साहित होकर खाँ ने अपना प्रयाण पुनः प्रारम्भ किया और फरवरी १७५१ ई० में किसी समय इलाहाबाद पहुँच गया। अग्रिम दल पहले ही गंगा के वाम तट पर पहुँच गया था, और अब वे दोनों किले से करीब १ मील पूर्व में झूसी पर नदी को पार करके पहुँचे। वहां पर राजा हरबोंग के गढ़ के नाम से प्रसिद्ध एक टीले पर अहमद खाँ ने अपनी तोपें लगा दीं और किले पर उनको चलाने लगा। अवरोधित भी सारे दिन अग्नि-वर्षा करते रहे। अपने साथी अवरोधितों का उत्साह बढ़ाने के लिए उच्च सैनिक गुण सम्पन्न बका उल्ला खाँ नित्य प्रातः और साय सैनिक सुसज्जा में अरेल के पास अपने शिविर से गढ तक प्रयाण करता। उनके सौभाग्य से राजेन्द्र गिरि गोसाई* नामक अथक वीरता के एक नागा सन्यासी ने जो पवित्र प्रयाग की तीर्थ यात्रा के लिए आया हुआ था, अवरोधितों का पक्ष ले लिया। अली कुली खाँ और उसके मित्रों द्वारा पुनः पुनः

* राजेन्द्र गिरि नागा गोसाईं और सन्यासी था। उसका गाँव झाँसी के उत्तर पूर्व में ३२ मील पर मोठ का गाँव था जो उसी ज़िले में सम्मिलित था। मराठों ने मोठ उसे जागीर में दिया था। यहाँ पर अपने लिए उसने एक गढ़ का निर्माण किया था और उसको अपना निवास-स्थान बना लिया था। धीरे-धीरे पड़ोस में बहुत से गाँवों पर उसने अधिकार कर लिया था और इसी कारण से १७५० ई० के लगभग उस प्रदेश के मराठा अधिकारी नरोशंकर ने, जो एक समय उसका संरक्षक था, उसको वहाँ से निकाल दिया था। तब राजेन्द्र गिरि इलाहाबाद को गया और वहां पर घिरे हुए सफदर जंग के सिपाहियों की उसने बहुमूल्य सेवा की। उसका वज़ीर से परिचय कराया गया। उसके अधीनस्थ सेवा को उसने दो शर्तों पर स्वीकार कर लिया—१—उसके लिए प्रणाम करना आवश्यक न हो। २—अपने स्वामी के अनुचर वर्ग में होते हुए भी उसको आज्ञा रहे कि अपने नगाड़ों को बजा सके। द्वितीय पठान युद्ध में और बादशाह के विरुद्ध गृह युद्ध में वह वज़ीर के लिये वीरता से लड़ा और अन्तिम में वह मारा गया। उसके मुख्य शिष्य थे—उमराव गिरि और रूप गिरि—जिनमें से द्वितीय को हिम्मत बहादुर की उपाधि दी गई थी। शुजाउद्दौला इन दोनों नवयुवकों का आश्रयदाता था जो बहुत समय तक उसकी सेवा में रहे। देखो हादिक़ १६८-६६; ज० ए० सु० बं० (१८७६) पृ०-७६ (अ)।

कुछ प्रार्थनाओं पर भी वह क़िला में शरण लेने को प्रस्तुत न हुआ। अपने कुछ वीर शिष्यों के साथ जो सर्वथा दिगम्बर थे, जिनके शरीरों पर राख मली होती थी और जिनके लम्बे-लम्बे केश थे, वह पठानों पर दिन में दो तीन बार टूट पड़ता, उनमें से कुछ को मार डालता और तब अपने डेरों को वापस आ जाता जो पुराने शहर और क़िले के बीच में थे। इस प्रकार बहुत दिनों तक युद्ध चलता रहा। परन्तु पठान शत्रु पर कोई प्रभाव डाल न सके। अतः उनके क्रोध का शिकार नगर के निष्पाप और अरक्षित नागरिक हुये। खुल्दाबाद से गढ़ के नीचे तक इलाहाबाद का विस्तृत नगर लूट लिया गया; पठान बदमाशों ने उसको जला दिया और सम्मानित परिवारों की ४ हजार महिलाओं और बच्चों को पकड़ कर बन्दी बना लिया। केवल शेख़ अफ़ज़ल इलाहाबादी का निवास और दरियाबाद का मुहल्ला जिसमें केवल पठान ही पठान रहते थे—शहर के ऐसे स्थान थे जो उनके अपहरण के लोभ और अग्नि और असि की प्रतिशोधात्मक क्रूरता से बच गये थे*।

जब गढ़ को विजय करने का प्रत्येक प्रयास असफल रहा, अहमद खाँ ने निश्चय किया कि अरेल के क़स्बे को हस्तगत करले और अवरोधियों को सामान और मदद का पहुँचना बन्द कर दे। अतः बनारस के राजा बलवन्त सिंह को, जो उसके आह्वान पालनार्थ झूसी तक कुछ ही पहिले पहुँचा था, उसने आज्ञा दी कि नदी को पार कर अरेल पहुँच जावे, बक़ाउल्ला खाँ और उसके सिपाहियों को गढ़ में खदेड़ दे, तत्पश्चात पुल पर अधिकार प्राप्त कर ले और दक्षिण से आक्रमण करे। अरेल की दिशा से राजा के हमले के साथ ही साथ पूर्व से गढ़ पर आक्रमण करने की तैयारियां अहमद खाँ ने भी कीं। पठानों की इस सैनिक चाल को असम्भव कर देने के लिए अलीकुली खाँ ने, जिसको शत्रु के आशय की सामायिक सूचना प्राप्त हो गई थी, यह निश्चय किया कि गढ़ के बाहर आकर खुले मैदान में रण हो। दूसरे ही दिन प्रभात में अली कुली खाँ, प्रताप नारायण, बक़ा उल्ला खाँ और राजेन्द्र गिरि ने अपने आदमियों को गढ़ के बाहर और पुराने शहर के पास एकत्रित किया और उनको सैनिक युयुत्सा में व्यवस्थित कर दिया। अपनी ओर से अहमद खाँ ने अपनी

* सियर III ८७६; खज़ाने अमीरह ८१; पेशवा दफ्तर संग्रह, जिल्द II, पत्र २६ और ३०।

सेना का अधिकांश भाग मन्सूर अली खां और शादी खां की आधीनता में शत्रु का सामना करने भेजा और कुछ देर पीछे उसने स्वयं उनका अनुसरण किया। तीन घन्टों की अग्नि वर्षा के बाद सेनाएँ पास पास आ गईं और पठान अग्रदल के नेता राजा प्रथी पति ने बका उल्ला खां के भाग पर प्रहार किया। मन्सूर अली खां जो राजा की सहायता के लिए आगे बढ़ रहा था, राजा के भी आगे निकल गया। दस्त बदस्त क्रूर युद्ध हुआ। बकाउल्ला खां के बहुत से सैनिक मारे गये। और वह पुल के पार वापस हो गया। इस विपर्यास पर भयभीत होकर गढ़ के अन्दर बन्दूकचियों ने अपने स्थान त्याग दिए और प्लायकों में सम्मिलित होने के लिए भाग निकले। राजेन्द्र गिरि और उसके मित्र भी अपने डेरों को वापस गये। विजयी पठानों ने रण स्थल पर अधिकार कर लिया, परन्तु चूँकि शत्रु ने पुल का दक्षिण अन्त तोड़ दिया था वे प्लायकों का पीछा न कर सके*

अब पूरे ५४ दिनों तक अवरोध चल चुका था† और उसकी सफल समाप्ति की कोई आशा अभी तक दिखाई न पड़ती थी। क्योंकि पुल पर शत्रु का अधिकार था, बाहर से रसद उसको उसकी आशा पर मिल सकती थी और गढ़ की सैनिक महत्वपूर्ण स्थिति उसको हस्तगत करने के प्रत्येक पठान प्रयास को विफल कर देती थी। इस बीच में संत्रासक आकस्मिकता के साथ समाचार प्राप्त हुआ कि एक भयानक मराठा दल लेकर सफदरजंग दिल्ली से चल चुका है और कोल (अलीगढ़) और जलेसर के फ़ौजदार शादिल खाँ पठान को परास्त कर भगा चुका है। अपनी पैतृक रियासत की रक्षा के प्रति चिन्ताग्रस्त होकर अहमद खाँ बंगश ने प्रथीपति की सलाह के विरुद्ध घेरा उठा लिया और अप्रैल १७५१ ई० के आरम्भ में द्रुत वेग से फ़र्रुखाबाद को वापस हो गया।

जौनपुर और बनारस में पठान विप्लव।

इलाहाबाद के विरुद्ध अपने प्रयाण के पहिले अहमद खाँ ने अपने

---

* ज-ए-सु-ब (१८७६) पृ०-८०-८१।

† हादिक १६८ और १५४; सियर III ८८१ कहता है कि यह चार मास तक चलता रहा। परन्तु मुझे मुर्तज़ा हुसैन की रूपान्तर कथा अपेक्षित है क्योंकि यह गढ़ में अपने मालिक प्रतापनारायण के साथ उपस्थित था।

एक सौतेले भाई मुहम्मद अमीन खाँ को गाज़ीपुर का फ़ौजदार, और अपनी पत्नियों में से एक के चचेरे भाई साहिब ज़माँ खां जौनपुरी को जौनपुर बनारस और चुनारगढ का फ़ौजदार नियुक्त किया था और उनको आज्ञा दी थी कि उन ज़िलों से सफदर जंग के अधिकारियों को निकाल दें और उनपर अविलम्ब अधिकार कर लें। बिना किसी प्रतिरोध के गाज़ीपुर ने पठानों की अधीनता स्वीकार कर ली। क्योंकि इसका फौजदार फज़्लेअली खाँ शत्रु के निकट आगमन की पहिली ही खबर पर भाग गया था। परन्तु अन्य तीन ज़िलों के शासक बलवन्तसिंह ने साहिबज़मां को वे ज़िले देने से इन्कार कर दिया। अतः अहमद खां ने जौनपुर को सैनिक सहायता भेजी और आज़मगढ़ के सरदार अकबर शाह और आज़मगढ़ से २३ मील उत्तर-पश्चिम में महोल के ज़मींदार शमशाद खां को आज्ञा दी कि बलवन्तसिंह को उसके प्रदेश से निकालने में साहिब ज़मां को सहयोग दें। फ़ैज़ाबाद से दक्षिण पूर्व ३१ मील दूर अकबरपुर में मित्रों ने अपनी सेनायें इकट्ठी कीं—१७०० सवार और १० हज़ार पैदल और अपनी छावनी के पास सुरहरपुर के गढ़ पर १५ दिन के घेरे के बाद अधिकार कर लिया। ६ घण्टों के नाम-मात्र प्रतिरोध के बाद जौनपुर भी उनके हाथ आ गया। इन सफलताओं को प्राप्त कर लेने पर भी साहिबज़मां अपने को राजा के समकक्ष न समझता था। अतः सीधे बनारस पर प्रयाण के स्थान पर वह जौनपुर से ३२ मील उत्तर-पूर्व में निज़ामाबाद को वापस गया। बलवन्तसिंह को, जो अपने पठान प्रतिस्पर्धी से उतना ही भयभीत था, अब अवसर मिल गया कि भविष्य के लिये कार्य की योजना निश्चित कर सके*।

इसके बाद जल्दी ही बलवन्त सिंह को समाचार मिले कि अहमद खां बंगश इलाहाबाद की ओर बढ़ रहा है। चूँकि परिवर्तित दशा में प्रतिरोध व्यर्थ था राजा ने लाल खां रिसालदार और रसूल खां बख्शी को अहमद खां के लिये भेंटें देकर भेजा। खां ने वकीलों का स्वागत किया और इस आशय की आज्ञा दी कि राजा स्वयं उसके शिविर में उपस्थित हो।

अतः बलवन्तसिंह इलाहाबाद को गया, अहमद खां को ए‌क लाख रुपये की भेंट दी और वह अपने प्रदेश के आधे हिस्से में स्थिर कर

---

* बलवन्त २७ ब और ब।

दिया गया। दूसरा भाग (गंगा के उत्तर का) साहिबज़मा खां के हाथ रहा। परन्तु जब वह बनारस वापस आया उसको मालूम हुआ कि बंगश सरदार की आंखें उसकी सारी रियासत पर लगी हुई थीं। और उसने वादा कर लिया था कि वह साहिब ज़मा खां को उसे (राजा को) बनारस से बाहर निकालने में मदद देगा। अतः वह क्रोध में अपने अफसर की टोह में था। इस बीच में उसने सुना कि अहमद खां ने इलाहाबाद का घेरा छोड़ दिया है और फ़र्रुखाबाद को वापस जा रहा है। अविलम्ब राजा बनारस के पास गंगापुर से चल पड़ा और जौनपुर से १२ मील दक्षिण पश्चिम में मरिशु पहुँचकर यह मांग रखी कि साहिब ज़मा खां उसके प्रदेश को खाली कर दे। निर्बल चित खान घबड़ा गया, उसने जवनपुर छोड़ दिया और गण्डक पार चम्पारन ज़िले को भाग गया। इस प्रकार बलवन्त सिंह ने बिना युद्ध के अपनी पूरी रियासत पुनः प्राप्त कर ली*।

अवध और इलाहाबाद का पठान विप्लव एक बड़े तूफान के समान था जो देश के एक छोर से दूसरे छोर तक फैल गया परन्तु जो इतनी ही जल्दी शांत होगया जितनी कि उठा था। फ़ैज़ाबाद और बनारस ऐसे थोड़े से ही कस्बे अपनी भाग्य से उस विपत् से बच गये थे जो लखनऊ और इलाहाबाद पर पड़ी थी। परन्तु इन कस्बों के नागरिक भी अस्थायी पठान प्रभुता के काल में भय की दशा में जीवन व्यतीत करते थे। मार्च १७५१ ई० के प्रारम्भ का एक मराठा पत्र एक कस्बे की स्थिति का वर्णन इन शब्दों में करता है :—"एक बड़े ब्रह्म भोज के बीच में बापू जी पन्त हिंने (दिल्ली में मराठी वकील) का पत्र आया जिसमें यह वर्णन था कि पठान इलाहाबाद पहुँच गये हैं, उन्होंने नए क़स्बे को लूट लिया है और औरतों को पकड़ कर ग़ुलाम बना लिया है। बनारस में भी बड़ी हलचल है। दो दिन तक उस तीर्थस्थान पर रोशनी न हुई। दस दिनों से यह भय ग्रस्त है। काशी से पटना तक का बैलगाड़ी का किराया बढ़ कर ८० रु० हो गया है। क़ुली अप्राप्य हैं। नागरिक क़स्बा छोड़ रहे हैं और जहां पर उन से बन पड़ता है भागे जा रहे हैं। इस पर पठान सरदार (साहिब ज़मा) ने सात मुख्य सेठों को परवाने भेजे हैं। जिनमें जनता के जान और माल की रक्षा की प्रतिज्ञा की है और यह भी कहा है—"मैं

*बलवन्त २७ ब-२६। सरदेसाई-पानीपत प्रकरण पृ० १३

बादशाह का नौकर हूँ। मैं प्रजा को तंग करने या क़स्बे को लूटने नहीं आया हूँ।" इस प्रकार उसने लोगों को शहर में ठहर जाने पर तैयार कर लिया। तब भी वे भयग्रस्त हैं। देखें भविष्य में ईश्वर क्या क्या दिखाता है*। जहां जहां पर पठानों ने लूटमार की थी उन जगहों की भाग्य की कल्पना नहीं की जा सकती है। दुआब का मराठा वकील गोविन्द पन्त बुन्देले अपने दो पत्रों में फरवरी १७५१ ई० के अन्त में भाऊ साहिब को समाचार भेजता है कि सारे दुआब और इलाहाबाद के प्रान्त में संभ्रम अराजकता की सीमा तक पहुँच गया है। उस प्रदेश में हर जगह सौदागरों ने दुकानें बन्द कर दी हैं, यातायात रुक गया है और व्यापार समाप्त हो गया है। लोग जंगल को भागे जा रहे हैं और चौथाई राजस्व भी वसूल नहीं किया जा सका है†। उन दोनों प्रान्तों के उन हिस्सों में जहां शत्रु नहीं पहुँच सका था, बड़े बड़े जमींदार सफदर जंग के विरुद्ध विद्रोह कर रहे थे। गोंडा के विरोन शासक, बलरामपुर के जनवार सरदार और कुछ अन्य राजपूत राजाओं ने बाराबंकी ज़िले के रामनगर के रायकवार राजा के नेतृत्व में एक संघ बना लिया और अवध के उत्तरी ज़िलों से नवाब वज़ीर के अफसरों को निकाल बाहर किया। तब वे लखनऊ की ओर चल पड़े जो अभी हाल में पठानों के हाथ से छीना गया था और जहां उस समय भी फ़ौज न थी। परन्तु घीर और बीर शेखज़ादों ने और महमूदाबाद और बिलहरा के मुसलमान खान्दानों ने उनका सामना किया‡। बाराबंकी के उत्तर पश्चिम में किसी स्थान पर अति भयंकर रुद्र रण हुआ जिसमें राजपूत पराजित हुये और बड़े संहार के बाद पीछे हटा दिये गये। बलरामपुर का राजा मारा गया, रायकवार शक्ति छिन्न हो गई और उस तारीख़ से महमूदाबाद प्रसिद्ध होने लगा‡‡।

---

* राजवाड़े III ३७६ ; सरदेसाई के पानीपत प्रकरण पृ० ११ में भी उद्धरित। इमाद ५० बनारस के मुख्य सेठ रास्ते में ही पठान सेनापति साहिब ज़मा से मिले और उस पवित्र स्थान को उसके आगमन से ७ लाख रुपया देने का वादा करके बचा लिया।

† पेशवा दफ़्तर संग्रह जिल्द II-पत्र-नं०-२६-३०।

‡ महमूदाबाद-ज़िला सीतापुर में और तहसील फतहपुर से ११ मील उत्तर-पश्चिम में है। बिलहरा बाराबंकी ज़िले में है और महमूदाबाद से ८ मील दक्षिण पूर्व में है।

‡‡ बाराबंकी का ज़िला गज़ेटियर (१६०४ ई०) पृ०-१६२।

अध्याय १५

द्वितीय पठान युद्ध और तत्पश्चात
१७५१–५२ ई०

सफ़दरजंग अपनी सहायता के लिये मराठों को आमन्त्रित करता है।

अपनी वापसी के तुरन्त से सफ़दरजंग का चित्त सर्वथा इस विचार पर एकत्रित था कि पराजय के कलंक को कैसे मिटाया जाये। अपने अपमान को वह इतनी तीव्रता से अनुभव करता था कि अपना अधिकांश समय अपने ही कमरे में सिर झुकाये हुये व्यतीत करता था। परन्तु सदरुन्निसा ने उसको धैर्य दिया और सच्ची पति भक्ति से अपना सारा संचित धन उसकी सेवा में अर्पित कर दिया*। अब वज़ीर ने इस्माईलबेग ख़ाँ, राजा लक्ष्मीनारायण, राजा नागरमल, सूरजमल, सियर के लेखक के चाचा अब्दुल अलीख़ाँ और अन्य अपने अफ़सरों और मित्रों को आमन्त्रित किया और उनकी सलाह से अपनी सहायता पर मराठों को बुलाने का निश्चय किया। पठानों के प्रति गुप्त सहानुभूति के कारण बादशाह और तूरानी सामन्तों ने उसके मार्ग में विघ्न बाधा उपस्थित करने का प्रयत्न किया। और अहमदख़ां बंगश ने पूरे छलकपट से, जो १८ वीं शती के [illegible] शासकों में स्वभाववशात होते थे, अहमादशाह को याचना पत्र भेंट किया जिसमें अपने कृत्यों के लिये उसने राजकीय क्षमा की प्रार्थना की। [illegible] बुद्धि बादशाह ने ख़ान को क्षमा की आशा दिलाई और [illegible] लाहौर से और नासिरजंग को दक्षिण से आमन्त्रित किया [illegible] मदद से अपनी सत्ता को पुनः प्राप्त करने के वज़ीर के [illegible] होने दें†। परन्तु अपने ही प्रान्तों के कष्टों से उनको [illegible]

---

* इमाद ५१ उसने १ लाख १० हज़ार रुपये [illegible] कियाँ दीं।

† पेशवा दफ़्तर संग्रह जिल्द II, पत्र नं० [illegible] लेखक कहते हैं कि अहमदख़ां ने कोई [illegible] की ओर ख़ान की प्रगति से भयभीत होकर [illegible]

अहमदशाह की योजना सफल न हुई। अब वज़ीर अहमदखां बंगश के विरुद्ध एक नये अभियान की विशाल तैयारियां करने लगा। और उसने मराठा सरदारों मल्हरराव होल्कर और जयप्पा सिन्धिया को बार बार पत्र लिखे कि शीघ्र ही उसकी सहायता पर आजायें। जब ये दक्षिण से अपने मार्ग पर राजस्थान पहुँच गये, सफदरजंग ने अपने दीवान राजा रामनारायण को और दरबार में अलीवर्दीखां के वकील राजा जुगुलकिशोर को भेजा कि उनको दिल्ली ले आयें। कोटा के पास राजाओं की मराठों से भेंट हुई* और फर्वरी के अन्त के समीप वे सब शाही नगर की ओर चल पड़े। उनके निकट आगमन पर २१ फर्वरी को वज़ीर ने बादशाह से प्रस्थान की विधिवत् आज्ञा ली और अपने अग्र डेरों में प्रवेश किया जो दिल्ली के बाहर नदी तट पर लगे थे। २८ को वह आगे बढ़ा और किशनदास के तालाब के पास छावनी डाली। यहां पर २ मार्च को मल्हरराव होल्कर उससे मिला† और दोनों में विधिपूर्वक सन्धि होगई। इस सन्धि के अनुसार होल्कर और सिन्धिया ने २५ हज़ार रुपया दैनिक भत्ता पर वज़ीर को उसके फर्रुखाबाद अभियान पर सहायता देने का वचन दिया।

भारतीय इतिहास के इस काल के सभी इतिहास कारों ने—एल्फिन्स्टन से इर्विन तक—सफदरजंग की निन्दा की है कि उसने 'मराठों को आमन्त्रण देने के अपमानजनक सामयिक साधन का आश्रय' लिया और

सम्मान वस्त्र, एक तलवार, एक हाथी, एक घोड़ा और अन्य भेंटें भेजीं और साथ में एक क्षमात्मक फर्मान जिसमें कहा गया था कि जो युद्ध हुआ था वह वज़ीर का किया हुआ था, न कि उसका, इन वस्तुओं के प्राप्त होने पर खान फर्रुखाबाद को वापस गया। देखो ज० ए० सु० बं० (१८७६) पृ० ७५-७६।

* संग्रह आदि जिल्द II पत्र नं० २८; ता० अहमदशाही २८ अ; इमाद ५७; रामनारायण के स्थान पर लक्ष्मीनारायण शिफर ने ग़लती से दिया है।

† सरदेसाई पानीपत प्रकरण पृ० ६ ग़लत तारीख देता है—१७५०। मार्च १७५१ ई० के पहिले होल्कर और सिन्धिया दिल्ली नहीं पहुँचे थे क्योंकि शाहू की बीमारी और मृत्यु के कारण एक वर्ष से अधिक वे दक्षिण में ही रहे।

उनकी सहायता से फ़र्रुखाबाद और रुहेलखंड के पठानों को कुचल दिया‡। परन्तु आधुनिक विद्यार्थी को, जिसको मराठी और फ़ारसी समकालीन ग्रन्थ उपलब्ध हों, ऐसा प्रतीत होता है कि वस्तुस्थिति की पूर्ण उपेक्षा में यह धारणा बनाई गई है। पुनरुक्ति के दोष पर भी यहां यह व्याख्या होना चाहिये कि रुहेला और बंगश पठान अफ़ग़ानिस्तान के अब्दाली आक्रान्ता से देशद्रोही मित्र सम्बन्ध रखते थे। अगले दस वर्षों का इतिहास इसका स्पष्ट प्रमाण है कि जब कभी हिन्दुस्तान में उसके पठान भाई अपने शत्रुओं द्वारा सपीड़ित किये जाते, वह उत्तर भारत के मैदानों पर झपट लगाता केवल उनकी रक्षा करने के लिये नहीं, परन्तु इसलिये कि उनको मदद दे कि वे भारत में पठान प्रभुता के अपने स्वप्न को कार्यान्वित करने में सफल हों। तूरानी सामन्त, केवल जोड़ी मुस्लिम सरदारों में शक्तिशाली थे, (क्योंकि अलीवर्दीखाँ का दरबार की राजनीति से कोई सम्बन्ध न था) वज़ीर के पक्के शत्रु थे और पठान विद्रोहियों से गुप्त सहानुभूति रखते थे। अतः सफ़दरजंग या यह सहन करता कि पठान मुग़ल एकाधिपत्य का और अवध और इलाहाबाद के उसके प्रान्तों का और साथ में उसके पद का भी अपहरण कर लें या मराठों की सहायता से, केवल जिनसे ही यह सम्भव था, उनको कुचल डाले। वास्तव में दो अपकारकों में से एक को उसे अपनाना था—एक विदेशी आक्रान्ता जिसकी सहायता पूर घर के शत्रु हों और वंश परम्परा गत स्वार्थी विद्रोही जिनकी गति कुछ वर्षों से स्पष्टतया राज्यानुकूल थी और जो १७४७ ई० से उसके अपने मित्र थे*।

यह दोषारोपण कि वह प्रथम मुस्लिम सामन्त है जिसने घरेलू झगड़े के निपटाने के लिये सक्रिय मराठा हस्तक्षेप को आमन्त्रित किया—सत्य की कसौटी पर ठीक नहीं उतरता है। सर्वसाधारण को ज्ञात है कि सैयद हुसेन अली खाँ १७१९ ई० में मराठों को दिल्ली लाया कि फ़र्रुखसियर

---

‡ एल्फिन्स्टन का भारतवर्ष का इतिहास (छठा संस्करण) पृ० ७३९। वेवरिज-भारत का बृहत् इतिहास, जिल्द १, पृ० ४०३। इर्विन ज० ए० सु० बं० (१८७९) पृ० ८५।

† पर्वे आदि पत्र नं० ८३ और पृ० ८६; राजवाडे III, १६०।

* पेशवा दफ़्तर संग्रह जिल्द II पत्र २,४,६ और १३। पर्वेनयादि आदि पत्र नं० ७६।

को राज्यच्युत करने में उसकी सहायता करें—और यह भी ज्ञात है कि दिसम्बर १७३२ ई० में निज़ामुल्मुल्क ने बाजीराव से गुप्त सन्धि कर ली थी और उत्तर भारत में मुग़ल प्रदेशों पर आक्रमण करने के लिये उनको प्रोत्साहित किया था। तब भी सफदर जंग का क़दम उत्साह पूर्ण था। मराठे उसके परम्परागत शत्रु थे। उसके ससुर सआदत खां ने क़रीब १२ वर्ष तक उनका दृढ़ता से विरोध किया था और उसके साथ में सफदर जंग उनसे कई लड़ाइयाँ लड़ चुका था। फरवरी १७४४ ई० में वह एक अभागी घटना के कारण पेशवा से क़रीब-क़रीब एक युद्ध में फँस गया था। मराठा वकील महादेव भट्ट हिंगने ने शाही दरबार में पेशवा के प्रतिनिधि के रूप में अपने मुख्य कार्य के अतिरिक्त जयपुर रियासत की वकालत भी स्वीकृत कर ली थी और अपनी नयी स्थिति में सफ़दर जंग से मिला कि कछवाहा शासक परिवार से सम्बन्धित कुछ विषयों पर बात चीत कर उनको ठीक कर ले। वाद-विवाद में महादेव ने सफ़दर जंग के प्रति अपशब्द कहे और अपने अनुचरों को आज्ञा दी कि उसको पकड़ लें। इससे दोनों दलों में झगड़ा हो गया जिसमें महादेव के प्राण घातक घाव लगे। उसका पुत्र भी घायल हुआ और दोनों को उठा कर उनके निवास-स्थान को पहुँचा दिया गया। आधी रात को महादेव मर गया, परन्तु उसका पुत्र सौभाग्य से अच्छा हो गया।[1] सफदर जंग में पर्याप्त नीतिज्ञता थी कि वह पुराने वैर भाव को भूल जाये और उत्तर भारत की राजनीति में जो भाग मराठे सम्भवतया लेने वाले थे उसको पहिचान ले।

शादिल खां की पराजय और उसका पलायन-मार्च १७५१ ई०

जब सारा आवश्यक प्रबन्ध पूरा हो गया और सफदर जंग को राजा सूरज मल और उसके जाटों की सेवायें पुनः नये रूप में १५ हज़ार रु० दैनिक भत्ता पर प्राप्त हो गईं, उसने मार्च १७५१ ई० के दूसरे सप्ताह के करीब दिल्ली से प्रस्थान किया। दिल्ली दरबार में अपना प्रतिनिधित्व करने के लिये उसने अपने पुत्र जलालुद्दीन हैदर को नायब वज़ीर के रूप में रख दिया। आगरा पहुँच कर उसने २० हज़ार फुर्तीले मराठा सवारों को शादिल खां के विरुद्ध भेज दिया जो अलीगढ़ से पटियाली तक विस्तृत प्रदेश का फ़ौजदार था जो रामछटौनी में वज़ीर की पराजय के बाद पठान शासन के अन्तर्गत हुआ था। इन सैनिकों ने यमुना को पार किया और

[1] पुरन्दरे दफ़्तर जिल्द I, पत्र १५४।

मार्च के अन्तिम सप्ताह में इटावा से ३० मील उत्तर-पश्चिम में क़ादिरगंज के पास किसी स्थान पर शादिल खां पर अकस्मात् आक्रमण किया। उसके पास ४ हज़ार सवार और ४ हज़ार पैदल से अधिक सेना न थी। खान पराजित हुआ और घोर संहार के बाद भगा दिया गया। विजेताओं ने प्लायकों का पीछा किया और बहुतों को बन्दी बना लिया। परन्तु उनमें अधिकांश—शादिल खां के साथ—अपने पीछा करने वालों से सफलता पूर्वक भाग बचे और गंगा पार बदायूँ जिला को भाग गये। मराठों को बहुत सा लूट का माल, अगणित घोड़े और बहुत से हाथी मिले*।

फ़तेहगढ़ का घेरा— अप्रेल १७५१ ई०

शादिल खां की पराजय और पलायन का समाचार पाकर अहमद खाँ बंगश ने इलाहाबाद का घेरा हटा लिया और शीघ्रता से फ़र्रुखाबाद को वापस हुआ जहाँ वह ६ दिन में पहुंच गया। अधिकांश स्वार्थी सैनिक जो उसकी विजय-पताकाओं के नीचे तुच्छ मान पूर्व झुण्ड के झुण्ड इकट्ठे हो गये थे, प्रत्येक दिशा में तितर-बितर हो गये। उसने अपने परिवार और आश्रयी वर्ग को रुहेला प्रदेश में भेज दिया और अपनी राजधानी को अरक्ष्य अनुभव कर वह शेष सेना सहित हुसैनपुर को पीछे हट गया जो अत्यन्त सैनिक महत्व का स्थान था और जहाँ गंगा के दक्षिण तट पर फ़र्रुखाबाद से करीब ३ मील दक्षिण-पूर्व में फ़तेहगढ़ नामक छोटा परन्तु मज़बूत दुर्ग था। यहाँ गढ़ के चारों ओर कन्दराओं में उसने अपनी रक्षा-परिखा खड़ी कर दी। उसने अपना मुख्य स्थान गंगा तट पर बनाया, समीपवर्ती देश से सामग्री प्राप्ति कर अपना अधिकार रखने के लिये उसने नदी पर नावों का पुल बाँध दिया और कन्दराओं के ऊपर मज़बूत जञ्जीरों से परस्पर बाँध कर उसने अपनी तोपें लगा दीं। अवध से महमूद खाँ और क़ादिरगंज से ५ मील पर क़ादिर चौक में अपने शरण-स्थान से शादिल खाँ जल्दी से बाद में पहुंच गये और नदी के वाम पक्ष पर वे शिविरस्थ हुये।

अहमद खां के फ़र्रुखाबाद में पहुंचने से कुछ ही पहिले वज़ीर ने गंगाधर तातिया के नेतृत्व में एक मराठा दल भेजा था कि मार्ग में खान को रोक दे उसकी खाने-पीने की सामग्री और जल को काट दे। यथा

*पेशवा दफ़्तर संग्रह–II पत्र नं० ३२, XXVI. १७६; पत्रेयादि आदि–पत्र नं० ७६; सियर III ८८१।

स्वभाव मराठे गाँवों को लूटने और जलाने के निर्दयी कार्य में जुट गये और फ़र्रुखाबाद पहुँच कर देखा कि क़स्बा खाली हो गया है। अतः वे फ़तेहगढ़ की ओर बढ़े और उससे कुछ मील उत्तर-पश्चिम में उन्होंने अपनी छावनी डाली। यह सूचना पाकर कि फ़तेहगढ़ से ३ मील दक्षिण याक़ूतगंज में पठानों ने अपनी कुछ बड़ी तोपें छोड़ दी थीं, गंगाधर ने अपने कुछ आदमी भेजे कि उनको छावनी तक खींच लायें। अहमद खाँ की रक्षा-परिखा से आधा मील दक्षिण-पश्चिम में क़ायमबाग़ के पास तोपें लिये हुये जैसे ही मराठे प्रगट हुये, पठान उन पर टूट पड़े, तोपों को छीन लिया और उनको उनकी छावनी की ओर वापस भगा दिया। इस पर गंगाधर स्वयं अपनी सेना के मुख्य भाग सहित आ गया, परन्तु उसका भी भाग्य वही रहा*।

इस बीच में मराठा और जाट सहायकों सहित नवाब वज़ीर फ़तेहगढ़ के पास आ पहुँचा। उसने मल्हरराव होल्कर और जयप्पा सिन्धिया को क़ायमबाग़ पर नियोजित किया और स्वयं दक्षिण की ओर आगे बढ़ कर पठान परिखा के क़रीब १० मील दक्षिण में गंगा के दक्षिण तट पर सिघीराम के घाट पर उसने छावनी डाली। अहमद खाँ बंगश इस प्रकार उत्तर, पश्चिम और दक्षिण से घिर गया। प्रत्येक दिन प्रातः से सायं तक तोपों का युद्ध होता। कभी मराठे शत्रु से व्यक्तिगत युद्ध करते, कभी वज़ीर अपने कुछ मुग़लों को उनकी सहायतार्थ भेजता। इन भिड़न्तों में काफ़ी दिन व्यतीत हो गये और तब भी उस पर कोई प्रभाव न पड़ सका क्योंकि अहमद खाँ को नदी की दूसरी ओर से बराबर सामग्री प्राप्त होती रहती, सफ़दर जंग यह समझ गया और उसने निश्चय किया कि गंगा के उत्तर के देश से शत्रु का उद्गम काट दे। अतः उसने सैयद नूरुलहसन खाँ बिलग्रामी को आज्ञा दी कि नावें इकट्ठा करे और सिघीरामपुर के पास गंगा पर पुल बना दे। सब दिशाओं से आक्रमण का भय करके अहमद खाँ बंगश ने अपने पुत्र महमूद खाँ को इस कार्य पर भेजा कि पुल का निर्माण रोक दे। उसने सिघीरामपुर के सामने नदी के बायें तट पर अपना स्थान ग्रहण किया और नूरुलहसन के कार्य की प्रगति रोकने का प्रत्येक प्रयास किया। परन्तु यह तोपों की अग्नि की रक्षा में निरन्तर चलता रहा और २७ अप्रेल को पुल तैयार हो गया। घेरा पड़े

*ज० ए० सु० बं० (१८७६), ६०।

अब पूरे २५ दिन हो गये थे* ।

पठानों की पराजय और उनका पलायन २८ अप्रल १७५१ ई०

अहमदखाँ बंगश की सहायता के लिये प्रार्थना के उत्तर में रुहेलखंड का शासक सादुल्लाखाँ रुहेला १२ हज़ार वीर सैनिक लेकर उसी दिन पहुँचा जब पुल पूरा हो गया था और फतेहगढ़ के सामने नदी के बायें तट पर उसने छावनी डाली। एक जोशीले रुहेला कमान्डर बहादुरखाँ की सलाह पर जो उसके फतेहगढ़ पहुचने में सहायक हुआ था, सादुल्लाखाँ ने अहमदखाँ को गर्वित सन्देश भेजा कि वह अगले ही दिन नदी को पार कर लेगा और वह अपने साथ वज़ीर, सूरजमल जाट और मराठा सरदारों के सिरों को भारतीय पठानों के सरदार की सेवा में भेंट की रूप में लायेगा*। २८अप्रेल १७५१ ई० को जब सूर्य उदय हुआ† रुहेले रण के लिये तैयार हो गये। महमूदखाँ और मुनव्वरखाँ रुहेलों के साथ होगये। वे सब मिला कर ३० हज़ार योधा थे‡ ।

अहमदखां के सैनिकों के मुख्यदल से जो अभी तक फ़तेहगढ़ पर पड़ा हुआ था, रुहेलों के समिलन को रोकने के लिये सफ़दरजंग ने मराठा दल के एक भाग को गंगाधर यशवन्त के नेतृत्व में, जाटों को सूरजमल के पुत्र जवाहरसिंह के नेतृत्व में और कुछ अपने मुग़लों को सिंघीरामपुर के पुल के पार शीघ्रता से भेजा कि सादुल्लाखां पर आक्रमण करें जब कि उसकी

---

*पत्रेयदि आदि–पत्र न० ८३; सियर III ८८२।

* इर्विन, ज. ए. सु. बं. (१८७६) पृ० ६१; इमाद पृ० ५८ कहता है कि क़ायमख़ाँ की मृत्यु के कारण पारस्परिक वंश वैमनस्य के आधार पर सहायता देने के बंगश आमन्त्रण को पहिले पहल रुहेला ने तिरस्कृत कर दिया था। परन्तु जब अहमदखां ने क़ायम के रक्त को उपहार में दिया वह सम्मिलित होने पर सहमत होगया।

†शुद्ध दिनाङ्क ३ जमादी द्वितीय ११६४ हि. है (२८ अप्रेल १७५१ ई० न० शै०) देखो पत्रेयदि आदि पत्र न० ७६ और पृ० ८७; सियर III ८८२। पत्रेयदि आदि के पत्र न० ८३ में पेशवा द्वारा दी हुई १ जमादी द्वितीय उसके पास जयाप्पा के पत्र प्रेषण के दिनांक के रूप में अशुद्ध है। अशुद्धि का कारण या तो छापे की ग़लती है या लेखक की भूल।

‡पत्रेयदि आदि, पत्र नं० ८३; इमाद की संख्या डेढ़ लाख (पृ० ५८) स्पष्ट अतिशयोक्ति है।

अपनी सेना का मुख्य भाग अपनी ही जगह पर पड़ा रहा कि बंगश सैनिकों पर सतर्क दृष्टि रखे। दोनों ओर से हवाइयों और बन्दूकों की मार से रण प्रारम्भ हुआ। जब अग्नि वर्षा कुछ कम पड़ गई पठानों ने तलवारें निकाल कर शत्रु पर हमला किया। यथा स्वभाव मराठे शनैः शनैः पीछे हटे और बहादुरखां को, जो रुहेला अग्रदल का नेता था, रणक्षेत्र से कुछ दूर विलोभित करते गये। निश्चिन्त खां ने पीछे हटते हुये शत्रु का उत्साह से पीछा किया और इस प्रकार सादुल्लाखां के अधीन अपने सैनिकों के मुख्य भाग से अलग हो गया। इस संकट के क्षण पर एक ओर से मराठों ने उस पर आक्रमण किया और दूसरी ओर से जाटों ने निरन्तर अग्नि वर्षा की। बहादुरखां पूरी तरह दब गया और उसके अधिकांश वीर अनुचर मारे गये। वह अत्यन्त साहस से लड़ा परन्तु निश्चिन्त वीरता और शान्त दृढ़ साहस संख्या की न्यूनता को पूरा न कर सके। १०-१२ हज़ार पठानों के साथ वह मारा गया। यह देखकर सादुल्लाखां हिम्मत हार गया और आँवला की ओर भाग निकला जहाँ पर अगले दिन बिना एक सेवक के वह पहुँचा। महमूदखां और मुनव्वर खाँ भी भयभीत हो गये। उन्होंने जल्दी से गंगा को पार किया और फ़तेहगढ़ पर सूर्यास्त के क़रीब १ घण्टा पहिले अहमदखां से जा मिले। विजेताओं ने बहुत से बन्दी पकड़े, बहुत सा बहुमूल्य लूट का माल प्राप्त किया और बहुत से हाथी और कई हज़ार घोड़े भी पकड़ लिये।

इस विपत् के समाचार से बंगश सैनिकों के हृदयों में निराशा और भय प्रविष्ट हो गये। उनको पुनः विश्वास दिलाने और प्रोत्साहित करने अहमदखाँ स्वयं अपनी सब तोपमिसियों को गया, उनसे सतर्क रहने की प्रार्थना की और प्रतिज्ञा की कि प्रभात-पूर्व ही वह शत्रु पर अचानक हमला करेगा। परन्तु यह व्यर्थ सिद्ध हुआ। सन्ध्या के तीन घण्टे पीछे मराठों ने, जिन्होंने गंगा के उत्तरी तट पर अधिकार कर लिया था, सादुल्लाखाँ के सामान में आग लगादी और भीषण ज्वलन का प्रकाश फ़तेहगढ़ तक पहुँचा। इस दृश्य पर भयातुर होकर पठानों ने अपने नेता से आग्रह किया कि वह पलायन की शरण ले। मृत्यु या पलायन के अतिरिक्त और कोई मार्ग खुला न देखकर अहमदखाँ ने २८ अप्रेल की रात्रि में गंगा के दक्षिण तट पर कूच की और अपना अपयान प्रारम्भ किया। प्रभात पूर्व सतर्क मराठे उसके पृष्ठ-दल पर पहुँच गये। कुछ पठानों पर

हमले हुये और वे मार डाले गये, कुछ नदी पार करने के प्रयास की शीघ्रता में डूब कर मर गये। परन्तु अहमदखाँ, उसके पुत्र और बन्धुओं सहित अधिकाँश सकुशल नदी पार हो गये। वे शाहजहाँपुर को भाग गये, वहाँ से आँवला को पीछे हट गये कि सादुल्लाखाँ की शरण लें।

अहमदखाँ के पलायन के कुछ घण्टों बाद तोपभित्तियों पर नियोजित उसके पठान सैनिकों ने यह संतंभित करने वाला समाचार सुना। बिना अपने मित्रों की चिन्ता किये हुये जिससे जहां बना भाग गया। कुछ ने गंगा पार करने का प्रयत्न किया, अन्यों ने नदी के रवपथ के गुल्मों में अपने को छुपा लिया। मराठे उन पर टूट पड़े, उनका सारा सामान लूट लिया, उनके झुन्डों को मार गिराया और असंख्य बन्दी बनाये। जो निराशा में नदी में कूद पड़े थे उनमें से अधिकाश डूब कर मर गये। असंख्य घोड़े और ऊँट, बहुत से हाथी और बहुमूल्य सामान और उपस्कर दक्षिणियों के हाथ लगे*।

इस विजय के महत्व को गोविन्द पन्त ने निम्न प्रकार सक्षेप में वर्णन किया है "पठान पराजित हो गये हैं। अब देश की दशा सुधर जायेगी। यद्यपि वे कुचल न डाले जाते तो देश के उस भाग से हमारा नियंत्रण उठ जाता और ज़मींदार भी पठानों से मिल जाते। पठानों की महत्व आकांक्षा साम्राज्य पर अधिकार कर लेने की थी। यद्यपि वे इसमें असफल होते, वे बादशाह के शरीर पर अधिकार कर लेना चाहते थे। वज़ीर को मार कर वे वज़ीर, दीवान और बख्शी के आसनों का अपहरण करना चाहते थे। यह उनकी चिर उपासित महत्वाकांक्षा थी"†।

---

* पत्रेयदि आदि—पत्र नं० ७६, ८२ और ८३; ता० अहमदशाही २८ अ; सियर III, ८८२; गुलिस्ताँ ४०-४१; हादिक़-१७५; म० उ० III-७७३-७४; ज० ए० सु० बं० (१८७६) पृ० ६७-६८। सियर, त० म० और म० उ० का विचार ग़लत है कि अहमद खां रण में उपस्थित था।

†राजवाड़े III १६०। जयाप्पा सिन्धिया को ३१ मई १७५१ ई० के पेशवा के पत्र में सदरय भावना झलकती है। वह लिखता है—"आपका साहस, धीरता और दरनम सदरय पराक्रम धन्य है और आपके सैनिकों का पराक्रम धन्य है। यह कोई साधारण बात नहीं है कि हमारी दक्षिण की सेनाओं ने यमुना और गंगा को पार कर लिया, पठानों और रुहेलों से उन्होंने युद्ध किया और उन पर विजयी हुए। आप राज भक्त

अवध और इलाहाबाद में पठानों के अन्याय पर बदले की प्यास से झुलसते हुए विजेताओं ने बंगश प्रदेश को अग्नि और असि द्वारा विनष्ट कर दिया। जब वैर शुद्धि पूरी हो गई नवाब वज़ीर ने विजित प्रदेश पर अधिकार स्थापना का प्रबन्ध किया, फ़र्रुख़ाबाद, मऊ, क़ायमगञ्ज और क़न्नौज में उसने सैनिक दल रख दिये और प्रदेश के सब परगनों में उसने पुलिस और माल के अफ़सर नियुक्त कर दिये। इसमें एक मास से अधिक लग गया और १७५१ ई० की वर्षा-ऋतु समीप आ गई। आगामी चार मास तक युद्ध के असम्भव हो जाने से सफ़दर जंग ने अपने प्रान्तों में, जो उस समय राजक्रान्ति की वेदना से पीड़ित थे, सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए, लखनऊ की ओर प्रस्थान किया और मराठे अपनी जगहों पर छावनी डाले पड़े रहे।

अपने प्रदेश को पुन प्राप्त करने का अहमद खां का प्रयत्न।

जब वज़ीर और उसके मित्र विनाश के कार्य में व्यस्त थे अ..द खाँ और सादुल्ला खां तुरन्त मारपाक के भय से कमाऊँ की पहाड़ियों को भागे जा रहे थे। वे मुरादाबाद के आगे नहीं गये थे जब वज़ीर के लखनऊ प्रस्थान का शुभ सन्देश उनको मिला। अतः वे आँवला को वापस आये और शत्रु द्वारा बिना किसी विघ्न बाधा के उन्होंने वर्षा-ऋतु के चार मास वहाँ व्यतीत किये†।

जब वर्षा-ऋतु लगभग समाप्त हो गई और पठानों ने देखा कि उनके शत्रु अभी तक बिखरे हुए थे और तैयार न थे, उन्होंने निश्चय किया कि अपनी पैतृक भूमि को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करें। रुहेलों की सहायता से अहमद खां के आदमियों ने रामगंगा पर पुल बाँध लिया और तैयारियाँ कीं कि नदी पार कर पुनः अपने पहिले के प्रदेश को पहुँच जायें। पठानों की हलचल की सूचना पाकर मराठों ने, जिन्होंने अपनी

सेवक हैं, राष्ट्र के स्तंभ हैं और जो प्राप्त करना चाहते हैं तुरन्त कर लेते हैं। ईरान और तूरान (मध्यएशिया) तक यह समाचार फैल गया था कि वज़ीर का पतन हो गया है। आपने उसको पुनः स्थापित कर दिया है। इस से बढ़ कर और क्या हो सकता है!" पत्रं यदि आदि-पत्र न० ८६।

† गुलिस्ताँ ४१।

तोपें कालपी भेज दी थीं‡ और अपनी सेना को भी बिखेर दिया था, मल्हर राव होल्कर के पुत्र खाँडेराव को शत्रु को भगाने के लिये भेजा। डूँडे खां के पठानों ने खाँडेराव को नदी पर उस जगह बुरी तरह पकड़ लिया जहां पर वह अर्धवृत्ताकार में बहती थी। परन्तु उसको उपयान की अनुमति दे दी गई—सम्भवतया इस कारण से कि अहमद खाँ मराठों की सद्भावना प्राप्त करने का इच्छुक था। पठानों ने अब उसका पीछा किया—इस उद्देश्य से कि सिंघी रामपुर पर गंगा को पार कर लें और मल्हर राव पर आक्रमण करें जो मुट्ठी भर मराठा सैनिक लिये नदी के दूसरे तट पर पड़ा था। अतः दोनों ओर से दूर की अग्नि वर्षा आरम्भ हुई और एक सप्ताह तक चलती रही। इस बीच में अपनी रसद के कम पड़ जाने से अहमद खाँ ने नदी के बाईं ओर इस उद्देश्य से प्रयाण किया कि नजीब खाँ रुहेला से जा मिले, जो नया सामान और नये सैनिक लेकर उसकी सहायता पर आ रहा था, कि फर्रुखाबाद से क़रीब ३० मील उत्तर सूरजपुर के घाट पर गंगा को पार करें, और यह कि मराठों पर अकस्मात् आक्रमण करे।

बगश उद्योगिता की सूचना पाकर सफ़दर जंग ने फर्रुखाबाद से ४० मील नीचे महदी घाट पर गंगा को पार किया और २५ नवम्बर १७५१ई० को सिंघीरामपुर में मल्हर राव होल्कर के साथ जा मिला पहिले इसके कि मराठों पर आकस्मिक आक्रमण की अपनी योजना को पठान कार्यान्वित कर सकें। वज़ीर के आगमन से उसके शत्रुओं के हृदय में नयी शक्ति का संचार हो गया। सिंघीराम पुर से २८ मील ऊपर *अरौल पर मित्रों ने जल्दी से नावों का पुल नदी पर बाँध दिया और २५ हज़ार फुर्तीले मराठा सवार नदी पार भेज दिये। रुहेले भयग्रस्त होगये और उन्होंने आँवला की ओर जल्दी में अपयान किया। अहमद खाँ और उसके जाति भाई जल्दी से उनमें शामिल हो गये। मराठों और मुग़लों ने उनको राह में आ घेरा और भयंकर संग्राम हुआ जिसमें दोनों पक्षों की भारी हानि हुई। पठानों का हाल बहुत ही बुरा रहा परन्तु वे आँवला को भाग बचने में सफल हुये*।

पठान पहाड़ियों में पवरोधित

आँवला में अपने आगमन के १२ घण्टों के अन्दर ही रुहेलों ने अपने

‡ राजवाड़े III ३८४।

* ज०ए०सु०बं० (१८७६) पृ० १०४-१०६; ता० ग्रहमदशाही ८२ ब।

अवध और इलाहाबाद में पठानों के अन्याय पर बदले की प्यास से झुलसते हुए विजेताओं ने बंगश प्रदेश को अग्नि और असि द्वारा विनष्ट कर दिया। जब वैर शुद्धि पूरी हो गई नवाब वज़ीर ने विजित प्रदेश पर अधिकार स्थापना का प्रबन्ध किया, फर्रुखाबाद, मऊ, क़ायमगञ्ज और क़न्नौज में उसने सैनिक दल रख दिये और प्रदेश के सब परगनों में उसने पुलिस और माल के अफ़सर नियुक्त कर दिये। इसमें एक मास से अधिक लग गया और १७५१ ई० की वर्षा-ऋतु समीप आ गई। आगामी चार मास तक युद्ध के असम्भव हो जाने से सफदर जंग ने अपने प्रान्तों में, जो उस समय राजक्रान्ति की वेदना से पीड़ित थे, सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए, लखनऊ की ओर प्रस्थान किया और मराठे अपनी जगहों पर छावनी डाले पड़े रहे।

अपने प्रदेश को पुन प्राप्त करने का अहमद खा का प्रयत्न।

जब वज़ीर और उसके मित्र विनाश के कार्य में व्यस्त थे अ...द खाँ और सादुल्ला खां तुरन्त मार्गण के भय से कमाऊँ की पहाड़ियों को भागे जा रहे थे। वे मुरादाबाद के आगे नहीं गये थे जब वज़ीर के लखनऊ प्रस्थान का शुभ सन्देश उनको मिला। अतः वे आँवला को वापस आये और शत्रु द्वारा बिना किसी विघ्न बाधा के उन्होंने वर्षा-ऋतु के चार मास वहाँ व्यतीत किये†।

जब वर्षा-ऋतु लगभग समाप्त हो गई और पठानों ने देखा कि उनके शत्रु अभी तक बिखरे हुए थे और तैयार न थे, उन्होंने निश्चय किया कि अपनी पैतृक भूमि को पुनः प्राप्त करने का प्रयास करें। रुहेलों की सहायता से अहमद खां के आदमियों ने रामगंगा पर पुल बाँध लिया और तैयारियाँ कीं कि नदी पार कर पुनः अपने पहिले के प्रदेश को पहुँच जायें। पठानों की हलचल की सूचना पाकर मराठों ने, जिन्होंने अपनी

सेवक हैं, राष्ट्र के स्तंभ हैं और जो आप करना चाहते हैं तुरन्त कर लेते हैं। ईरान और तूरान (मध्यएशिया) तक यह समाचार फैल गया था कि वज़ीर का पतन हो गया है। आपने उसको पुनः स्थापित कर दिया है। इस से बढ़ कर और क्या हो सकता है?।" पर्वेयदि आदि-पत्र न० ७६।

† गुलिस्ताँ ४१।

तोपें कालरी भेज दी थीं‡ और अपनी सेना को भी बिखेर दिया था, मल्हर राव होल्कर के पुत्र खाँडेराव को शत्रु को भगाने के लिये भेजा। दूँदे खां के पठानों ने खाँडेराव को नदी पर उस जगह बुरी तरह पकड़ लिया जहां पर वह अर्धवृत्ताकार में बहती थी। परन्तु उसको उपयान की अनुमति दे दी गई—सम्भवतया इस कारण से कि अहमद खाँ मराठों की सद्भावना प्राप्त करने का इच्छुक था। पठानों ने अब उसका पीछा किया—इस उद्देश्य से कि सिंधी रामपुर पर गंगा को पार कर लें और मल्हर राव पर आक्रमण करें जो मुट्ठी भर मराठा सैनिक लिये नदी के दूसरे तट पर पड़ा था। अतः दोनों ओर से दूर की अग्नि वर्षा आरम्भ हुई और एक सप्ताह तक चलती रही। इस बीच में अपनी रसद के कम पड़ जाने से अहमद खाँ ने नदी के बाईं ओर इस उद्देश्य से प्रयाण किया कि नजीब खाँ रुहेला से जा मिले, जो नया सामान और नये सैनिक लेकर उसकी सहायता पर आ रहा था, कि फर्रुखाबाद से क़रीब ३० मील उत्तर सूरजपुर के घाट पर गंगा को पार करें, और यह कि मराठों पर अकस्मात् आक्रमण करे।

बंगश उद्योगिता की सूचना पाकर सफ़दर जंग ने फ़र्रुख़ाबाद से ४० मील नीचे महदी घाट पर गंगा को पार किया और २५ नवम्बर १७५१ई० को सिंधीरामपुर में मल्हर राव होल्कर के साथ जा मिला पहिले इसके कि मराठों पर आकस्मिक आक्रमण की अपनी योजना को पठान कार्यान्वित कर सकें। वज़ीर के आगमन से उसके शत्रुओं के हृदय में नयी शक्ति का संचार हो गया। सिंधीराम पुर से २८ मील ऊपर कअरौल पर मित्रों ने जल्दी से नावों का पुल नदी पर बाँध दिया और २५ हज़ार फुर्तीले मराठा सवार नदी पार भेज दिये। रुहेले भयग्रस्त होगये और उन्होंने आँवला की ओर जल्दी में अपयान किया। अहमद खाँ और उसके जाति भाई जल्दी से उनमें शामिल हो गये। मराठों और मुग़लों ने उनको राह में आ घेरा और भयंकर संग्राम हुआ जिसमें दोनों पक्षों को भारी क्षति हुई। पठानों का हाल बहुत ही बुरा रहा परन्तु वे आँवला को भाग बचने में सफल हुये*।

पठान पहाड़ियों में अवरोधित

आँवला में अपने आगमन के १२ घण्टों के अन्दर ही रुहेलों ने अपने

‡ राजवाड़े III ३८४।
* ज०ए०सु०बं० (१८७६) पृ० १०४-१०६; ता० अहमदशाही ८२ ब।

घरों को आग लगा दी और अहमद खां बंगश के साथ, अपने परिवारों और कोषों को सेना के केन्द्र में लेकर, कमाऊँ की पहाड़ियों की ओर चल पड़े। रामपुर, मुरादाबाद और काशीपुर के मार्ग से कुछ दिनों के सतत् प्रयाणों के बाद वे चिल्किया† नामक एक पहाड़ी स्थान पर पहुँचे जो काशीपुर के १२ मील उत्तर पूर्व में था। इसको अत्यन्त सैनिक महत्व की जगह पाकर जिसके बीच में मैदान था और जो तीन ओर अप्रवेश्य घने जंगल से घिरा हुआ था, पठानों ने बीच में अपना शिविर बनाया और उसके उत्तर में एक सुरक्षित ग्राम में एक प्रबल दल की रक्षा में उन्होंने अपने परिवारों को ठहरा दिया। चौथी ओर उन्होंने एक गहरी विस्तृत खाई खोद ली क्योंकि इस तरफ शत्रु के मार्ग को रोकने के लिये नदी या पहाड़ी ऐसा कोई प्राकृतिक अन्तराय नहीं था। इस खाई के किनारे उन्होंने मिट्टी की दीवार और बहुत सी बुर्जें बनाईं जिनके साथ साथ पंक्तियों में उन्होंने अपनी तोपें लगादीं जो मजबूत लोहे की जंजीरों से परस्पर कसी हुई थीं। उनका एक मात्र कष्ट रसद की कमी थी जिसके कारण वे अल्पाहार पर विवश हो गये थे। अतः कुछ दिन गन्ने पर काट कर अहमदखां ने अल्मोड़ा के राजा की उदारता को प्रेरित किया। शत्रु को क्षुधापीड़ित कर वशाधीन करने के लिये नवाब वज़ीर ने पहिले से ही अल्मोड़ा के राजा को लिख दिया था कि पठानों की सहायता न करे। परन्तु अल्मोड़ा पति ने आश्रित पर परम्परा गत हिन्दु दया दृष्टि के अनुसार शरणार्थी की प्रार्थना पर उदारता से ध्यान दिया और उसको पर्याप्त अन्न भेज दिया*।

---

† गुलिस्तां;४२ हादिक ६७४ कहता है कि पठानों ने लालढंग में शरण ली। हमिल्टन पृ.११० उसका अनुसरण करता है। सियर III ८८२; और म० उ० I ३६७ मदारिया पहाड़ियों को तलहटी बताते हैं जो चिल्किया के पास कमाऊँ की पहाड़ियों की एक शाखा है। ता० अहमदशाही पृ० २८ ब के अनुसार यह जगह क़रीब १०० कोस लम्बी और ३० से ४० कोस तक चौड़ी थी। वही लेखक कहता है कि पठान इसको पार करके सरहिन्द को लूट कर लाहौर जाना चाहते थे (स्पष्टतया अहमदशाह अब्दाली से सहायता की खोज में)।

* ज० ए० सु० बं० (१८७६) पृ० १०८; ता० अहमदशाही २६ अ०। तुलना करो—१७५० के ग्रीष्म में राज्य के मीर बख़शी सादतखां ज़ुल्फ़िक़ार जंग ने जोधपुर के महाराजा रामसिंह के विरुद्ध एक अभियान का

पठानों को भगाने के तुरन्त पश्चात् सफ़दरजंग ने भी गंगा को पार किया और गंगाधर यशवन्त के नेतृत्व में कई हज़ार मराठा सवारों को शत्रु का पीछा करने के लिये भेजा। इसके बाद उसने मल्हरराव होल्कर और जयाप्पा सिन्धिया को प्रेरित किया कि अहमद खां को राह में रोक लें। परन्तु मराठों की मुख्य नीति भागने वालों के साथ भागने की और शिकारियों के साथ शिकार करने की थी। अब चूँकि पठान पूरी तरह पराजित हो गये थे वे उनके सर्वनाश के विपरीत हो गये थे। अतः वे एक न एक कारण उपस्थित करते रहे, वे स्वयं रुहेलखण्ड के खुशहाल क़स्बों को लूटने में लग गये और अहमदखां को सतर्क रहने की चेतावनी देदी क्योंकि वे उस पर शीघ्र आक्रमण करने वाले थे। इस बीच में समाचार आया कि पठानों ने कुमाऊँ की पहाड़ियों की तलेहटी में शरण लेली है। अतः वज़ीर और उसके मित्र यथा शक्ति प्रयाणों द्वारा आगे बढ़े और पठान रक्षा परिखा के दक्षिण में कुछ दूर पर उन्होंने अपनी छावनी डाली। प्रत्येक दिन मराठे अपने शिविर से बाहर निकलते और विरोधी दलों के भिन्न योधाओं में अनियमिक युद्ध होते। परन्तु घने वन के कारण और पानी की धारा के कारण जो पहाड़ियों से पठान परिखा के चारों ओर एक कृत्रिम नाली में बहती थी, अवरोधकों ने व्यर्थ परिश्रम किया कि शत्रु को परिखा में प्रवेश प्राप्त हो जाये। अतः सफ़दरजंग ने भी तोपों को भित्तियाँ खड़ी की और प्रतिदिन अपनी बड़ी तोपें चलाना आरम्भ किया। ये चालें दो महीनों तक चलती रहीं परन्तु इनसे युद्ध का कोई निर्णय न हुआ†।

नेतृत्व किया। मुलसाता हुआ सूर्य सिर पर और मारवाड़ की ग्रीष्म ऋतु की बालू पैर के नीचे—ऐसी दशा में सादतखाँ के सिपाही एक दो पहर को पानी की कमी से पीड़ित होने लगे। सो प्यासे मुसलमानों ने रणक्षेत्र छोड़ दिया और पानी को खोज में भटकते हुये घटना वश रामसिंह के सैनिकों के निकट पहुँच गये। उदार राजपूतों ने अपने शत्रुओं का एक कुएँ तक मार्ग प्रदर्शन किया, अपने आदमियों से पानी खिंचा कर मुसलमानों की प्यास बुझाई और उनको बख्शी की सेना तक पहुँचा दिया। सियर के लेखक का एक चचेरा भाई इस उदार आचरण का साक्षी था। सियर III ८८५।

† ज० ए० सु० बं० (१८७६) पृ० १०६; ता० अहमदशाही २६ अ०।

राजेन्द्र गिरि गोसाईं की पराजय।

बीच में यह समाचार आया कि अहमदशाह अब्दाली पंजाब पर आक्रमण करने आ रहा है इस उद्देश्य से कि वज़ीर के ध्यान को उत्तर पश्चिमीय मुग़ल सीमा की ओर आकृष्ट करले और इस तरह से अपने पठान भाइयों को अवश्यम्भावी नाश से बचाले*। राजा लक्ष्मीनारायण ने नवाब वज़ीर को लिखा कि बादशाह शीघ्र ही उसको आज्ञा देगा कि शत्रु से शान्ति करले और दिल्ली वापस आ जाये। इससे सफदरजंग अत्यन्त इच्छुक हुआ कि शत्रु पर एक तेज़ और सफल प्रहार करे और इस प्रयोजन से उसने अपने मित्रों और अधिकारियों की युद्ध परिषद् को आमन्त्रित किया। पठानों से सहानुभूति रखने के कारण मराठा सरदारों ने विनय किया कि रक्षा-परिखा के विरुद्ध युद्ध करने का अनुभव उनको नहीं है। परन्तु राजेन्द्र गिरि ने शत्रु से युद्ध करने के लिये अपने को स्वयमेव प्रस्तुत किया। अगले ही प्रभात को पठान परिखा के पूर्वी पक्ष नजीबखां और सैयद अहमद की तोप भित्तियों पर आक्रमण करने के लिये उसने कुछ मुग़ल सैनिक भेजे कि अहमदखां बंगश के अधिकांश आदमियों को उधर आकृष्ट करले और तब अपने वीर नागा सैनिकों के मुख्य भाग द्वारा उस पर आकस्मिक प्रहार करे। परन्तु विश्वासघात कर जयाप्पा सिन्ध्या ने उसकी यह योजना अहमदखां को प्रगट करदी। अतः खान ने पठानों को अपनी तोप भित्ति के चारों ओर केन्द्रित कर लिया और अपने वामपक्ष की सहायता पर उसने किसी को भी नहीं भेजा। इसकी सूचना पाकर राजेन्द्र गिरि ने अपने एक पटशिष्य को उसके दल के साथ अहमदखाँ के विरुद्ध भेजा और वह स्वयं नीचे के मैदान में अपनी सेना के अधिकांश भाग सहित खड़ा रहा। पठान भी अपने स्थान से नीचे को उतर आये और तोपों का युद्ध प्रारम्भ हुआ जो एक घण्टे तक चलता रहा। तब सेनायें एक दूसरे के निकट आगईं। भयकर हाथों हाथ की लड़ाई में नागे पीछे हटने लगे। यह देख कर उनका नवयुवक आज्ञापक अग्र पंक्ति की ओर बढ़ा और अपने घोड़े से उतर कर उसने शत्रु पर

---

*ज़िल हिज्ज १९६४ हि० (नवम्बर १७५१ ई०) से ही अब्दाली के आने की अफवा थी। पेशवादफ्तर आदि देखो पत्र नं० ११२; सादसाई ने इस तिथी को ज़िलहिज्जा ११६५ हि० माना है। यह ग़लत है।

आक्रमण किया और अति वीरता से लड़ा। उसके उदाहरण का उसके व्यक्तिगत अनुचरों ने निस्संकोच अनुसरण किया। परन्तु सख्या में वे निराशा पूर्ण न्यून थे और वे मारे गये। इस पर नागा सेना अव्यवस्था में भाग निकली। सन्ध्या हो चुकी थी और इस कारण से राजेन्द्र गिरि जो बहुत पीछे मैदान में था, अपने शिविर में वापस आया। पठानों ने प्लायकों का पीछा किया और कुछ सामान को लूट कर और वज़ीर के संस्थान को तोप गाड़ियों को जला कर वे वापस आये।

राजेन्द्र गिरि की पराजय से वज़ीर बहुत हतोत्साह हुआ। वह अपने हाथी पर सवार हो गया और बहुत जल्दी में और मन के उद्वेग में वह काशीपुर की ओर बढ़ा। परन्तु मल्हर राव होल्कर और जयाप्पा सिन्धिया ने 'वज़ीर को अपने मूर्ख विचारों को कार्यान्वित करने से रोक दिया क्योंकि वे उसके स्थान के गौरव के विपरीत थे' और उसको छावनी को वापस लाये।

शान्ति और उसका महत्व

गोसाई' की पराजय के थोड़े दिनों बाद शाहशाह ने अलीकुली खां द्वारा एक आवश्यक फ़र्मान भेजा जिसमें सफ़दर जंग को आज्ञा दी कि पठानों से सन्धि कर ले और लाहौर की ओर अब्दाली की शीघ्र गति को ध्यान में रख कर उसको दिल्ली बुलाया*। मराठे भी विशेष कर इस कारण कि पहाड़ियों की अस्वस्थ आबहवा दक्षिणी सैनिकों के स्वास्थ्य के लिये बहुत हानिकारक थी, अभियान की शीघ्र समाप्ति के उत्सुक थे। पठानों के लिये भी, जो गृहहीन परिभ्रमकों की दशा को प्राप्त हो गये थे, जो ऋतु की निर्दयता और रुग्णता के विनाश से पीड़ित थे, उनके कष्टों की समाप्ति से और कुछ अच्छा न हो सकता था†। वज़ीर के पास भी शान्ति के अतिरिक्त और कोई उपाय न था। अतः अहमद खां बंगश का अवगाहन करने अलीकुली खां भेजा गया। परन्तु चूँकि वज़ीर का चरित्र विश्वासदायक न था पठानों ने मराठा मध्यस्थता की इच्छा की क्योंकि केवल वे ही प्रस्तावित शान्ति की शर्तों को कार्यान्वित करा सकते थे।

---

*ता० अहमदशाही—२० ब—२१ अ।

†इमाद पृ० ५६ कहता है कि पठान घोर दुर्भिक्ष से पीड़ित थे, इसलिए वे प्रणत हो गये। परन्तु समकालीन लेखक इसकी पुष्टि नहीं करते हैं।

सिन्धिया और होल्कर भी सहमत हो गये और उन्होंने खाण्डेराव को महमूद खां‡ और हाफ़िज़ रहमत खां को सम्मेलन के लिये बुलाने भेजा। वे दोनों आह्वान पर उपस्थित हुये और वज़ीर के डेरे को दो सौ विश्वास-पात्र पठान घुड़सवारों के साथ गये। रात्रि में १ हज़ार मुग़ल सिपाहियों ने पठानों के डेरों को अलीकुली खां की आज्ञा से घेर लिया क्योंकि वह वज़ीर के सिपाहियों की पठानों के प्रति वैमनस्यता को जानता था और इसी कारण से अतिथियों की शरीर रक्षा के लिये उसने अपने अनुचर नियोजित कर दिये थे। परन्तु पठान विश्वासघात की आशंका करके तुरन्त अपने घोड़ों पर सवार हो गये और अपनी परिरक्षा को चले गये। इसमें मराठों ने उनकी सच्ची सहायता की क्योंकि उनकी सुरक्षा का वचन उन्होंने दिया था।

इस समय संत्रासक समाचार प्राप्त हुये कि अब्दाली ने सिन्धु पार कर लिया है और अहमद खां बंगश और सादुल्ला खां रुहेला को बचाने आ रहा है। मराठों ने महापराक्रमी आक्रान्ता के विरुद्ध युद्ध की सभावना से अति भयभीत होकर वज़ीर से आग्रह किया कि शत्रु से शीघ्र ही समझौता कर ले। कुछ वार्तालाप के बाद तीस लाख रु० (एक दूसरे लेखक के अनुसार ८ लाख) जुर्माना पर सफ़दर जंग अहमद खां बंगश को क्षमा करने के लिए तैयार हो गया यदि इसके निस्तार के निक्षेप रूप में वह अपना आधा प्रदेश उस समय तक समर्पित कर दे जब तक कि सारा धन निस्तारित न हो जाये। अतः अलीकुली ख़ाँ और गंगाधर अहमद ख़ाँ बंगश से बात-चीत करने भेजे गये। मराठों के पूर्व विमर्श के अनुसार खान ने पूरी शर्तें स्वीकार कर लीं और महमूद ख़ाँ और हाफिज रहमत ख़ाँ को वज़ीर की सेवा में भेज दिया। अगले ही दिन सफ़दर जंग ने उनको अपने से मिलने का अवसर दिया और तीसरे दिन महमूद खां, हाफ़िज़ रहमत खां और गङ्गाधर को अपने साथ लेकर उसने लखनऊ के लिये प्रस्थान कर दिया और मराठे कन्नौज में अपना डेरा डालने वापस चल दिये। लखनऊ से १५ मील दक्षिण-पश्चिम में मोहान

‡इमाद पृ० ५६ के अनुसार अहमद ख़ाँ बंगश अपने पुत्र को वज़ीर के पास भेजने पर तैयार हो गया यदि मल्हर का पुत्र खाण्डेराव उसके प्रतिभू के रूप में उसके डेरे को भेज दिया जाये। मल्हर राव होल्कर ने ऐसा ही किया।

के क़स्बे को जब वज़ीर पहुँचा उसने हाफ़िज़ रहमत ख़ाँ को अपने देश वापस जाने की अनुमति दे दी और जब रुहेलों ने वचन दिया कि भविष्य में वे राजस्व देते रहेंगे उनको भी अपनी रियासत में वापस जाने की अनुमति दे दी। सन्धि-पत्र पर उसने लखनऊ में हस्ताक्षर किये। इसके द्वारा बंगश रियासत का अर्धभाग—फ़र्रुख़ाबाद और कुछ अन्य परगने १६ लाख रु० प्रति वर्ष आय के अहमद ख़ाँ के नाम पर निर्धारित कर दिये गये और द्वितीयार्ध (अर्थात् १६½ परगने) उसने अपने मराठा मित्रों को ३० लाख रुपया के स्थान पर दिये जिसका वह अभियान में उनकी सहायता के लिये ऋणी था। देश जो मराठों को समर्पित किया गया कोल (अलीगढ़) से उत्तर में कोड़ा जहानाबाद तक दक्षिण-पूर्व में फैला हुआ था। यह उस समय तक उनको दिया गया था जब तक अहमद ख़ाँ जुर्माना न दे दे। परन्तु कार्यरूप में अनिश्चित काल तक इस पर अधिकार रखने से उनको रोकने की कोई चीज़ नहीं थी और वास्तव में १७६१ ई० तक उनका अधिकार इस पर रहा जब पानीपत में अपनी पराजय के परिणाम स्वरूप वे उत्तर भारत से थोड़े समय के लिये निकल गये थे। मीराबाद और कुछ परगनों सहित, जिनको क़ायम ख़ां की मृत्यु के पीछे उन्होंने बंगशों से छीन लिया था, अपनी रियासत पर अधिकार रखने की अनुमति रुहेलों को दे दी गई। परन्तु इन परगनों का राजस्व देना अनिवार्य था। कुछ परगने सफदर जंग ने अपने लिये रख लिये। फ़रवरी १७५२ ई० के आरम्भ में यह शान्ति स्थापित हुई*।

अपनी सफलता के होते हुये भी यह अभियान वज़ीर के हित के प्रति अत्याहित सिद्ध हुआ। यह उस सौहार्द का विच्छेदक था जो उसमें और

*पहाड़ियों में अवरोध से शान्ति तक मैंने मुख्यतया इर्विन की पुस्तक "फ़र्रुख़ाबाद में बंगश नवाब"—[ज० ए० सु०-बं० (१८७९) पृष्ठ १०८-१२२ में] का अनुसरण किया है जिसका आधार हिसामुद्दीन ग्वालियरी की पुस्तक है। दूसरे लेखक जिनसे मैंने सहायता ली है ये हैं :—

ता० अहमदशाही ३८ ब-३१ ब०; गुलिस्तां ४१-४४; सियर III ८८१-८८२; हरिचरण ४०७ अ और ब; त० म० १५ अ; माअसन IV १८० ब; हादिक १७५ और ६७४; अब्दुलकरीम २६२-२६६; इलियट VIII ११६-१२० में त० अ०; इमाद ५६। ये सब, गुलिस्तां को छोड़ कर, केवल सार देते हैं—और कुछ—जैसे इमाद—अशुद्धियों से भरे पड़े हैं।

मराठा सरदारों में कुछ काल से विद्यमान था। फतेहगढ़ की विजय के बाद मल्हरराव होल्कर ने उससे प्रार्थना की थी कि फ़ैज़ाबाद (अयोध्या), इलाहाबाद (प्रयाग), बनारस (काशी) के हिन्दु तीर्थस्थान पेश्वा को दे दिये जायें। यह ऐसी प्रार्थना थी जो पूरी पूरी निश्चिन्तता से स्वीकृत नहीं की जा सकती थी*। पठानों को निर्बीज कर देने का वज़ीर के प्रतिशोधात्मक संकल्प को और अपने ऊपर उसकी आश्रिता को देखकर हताश मराठों ने उभय पक्ष को प्रसन्न रखने का द्वैध खेल खेलना प्रारम्भ किया। इस आचरण से सफदरजंग की आकांक्षायें भग हो गईं और पठान अवश्यम्भावी विनाश से बच गये। होल्कर और सिन्ध्या ने स्थिति को इस ढग से संभाला कि इस अभियान से केवल उन्हीं को लाभ हुआ। करोड़ों रुपये का लूट का माल, आधा बगश प्रदेश, और सफदरजग से अपना दैनिक व्यय प्राप्त करने के अतिरिक्त उन्होंने अहमदखाँ बंगश और सादुल्लाखाँ रुहेला से बलपूर्वक ५० लाख† रु० खींच लिये—युद्ध क्षतिपूर्ति में नहीं जैसाकि इतिहासकार सरदेसाई कहता है परन्तु उन अनुकूल शर्तों के मूल्य रूप में जो उनके द्वारा उनको दी गईं थीं। नवाब वज़ीर को शत्रु को अवनत करने के असार सन्तोष के अतिरिक्त और कुछ न मिला। सबसे बढ कर यह बात हुई कि सफ़दरजग की एक वर्ष से अधिक की लम्बी अनुपस्थिति उसके शत्रुओं को भव्य अवसर मिला गया कि दरबार में सत्ता और गौरव का संचय करलें और बादशाह के मन को उससे फेर दें। केवल नाम को छोड़ कर जावेदखाँ वज़ीर बन गया, और इस अभियान की समाप्ति पर सत्ता को पुनः प्राप्त करने के अपने प्रयत्न से सफदर जंग ही अवनत और स्थान-च्युत हुआ।

---

* पत्रें यदि आदि पत्र न० ८३। मल्हरराव की इच्छा थी कि बनारस में औरगज़ेब की मस्जिद को भूमिसात् करदे जो विश्वेश्वर के प्राचीन मन्दिर की जगह पर उसकी ही सामग्री से निर्माण की गई थी और उसको पुनः मन्दिर बनादे। परन्तु अपने प्राणों के भय से काशी के ब्राह्मणों ने होल्कर से प्रार्थना की कि इस कार्य से दूर रहे। देखो राजवाड़े III २९०। सरदेसाई के पानीपत प्रकरण पृ० १३ में भी यह है।

† इमाद ५०; सरदेसाई—पानीपत प्रकरण पृ० १३।

प्रतापगढ़ के राजा प्रथीपति की हत्या।

अपने बड़े भाई मिर्ज़ा मुहसिन‡ के पुत्र मुहम्मद कुलीखां को अब सफ़दरजंग ने अवध में अपना नायब नियुक्त किया और अपने सूबों के दौरे पर निकला कि राजा नवलराय की मृत्यु पर अव्यवस्थित होगये प्रशासन को पुनः संगठित करे और प्रतापगढ़ के राजा प्रथीपति को और बनारस के राजा बलवन्तसिंह को उस सहायता के लिये दण्ड दे जो उन्होंने १७५१ ई० के आरम्भ में पठानों को दी थी। फ़ैज़ाबाद से वज़ीर दक्षिण की ओर मुड़ा और प्रतापगढ़ के राजा को मैत्रीपूर्ण पत्र भेजा जिसमें उसने प्रार्थना की थी कि वह स्वयं उसके शिविर में उपस्थित हो और वचन दिया कि पठानों द्वारा उसकी अस्थायी निष्प्रभ अवस्था में उसके आचरण को वह क्षमा कर देगा। प्रथीपति ने निमन्त्रण का आदर किया और फ़ैज़ाबाद से ३६ मील दक्षिण में सुलतानपुर पर वज़ीर की छावनी में उपस्थित हुआ। संमिलन में सफ़दरजंग ने मीठी और मित्र-वत वार्तालाप द्वारा राजा को विश्वासघात कर अशंक रखा और अपने एक कृपापात्र अंगरक्षक अलीबेगखाँ खरजी को संकेत किया कि गृहागत का वध करदे। खान ने जो बिना अन्तःकरण का सिपाही था राजा के पेट में बांई ओर अपनी कटार जल्दी से भोंक दी। सर्वथा शस्त्रहीन अशक्त आमिष्ट अपने वधिक पर टूट पड़ा, उसके गाल का एक टुकड़ा दान्तों से काट लिया और निष्प्राण होकर भूमि पर गिर गया। इस काली करतूत पर सफ़दरजंग ने हत्यारे को शितावजंग* (युद्ध में दृढ़) की उपाधि दी।

प्रथीपति महत्वशाली सोमवंशी सरदार राजा प्रताप सिंह का एक पौत्र था, जिसने अपनी रियासत के केन्द्र में इलाहाबाद से ३२ मील उत्तर प्रतापगढ़ का क़स्बा बसाया था। प्रतापसिंह की मृत्यु पर उसके पुत्रों में आपस में झगड़ा हुआ। उनमें से एक जयसिंह नामक ने इलाहाबाद के फ़ौजदार रहुलमीन खां बिलग्रामी की सहायता से अपने भाइयों को परास्त

‡ मिर्ज़ा मुहसिन को बादशाह अहमदशाह ने ७ हज़ार ज़ात और ७ हज़ार पैदल का पद १६ मार्च १७४६ ई० को दिया था। १६ दिसम्बर १७४९ ई० को वह हैज़ा से मर गया। देखो दिल्ली समाचार पृ० ४८ और ५३।

* बलवंत ३० अ ; हादिक ६४७ ; सियर III ८८२ ; मादन IV १८१ अ।

किया और राजा हो गया। जयसिंह योग्य और शक्तिशाली शासक था। वह सुसंस्कृत भी था। वह मुसलमानों के विधिगत उपचार से सुपरिचित था मुसलमानी वस्त्र धारण करता और मुहर्रम मनाता। १७१६ ई० में या उसके क़रीब उसका पुत्र छत्रधारी सिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ जो मालूम होता है किसी काम का शासक न था। उसके शासन काल में रियासत का आधे से अधिक भाग सआदत खां ने छीन लिया था। उसके दो स्त्रियों से ५ पुत्र थे। पहिली से मेदनीसिंह, बुद्धसिंह और दलथम्भन सिंह उत्पन्न हुये और दूसरी सुजान कुंवारी नाम की अत्यन्त शारीरिक सौन्दर्य की महिला से उसके प्रथीपतिसिंह और हिन्दूपति सिंह हुये। सुजान कुँवारी पर अत्यन्त मुग्ध राजा ने उसके बड़े पुत्र प्रथीपतिसिंह को अपना उत्तराधिकारी नामांकित किया जिससे उसके ज्येष्ठ पुत्र मेदनीसिंह का उसके जन्मसिद्ध अधिकार से अन्याय पूर्ण अपहरण हुआ। वह अपने पिता के अन्याय पर क्रुद्ध हुआ और उसके अपने पिता से कई निविष्ट रण हुये परन्तु असफल रहा। छत्रधारीसिंह की लकवे से मृत्यु हुई और उसके स्थान पर प्रथीपत राजा हुआ। नये राजा की आकृति बहुत सुन्दर थी, उसकी प्रकृति सभ्य और रुचि उत्कृष्ट थी। वह योग्य सैनिक और सांसारिक विषयों में समर्थ था। वह अरबी, फारसी, तुर्की और अफ़गानों की भाषा में पारंगद् था और इनके अतिरिक्त वह अपनी मातृ-भाषा हिन्दी जानता था। दैनिक वार्तालाप में वह त्रुटिहीन फारसी बोलता था जिसको फ़ारस से नवागन्तुक की बोली से विशिष्ट करना कठिन था। अपने पितामह की भांति वह मुसलमानों को व्यवहार कुशलता और उपचारों में निपुण था। वस्त्र और भोजन में भी वह मुस्लिम रुचि से प्रभावित था। घुड़सवारी, पोलो, बाण-विद्या और असिकौशल में प्रथीपतिसिंह निपुण था। वह बिल्ग्राम के इतिहासकार मुर्तज़ा हुसैन खां का मित्र था और अपनी हत्या के समय क़रीब ३० वर्ष का था* (१७५२ आरम्भ।)

*हादिक़ पृ० ६७२-७७४। प्रथीपति की हत्या के बाद उसका पुत्र दुनियापति जिसकी आयु उस समय केवल १२ वर्ष की थी प्रतापगढ़ का शासक हुआ। यह अपने पिता से भी अधिक सुन्दर था। कुछ वर्ष बाद शुजाउद्दौला के हाथों उसका वही हाल हुआ जो उसके पिता का सफदर जंग के हाथों हुआ था और प्रतापगढ़ नवाब के प्रान्तों में मिला लिया गया। कुछ समय पीछे यह प्रथीपति के भाई हिन्दुपति को दिया गया,

बनारस के राजा बलवन्तसिंह† के विरुद्ध सफ़दर जंग का अभियान, १७५२ ई.

मुलतानपुर से सफ़दर जंग जौनपुर की ओर बनारस के राजा बलवन्त सिंह से निपटने के लिये बढ़ा। यहाँ पर बनारस के वर्तमान राजवंश का हम संक्षेप में थोड़ा सा पता लगा लें। मुहम्मदशाह के राज्य-काल के आरम्भिक वर्षों में गौतम उपजाति का भूमिहार ब्राह्मण, अब गंगापुर नाम से प्रसिद्ध तियरिया गाँव का निवासी मनसाराम बनारस को गया और वहाँ पर बनारस, जौनपुर, ग़ाज़ीपुर और चुनारगढ़ की सरकारों के नाज़िम रुस्तम अली ख़ाँ के पास नौकरी कर ली। थोड़े ही वर्षों में मनसाराम की योग्यता और व्यावहारिक गुणों ने उसके अकमण्य स्वामी के मन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया और उसको उन ज़िलों का वास्तविक शासक बना दिया। यह व्यवस्था १७३८ ई० तक चलती रही जब सआदत ख़ाँ ने, जिसको ये ज़िले कुछ पूर्व पट्टे पर दे दिये गये थे, सफ़दर जंग को आदेश दिया कि रुस्तम अली ख़ाँ से उसको दुष्कृति का कारण पूछे। अपने ऊपर आरोपों का उत्तर देने में असमर्थ रुस्तम अली ख़ाँ ने मनसाराम को जौनपुर में सफ़दर जंग की छावनी को भेजा कि नवाब से सन्धि कर ले। वार्तालाप का परिणाम हुआ—रुस्तम अली ख़ाँ की पदच्युति और १३ लाख रु० वार्षिक राजस्व कर पर बनारस, जौनपुर और चुनारगढ़ की तीन सरकारों पर मनसाराम के पुत्र बलवन्त सिंह की नियुक्ति। बची हुई ग़ाज़ीपुर की सरकार पर तीन लाख राजस्व पर शेख़ अब्दुल्ला नियुक्त हुआ। मनसाराम बनारस का शासक बनकर ६ जून १७३८ ई० को वापस आया और रुस्तम अली ख़ां इलाहाबाद में अवकाश प्राप्त हुआ। इस व्यापार से वर्ष भर के अन्दर ही मनसाराम

परन्तु वह अत्यधिक राजस्व न दे सका और ताल्लुका उससे छीन लिया गया। इस पर हिन्दुपति शुजाउद्दौला के पास गया और अपनी पैतृक रियासत के लोभ में मुसलमान हो गया और इस पर प्रतापगढ़ पुनः उसको दे दिया गया। परन्तु धर्म परिवर्तन के अपराध में उसके आत्म-सम्मानीय जाति भाइयों ने उसको मार डाला। अपने राज्यारोहण पर आसफ़ुद्दौला ने पुनः प्रतापगढ़ को अपने राज्य में मिला लिया, परन्तु प्रपीपति के वंशज नवाब वज़ीर के हाथों से उसे छीनने में सफल हो गये। हादिक़ ६७४।

† उसका शुद्ध नाम बख़्शीवन्द था।

किया और राजा हो गया। जयसिंह योग्य और शक्तिशाली शासक था। वह सुसंस्कृत भी था। वह मुसलमानों के विधिगत उपचार से सुपरिचित था मुसलमानी वस्त्र धारण करता और मुहर्रम मनाता। १७१६ ई० में या उसके क़रीब उसका पुत्र छत्रधारी सिंह उसका उत्तराधिकारी हुआ जो मालूम होता है किसी काम का शासक न था। उसके शासन काल में रियासत का आधे से अधिक भाग सआदत ख़ां ने छीन लिया था। उसके दो स्त्रियों से ५ पुत्र थे। पहिली से मेदनीसिंह, बुद्धसिंह और दलथम्मन सिंह उत्पन्न हुये और दूसरी सुजान कुंवारी नाम की अत्यन्त शारीरिक सौन्दर्य की महिला से उसके प्रथीपतिसिंह और हिन्दूपति सिंह हुये। सुजान कुँवारी पर अत्यन्त मुग्ध राजा ने उसके बड़े पुत्र प्रथीपतिसिंह को अपना उत्तराधिकारी नामांकित किया जिससे उसके ज्येष्ठ पुत्र मेदनीसिंह का उसके जन्मसिद्ध अधिकार से अन्याय पूर्ण अपहरण हुआ। वह अपने पिता के अन्याय पर क्रुद्ध हुआ और उसके अपने पिता से कई निविष्ट रण हुये परन्तु असफल रहा। छत्रधारीसिंह की लक़वे से मृत्यु हुई और उसके स्थान पर प्रथीपत राजा हुआ। नये राजा की आकृति बहुत सुन्दर थी, उसकी प्रकृति सभ्य और रुचि उत्कृष्ट थी। वह योग्य सैनिक और सांसारिक विषयों में समर्थ था। वह अरबी, फ़ारसी, तुर्की और अफ़ग़ानों की भाषा में पारंगद् था और इनके अतिरिक्त वह अपनी मातृ-भाषा हिन्दी जानता था। दैनिक वार्तालाप में वह त्रुटिहीन फ़ारसी बोलता था जिसको फ़ारस से नवागन्तुक की बोली से विशिष्ट करना कठिन था। अपने पितामह की भांति वह मुसलमानों को व्यवहार कुशलता और उपचारों में निपुण था। वस्त्र और भोजन में भी वह मुस्लिम रुचि से प्रभावित था। घुड़सवारी, पोलो, बाण-विद्या और असिकौशल में प्रथीपतिसिंह निपुण था। वह बिल्ग्राम के इतिहासकार मुर्तज़ा हुसैन खां का मित्र था और अपनी हत्या के समय क़रीब ३० वर्ष का था* (१७५२ आरम्भ।)

*हादिक़ पृ० ६७२-७७४। प्रथीपति की हत्या के बाद उसका पुत्र दुनियापति जिसकी आयु उस समय केवल १२ वर्ष की थी प्रतापगढ़ का शासक हुआ। यह अपने पिता से भी अधिक सुन्दर था। कुछ वर्ष बाद शुजाउद्दौला के हाथों उसका वही हाल हुआ जो उसके पिता का सफदर जंग के हाथों हुआ था और प्रतापगढ नवाब के प्रान्तों में मिला लिया गया। कुछ समय पीछे यह प्रथीपति के भाई हिन्दुपति को दिया गया,

बनारस के राजा बलवन्तसिंह† के विरुद्ध सफ़दर जंग का अभियान, १७५२ ई.

सुलतानपुर से सफ़दर जंग जौनपुर की ओर बनारस के राजा बलवन्त सिंह से निपटने के लिये बढ़ा। यहाँ पर बनारस के वर्तमान राजवंश का हम संक्षेप में थोड़ा सा पता लगा लें। मुहम्मदशाह के राज्य-काल के आरम्भिक वर्षों में गौतम उपजाति का भूमिहार ब्राह्मण, अब गंगापुर नाम से प्रसिद्ध थियरिया गाँव का निवासी मनसाराम बनारस को गया और वहाँ पर बनारस, जौनपुर, गाज़ीपुर और चुनारगढ़ की सरकारों के नाज़िम रुस्तम अली ख़ाँ के पास नौकरी कर ली। थोड़े ही वर्षों में मनसाराम की योग्यता और व्यावहारिक गुणों ने उसके अकमण्य स्वामी के मन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लिया और उसको उन ज़िलों का वास्तविक शासक बना दिया। यह व्यवस्था १७३८ ई० तक चलती रही जब सआदत ख़ाँ ने, जिसको ये ज़िले कुछ पूर्व पट्टे पर दे दिये गये थे, सफ़दर जंग को आदेश दिया कि रुस्तम अली ख़ाँ से उसकी दुष्कृति का कारण पूछे। अपने ऊपर आरोपों का उत्तर देने में असमर्थ रुस्तम अली ख़ाँ ने मनसाराम को जौनपुर में सफ़दर जंग की छावनी को भेजा कि नवाब से सन्धि कर ले। वार्तालाप का परिणाम हुआ—रुस्तम अली ख़ाँ की पदच्युति और १३ लाख रु० वार्षिक राजस्व कर पर बनारस, जौनपुर और चुनारगढ़ की तीन सरकारों पर मनसाराम के पुत्र बलवन्त सिंह की नियुक्ति। बची हुई गाज़ीपुर की सरकार पर तीन लाख राजस्व पर शेख़ अब्दुल्ला नियुक्त हुआ। मनसाराम बनारस का शासक बनकर ६ जून १७३८ ई० को वापस आया और रुस्तम अली ख़ाँ इलाहाबाद में अवकाश ग्राही हुआ। इस व्यापार से वर्ष भर के अन्दर ही मनसाराम

परन्तु वह अत्यधिक राजस्व न दे सका और ताल्लुका उससे छीन लिया गया। इस पर हिन्दुपति शुजाउद्दौला के पास गया और अपनी पैतृक रियासत के लोभ में मुसलमान हो गया और इस पर प्रतापगढ़ पुनः उसको दे दिया गया। परन्तु धर्म परिवर्तन के अपराध में उसके आत्म-सम्मानीय जाति भाइयों ने उसको मार डाला। अपने राज्यारोहण पर आसफ़ुद्दौला ने पुनः प्रतापगढ़ को अपने राज्य में मिला लिया, परन्तु प्रपीपति के वंशज नवाब वज़ीर के हाथों से उसे छीनने में सफल हो गये। हादिक़ ६७४।

† उसका शुद्ध नाम बलवन्द था।

का देहान्त हो गया और उसके पुत्र बलवन्त सिंह ने बादशाह मुहम्मद शाह से इन ज़िलों पर अपना प्रमाणीकरण और राजा की उपाधि प्राप्त कर ली। उसने गंगपुर* को अपना निवास स्थान बनाया और वहाँ पर एक मिट्टी की गढ़ी बनाई। बुद्धिमत्ता और दीर्घ दृष्टि के गुणों से सम्पन्न उसने अपने प्रदेश में पुराने ज़मींदार परिवारों को उखाड़ कर शनैः शनैः परन्तु सतत् ढग से अपनी स्थिति को दृढ़ कर लिया और अवध के नवाब के प्रति क़रीब-करीब पूर्ण स्वतन्त्रता की दशा प्राप्त कर ली। परन्तु राजस्व कर वह यथा समय देता रहा कि उसका अधिपति कभी कोई शंका न कर सके। सफ़दर जंग की अनुपस्थिति में जब वह दिल्ली में था बलवन्त सिंह ने नवाब के कर्त्ता (सज़ावाल) को निकाल दिया, इलाहाबाद के कुछ परगनों पर अधिकार कर लिया और उस सूबा के नायब राज्यपाल अलीकुली खाँ को परास्त किया जो राजा को उसके आक्रमों के लिये दण्ड देने चुनार तक बढ़ आया था। इस विजय पर बलवन्त सिंह गर्व से फूल गया और १७५१ ई० के प्रारम्भ में उसने सफ़दर जंग के शत्रु फ़र्रुखाबाद के विजयी अहमद खाँ से सन्धि कर ली। पठानों के विरुद्ध मार्च १७५१ ई० में नवाब वज़ीर के सफल प्रयाण पर बलवन्त सिंह ने बंगश कर्त्ता साहिब ज़माँ खाँ को अपनी रियासत से निकाल दिया। मार्च १७५२ ई० के आरम्भ में प्रतापगढ़ के अधीपति की हत्या का और वज़ीर की जौनपुर की ओर दण्डार्थ प्रगति का समाचार पाकर बलवन्त सिंह ने अपनी रक्षा की चिन्ता से गंगपुर छोड़ दिया, गंगा को पार किया और मिर्ज़ापुर की पहाड़ियों में जाकर अपने दुर्ग में शरण ली। इस बीच में सफ़दर जंग बनारस पहुँच गया, गंगपुर की गढ़ी और क़स्बे को लूट लिया, और राजा का पीछा करने के लिये अपनी सेना का एक भाग भेजा। नवाब वज़ीर की आकांक्षाओं की सूचना पाकर बलवन्त सिंह ने अपने एक विश्वासपात्र अधिकारी लाल खाँ को दो लाख रु० भेंट में उसके साथ देकर सफ़दर जंग के पास भेजा। भूतकाल में अपने आचरण के लिये क्षमा मांगी और प्रतिज्ञा की कि प्रति वर्ष २ लाख रु० अधिक राजस्व कर में देगा। लाल खाँ का परिचय वज़ीर से उसके कृपापात्र सैयद नूरुलहुसैन खाँ बिलग्रामी ने कराया और उसने स्वयं राजा का पक्ष लिया। सफ़दर जंग इस शर्त पर बलवन्त सिंह को क्षमा दान देने के लिये तैयार

*गंगपुर बनारस के दक्षिण-पश्चिम ७ मील पर है। शीट ६३ क।

हो गया कि वह स्वयं उसकी सेवा में उपस्थित हो। परन्तु राजा इतना चतुर था कि धोखा देकर उसकी गति प्रतिरोध के ऐसी नहीं की जा सकती थी। सफ़दर जंग की हठ पर भी और उसके प्रार्थना प्रति नूरुलहसन के आश्वासन पर भी बलवन्त सिंह नवाब वज़ीर की सेवा में उपस्थित होने को तैयार न हो सका। राजा को अपने जाल में फँसाने के प्रयास में परास्त होकर सफ़दर जंग ने उसको उसकी रियासत वापस दे दी और शीघ्र दिल्ली वापस जाने की तैयारियाँ कीं जहां से बादशाही सन्देशों में अहमदशाह अब्दाली के प्रश्न का निर्णय करने के लिये उसकी उपस्थिति की साग्रह प्रार्थना की जा रही थी*। यह मार्च के अन्त में या अप्रेल† के प्रथम सप्ताह में हुआ और नवाब वज़ीर ने ३ अप्रेल १७५२ ई० को बादशाही राजधानी की ओर अपना वापसी प्रयाण आरम्भ किया।

---

*बलवन्त नामा—२ अ–२१ अ; तारीखे बनारस ७ अ–६४ ब; हादिक ६७५ तारीखे बनारस अशुद्धियों से भरी पड़ी है और इसको राजा का पक्षपात है। वज़ीर की वापसी पर बलवन्त सिंह अपनी रियासत को वापस आ गया। उसके तात्कालिक अनुभव से उसे मालूम हुआ था कि गंगपुर सुरक्षित नहीं है। अतः गंगा के बायें तट पर बनारस के दो मील दक्षिण में रामनगर को वह अपनी राजधानी उठा लाया और वहाँ पर एक गढ़ बनाया। उसने अपनी सम्पत्ति और सत्ता की वृद्धि की और अगस्त १७७० ई० में उसका देहान्त हुआ।

†ता० अहमदशाही २२ ब।

अध्याय १६

गृहयुद्ध और सफ़दर जंग के अन्तिम दिवस

१७५२-१७५४ ई०

तृतीय अब्दाली आक्रमण जनवरी—मई १७५२ ई०

दिल्ली से वज़ीर की अनुपस्थिति में अहमदशाह अब्दाली ने तीसरी बार पंजाब पर आक्रमण किया। अपने सूबा में आन्तरिक विप्लवों के कारण मुईनुलमुल्क तीन वर्षों में से एक का भी प्रतिशत कर न दे सका था। संधि भग का और राज्यपाल के अमित्र आचरण का इसको असंदिग्ध प्रमाण मान कर अफ़ग़ानों का बादशाह दिसम्बर १७५१ ई० में अपराधी को दण्ड देने चला*। जब उसका अग्रदल सिन्धु के पास दिखाई पड़ा मुईनुलमुल्क ने कर के अंश में ६ लाख रुपये नक़द उसको भेजे और निकट भविष्य में शेष धन भी देने की प्रतिज्ञा की†। तब भी शाह बढ़ता गया, उसने सिन्धु, झेलम और अन्त में वज़ीराबाद के पास चनाब को पार कर लिया और लाहौर के उत्तर २२ मील पर शाहदौला के पुल से कुछ ही मीलों पर उसने अपनी छावनी डाली।

शत्रु के निकटागमन के समाचार पर मुईनुलमुल्क ने रक्षा के उपाय साधन तुरन्त अपनाये, अपने परिवार और आश्रितों को सुरक्षा के लिये दूर जम्मू की पहाड़ियों में भेज दिया। यह संकट का संकेत सिद्ध हुआ और लाहौर के धनी नागरिकों ने उन रक्षा स्थानों को जो उन्हें मिल सके भागना शुरू कर दिया। मुईनुलमुल्क ने अब जल्दी से रावी पार किया और शाहदौला के पुल के समीप रक्षा परिखा का निर्माण किया। बहुत दिनों तक विरोधी दल एक दूसरे के आमने सामने पड़े रहे, दोनों ओर के परिचर अनियमित और हल्के डिम्ब-युद्धों में व्यस्त हो जाते थे। इस अलाभकारी युद्धगति से थक कर शाह ने भारतीय परिखा के उत्तर में

---

* इस आक्रमण का एक और बड़ा कारण सफ़दरजंग के पंजे से हिन्दुस्तानी पठानों का छुड़ाना था।

† ता० अहमदशाही ३१ अ०।

अपने शिविर में अपने मुख्यदल को छोड़ कर सवारों के एक सबल दल को लेकर मुईनुलमुल्क के दाहिनी ओर वह द्रुतगति से बढ़ा और उसके चारों ओर एक बड़ा चक्कर लगाकर अकस्मात् लाहौर के पास प्रगट हुआ। इस प्रकार हार कर मुईनुलमुल्क अपनी राजधानी की रक्षा के प्रति चिन्ताकुल होकर शीघ्रता से अविलम्ब लाहौर की ओर वापस हुआ और अपने पहिले ६०० मुग़ल सवारों के एक दल को शहर के सामने से आक्रान्ता को भगाने के लिये भेजा। यह चाल अफ़ग़ानों को उनकी जगह से हटाने में सफल हुई जो अब शालामार बाग़ को हट गये और वहां छावनी डाली। मुईनुलमुल्क ने अब रावी पार की ओर नगर के बाहर परिखा बनाई। डेढ़ मास तक दोनों ओर के परिचरों में प्रत्येक दिन अनियमित युद्ध होता रहा। परन्तु उनमें से किसी का साहस न हुआ कि खुले मैदान में आकर निर्णायक युद्ध लड़े। बड़ी तोपों के अभाव के कारण अफ़ग़ान लाहौर को हस्तगत करने में असमर्थ रहे। उनका क्रोध पड़ोस की अरक्षित जनता पर आ गिरा जिनको उन्होंने नियमपूर्वक अवरोध के काल में लूट कर नष्ट कर दिया। अब्दाली ने ये चालें मुग़लों को अपनी-दृढ़ रक्षा: परिखा से बाहर लाने के लिये चलीं परन्तु वह निष्फल रहा।

इस सारे समय में न तो बादशाह ने, न वज़ीर ने सीमा प्रान्त के अतिपीड़ित राज्यपाल को सहायता देने का कोई प्रयत्न किया। प्रत्याह्वान की बार बार की आज्ञाओं पर भी सफ़दरजंग, जो मुईनुलमुल्क का कट्टर दुश्मन था, अवध और इलाहाबाद के विद्रोही ज़मींदार को दण्ड देने के उन प्रान्तों में अपना शासन पुनः स्थापित करने के कार्य में निश्चिन्त होकर लगा रहा। दिल्ली से हताश होकर और यह साक्षात् कर कि अवरोध सहन की नीति का अवश्यम्भावी परिणाम दुर्भिक्ष और आत्म-समर्पण होगा, राज्यपाल के दीवान कौड़ामल ने खुले मैदान में निविष्ट रण का प्रतिपादन किया। परन्तु भिखारीखां, मोमिनखां और अदीनाबेग इसके विरुद्ध थे। अन्त में जो अवश्यम्भावी था वही हुआ। अन्न दुष्प्राप्य हो गया, कुएं सूख गये और घास मिल न सकी क्योंकि समीपवर्ती प्रदेश को पठानों ने पूर्णतया नष्ट कर दिया था। सबसे बुरी यह बात हुई कि भारतीय सेना की परिखा का स्थान बहुत ही अस्वास्थ्यकारी होगया क्योंकि मनुष्य और पशु बहुत दिनों से इसके अन्दर पड़े हुये थे। अतः रक्षा

परिखा के लिये दूसरा स्थान चुना गया और १५ मार्च १७५२ ई० क प्रभात में जल्दी ही प्रयाण आरम्भ हुआ। अग्रदल का नेता अदीना वेग था, पृष्ठ भाग का कारामल और केन्द्र स्वयं मुईनुलमुल्क के सञ्चालन में था। सतर्क शाह यह समाचार पाकर बहुत ही प्रसन्न हुआ और तुरन्त ही उसने आगे और पीछे से मुग़लों की गतिमान पंक्तियों पर प्रहार कर दिया। लाहौर सेना के तीनों भाग शीघ्र ही एक दूसरे से पृथक हो गये और ऐसा प्रतीत होता था कि सर्वनाश होने वाला है। इस संकट दशा पर कारामल शीघ्रता से अपने स्वामी की सहायता के लिये आगे बढ़ा। रास्ते में तोप के गोले से उसके हाथी के घातक घाव लगा और जब वीर दीवान इसके स्थान पर दूसरे हाथी पर सवार हो रहा था उसके भी गोली लगी और वह निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पड़ा। इस पर भारतीय पृष्ठ दल भयातुर होकर भाग निकला और अफ़ग़ानों ने शीघ्र ही स्वयं मुईनुलमुल्क के भाग पर दवाब डाला। अपने विरुद्ध स्थिति भयंकर होते भी लाहौर का वीर सूबेदार रण में निश्चल रहा और क्षेत्र को उस समय छोड़ा जब रात्रि का अन्धकार स्थान पर छा गया था। अपने सैनिकों सहित जो अफ़ग़ानों के भयंकर आक्रमण से बच गये थे वह अदीना वेग से सम्मिलित होने के लिये ईदगाह को हट गया। परन्तु अदीना बेग जो सारे दिन प्रायः अकर्मण्य ही रहा था, अपने स्थान को पहिले ही छोड़ चुका था और किसी सुरक्षित स्थान को भाग गया था। श्रान्त और खिन्न मुईन अब अनिच्छा से नगर में प्रविष्ट हुआ।

१८ मार्च की अन्धकार-भय मयी रात्रि में लाहौर का नगर अतित्रास और कोलाहल से व्याप्त था। भारतीय प्लायकों के साथ कुछ अफ़ग़ान सिपाही भी चोरी से नगर में घुस आये थे और इन्होंने जो कुछ इनके हाथ लग सका उसको लूटना आरम्भ कर दिया था। रात इतनी अँधेरी थी कि कुछ दिखाई न पड़ता था। सब त्रासाकुल थे।

अगले प्रभात मुईनुलमुल्क ने रक्षा का प्रबन्ध किया। उसने १० हज़ार सिपाहियों को—अर्थात् सबको जो पिछले दिन की विपत्ति से बच सके थे—नगर की दीवारों पर चारों ओर से लगा दिया। परन्तु अब्दाली ने, जो युद्ध को समाप्ति का उसके बराबर ही इच्छुक था, शान्ति की शर्तें निश्चित करने के लिए उसको एक सम्मेलन में आमन्त्रित किया। अपने विश्वासपात्र अधिकारियों में से केवल तीन को अपने साथ लेकर

मुईनुल्मुल्क निर्भय होकर शत्रु के शिविर को गया और शाह ने उसका अच्छी तरह स्वागत किया। तब उसने अफ़ग़ानों के बादशाह को आत्म-समर्पण कर दिया और शाह ने मुईन के गौरवमय आचरण और स्पष्ट वार्तालाप से प्रसन्न होकर उसको अपनी ओर से लाहौर और मुल्तान का राज्यपाल नियुक्त कर दिया और अपने सिपाहियों को आज्ञा दे दी कि किसी को न लूटें न तंग करें*।

मराठों से सहायक सन्धि

इस समय बादशाह आक्रान्ता की प्रगति पर सत्रासित होकर निरन्तर सफदर जंग को साग्रह सन्देश भेजता रहा कि यथा शीघ्र आजाय और अफ़ग़ानों के अगले प्रगमन को रोकने का प्रबन्ध करे। परन्तु वजीर ने समय पर कोई गति नहीं की क्योंकि उसकी इच्छा थी कि मुईनुल्मुल्क को सदा के लिये निर्बल कर दिया जाये और बादशाह अपने दरबार की असमर्थता का अनुभव करे। इस बीच में घटना के आठवें दिन २३ मार्च को लाहौर के पतन का समाचार दिल्ली पहुँचा और राजकीय नगर अत्यन्त भय और त्रास से आकुल हो गया। धनी नागरिकों ने भय से सुरक्षित स्थानों को भागना आरम्भ कर दिया और अत्यधिक लोगों ने अपने परिवारों को मथुरा और अन्य क़स्बों को भेज दिया जो भरतपुर के शक्तिशाली जाट शासक के अधिकार में थे। व्यापार बन्द हो गया और कुछ समय के लिये दिल्ली में अन्न का आगमन भी रुक गया†। अब बादशाह अहमदशाह ने अपने हाथ से २३ मार्च को अत्यन्त आग्रहक और क्रोध पूर्ण फ़ुरहान का पत्र लिखा कि वह अविलम्ब दिल्ली वापस आजाय और यह भी आग्रह किया कि एक शक्तिशाली मराठा दल को किसी क़ीमत पर अपने साथ लेता आये। इस पत्र की प्राप्ति पर (२७ मार्च को) सफदर जंग ने बनारस के राजा बलवन्त से अपने झगड़े के

* ता० अहमदशाही १० अ, ३३; दिल्ली समाचार ६६ ब; ता० म० १५३ ब; सियर III ८८६; हुसैनशाह ८७-६-अ; इलियट VIII १६७-६८ में फ़र्हतुन्नाज़िरीन; सारदेसाई-पानीपत १०-११-अन्तिम तीनों में कुछ अशुद्धियाँ हैं। सियर यह ग़लत सोचता है कि लड़ाई ४ मास तक चलती रही। फ़र्हतुन्नाज़िरीन अदीनाबेग पर यह अपराध लगाता है कि उसने पीछे से कारमाल को गोली मार दी।

† ता० अहमद शाही २१ अ और २२ ब।

निर्णय को स्थगित कर दिया, उससे क्षणिक विराम की सन्धि कर ली और द्रुतगामी सन्देश हर मराठा दल से, जो उस समय दक्षिण के मार्ग पर था; प्रार्थना करने के लिये भेजे कि हिन्दुस्तान में ठहर जायें। २ अप्रैल १७५२ ई० को वज़ीर ने स्वयं दिल्ली की ओर अपना प्रयाण आरम्भ किया और कन्नौज के पास मल्हार राव होल्कर और जयाप्पा सिन्धिया से भेंट की। यहाँ बादशाह और पेशवा अपने प्रतिनिधियों क्रमशः वज़ीर सफदर जंग और होल्कर और सिन्धिया द्वारा एक रक्षात्मक सन्धि में सम्मिलित हुये जिसके अनुसार मराठों ने यह भार अपने ऊपर लिया कि अब्दाली आक्रान्ता आन्तरिक शत्रुओं के यंत्रों से साम्राज्य की रक्षा करेंगे। इस सन्धि पत्र की शर्तें ये थीं :—

१—पेशवा ने स्वीकार किया कि ह्रासगामी साम्राज्य को उसके सब शत्रुओं से रक्षा करें चाहे वे विदेशी आक्रान्ता हों—जैसे अब्दाली—चाहे वे देशी विद्रोही हों जैसे भारतीय पठान और राजपूत राजे—और बादशाही भूमियों को उनसे पुनः प्राप्त करे और उनको बादशाह को अर्पित कर दे।

२—उपरिवर्णित सहायता के बदले में बादशाह पेशवा को ५० लाख रुपये देगा—उन में से ३० लाख अब्दाली को भगाने के लिए होंगे और शेष आन्तरिक विद्रोहियों का दमन करने के लिये।

३—बादशाह ने पेशवा को चौथ देना स्वीकार किया—अर्थात् पंजाब और सिन्ध के प्रान्तों से (सियालकोट, पसरूर, गुजरात और औरंगाबाद के महलों सहित जो अब्दाली के दिये गये थे) और हिसार; संभल, मुरादाबाद और बदायूँ के ज़िलों से बादशाही राजस्व कर का एक चौथाई भाग।

४—और बादशाह पेशवा को अजमेर (नरनौल की फ़ौजदारी सहित) और आगरा (मथुरा की फौजदारी सहित) का राज्यपाल नियुक्त करेगा और पेशवा को उक्त पदों के विशेषाधिकार और प्रतिफल का भोग भी प्राप्त होगा।

५—मुग़ल साम्राज्य की प्राचीन संविधियों और रूढ़ियों के अनुसार इन प्रान्तों के प्रशासन के लिये पेशवा अपने को बाध्य करेगा। इन प्रान्तों के विद्रोहियों और राजस्व रोकने वालों से भूमियाँ को वह पुनः प्राप्त करेगा, पुनः प्राप्त भूमियों का अर्ध भाग वह अपने लिये रख लेगा और

बादशाही अधिकारियों और जागीरदारों के स्वत्वों का सम्मान करेगा। अपने सूबों के अन्दर दुर्गों किलों के प्रशासन में वह हस्तक्षेप न करेगा जो सीधे दिल्ली दरबार के अधिकार में थे। और न वह किसी भूमि भाग वा धन पर, जो उसको बादशाही आज्ञा से न दिया गया हो, अपना अधिकार जमायेगा।

६—अन्य बादशाही मनसबदारों की भांति पेशवा की ओर से मराठा सेनापति बादशाही दरबार में उपस्थित होंगे और बादशाह की आज्ञा पर प्रयाण वा अभियान में वे बादशाही सेना में सम्मिलित होंगे।

बादशाह के गौरव और सम्मान को सुरक्षित रखने के लिये एक उपहास्य रीति अपनाई गई। पेशवा की ओर से उसके सेनापतियों मल्हर-राव होलकर और जयप्पा सिन्धिया द्वारा यह सन्धि प्रार्थना-पत्र के रूप में लिखी गई और इस विनम्र निवेदन के साथ कि वह प्रार्थियों की प्रार्थनाओं को स्वीकृत कर ले यह बादशाह की सेवा में उपस्थित की गई। पेशवा ने ऊपर की शर्तों को अन्तरात्मा से पालन करने की प्रतिज्ञा की और ईश्वर और छोटे-छोटे हिन्दू देवी देवताओं को—जैसे सूर्य, धर्मग्रन्थ (वेद), बेलभंडार, तुलसी और गंगा को आह्वान किया गया कि उसके वचन की सत्यता के साक्षी हों। बादशाह अहमदशाह ने तब एक शाही फरमान जारी किया जिसमें बालाजी राव* की सब प्रार्थनायें स्वीकृत करली गईं। यह सन्धि-पत्र मृतप्राय ही रहा। बादशाह ने इसको सम्मान दिया, न इसको कार्यान्वित किया।

पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान को पुनः प्राप्त करने की सफ़दर जंग की योजना का व्याघात

जब वज़ीर अपने मराठा मित्रों के साथ दिल्ली की ओर अपना मन्द और भारी प्रयाण कर रहा था, अब्दाली का वकील क़लन्दर ख़ाँ अफ़ग़ान विजित प्रदेशों—अर्थात् पञ्जाब और मुल्तान के सूबों के नियम पूर्वक विसर्जन की प्रार्थना करने ११ अप्रैल को भारतीय राजधानी में पहुँचा। यद्यपि दिल्ली के विरुद्ध शत्रु के प्रयाण की सम्भावना स्पष्ट न रही थी ऐसा प्रतीत होता है कि इस समय बादशाह और उसके कृपापात्रों को एक

---

*राजवाड़े जिल्द १, १ व ६ , १९६ सारदिसाई इस सन्धि की तिथि १७५० ई० देते हैं यह ठीक नहीं है। (पानीपत प्रकरण)

सर्वथा भिन्न प्रकार के संकट की आशंका हुई। उनको भय हुआ कि यदि वज़ीर समय पर आ गया और आक्रान्ता के विरुद्ध सफल हो गया, उसकी सत्ता की बहुत वृद्धि हो जायगी जिससे उनकी सुरक्षा संकट में पड़ जायगी†। अतः २३ अप्रैल को सफ़दर जंग के दिल्ली पहुँचने के पहिले जावेद खां ने क़लन्दर खां का परिचय दरबार ख़ास में बादशाह से कराया और एक सन्धि-पत्र के निष्पादन का अनुरोध किया जो शाह को सन्तोषजनक हो। पागल बादशाह ने अब्दाली को पञ्जाब और मुल्तान का नियम पूर्वक विसर्जन किया और राजदूत को इन शब्दों में विदाई का सन्देश भेजा: 'मैं अपनी प्रतिज्ञा के प्रति दृढ़ हूँ, परन्तु यदि आपका स्वामी सन्धि के प्रतिकूल जायेगा, मैं लड़ने के लिये भी तैयार हूँ।" माननीय बादशाह को शाह की मित्रता की इच्छा का विश्वास दिलाने के लिये क़लन्दर खां ने बादशाह की चिट्ठी को अपने सिर पर चढ़ाया और कहा जो कोई सन्धि का अवलघन करेगा उस पर ईश्वर का कोप होगा। बादशाह अहमदशाह ने तब राजदूत को अपने देश वापस होने की आज्ञा दी और उसको ५ हज़ार रुपये भी भेंट दी जो उन मूल्यवान सम्मान वस्त्रों के अतिरिक्त थे जो उसको और उसके तीन साथियों को दिये गये थे*।

५० हज़ार की प्रबल मराठा सेना लेकर सफ़दर जंग ५ मई को दिल्ली पहुँचा। उसके ठीक १२ दिन पहिले बादशाह ने अपमानकारी सन्धि पर हस्ताक्षर कर दिये थे। वज़ीर की चिरलालित योजना थी कि अफ़ग़ानों को मराठों की सहायता से पञ्जाब और मुल्तान से निकाल दिया जाये और मराठों को उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त में बादशाह का राज्य-पाल बना दिया जाये। उसका विश्वास था कि इस नीति के दो महत्त्व-शाली परिणाम होंगे। मराठे स्वभावतः अपने नये सूबों में अब्दाली की प्रगति का निरोध करेंगे और बादशाह उस दिशा में अपनी सीमा की रक्षा के कष्ट और व्यय से मुक्त हो जायेगा। जैसे ही उसकी योजना सफल हो सफ़दर जंग काबुल की ओर बढ़ना चाहता था और अफ़ग़ानिस्तान को पुनः मुग़ल प्रभाव क्षेत्र में लाना चाहता था। परन्तु यदि मराठे सन्धि

†ता० अहमदशाही ३४ व सारदिसाई पानीपत परकिरन १८-१६ यद्यपि अब्दाली वीर और योग्य था फिर भी सम्राट के समान नहीं था वह स्वयं दिल्ली की ओर कूच करने का विचार नहीं रखता था।

*दिल्ली समाचार ७०-७१; ता० अहमदशाही ३३ ब-३४ ब०; सियर III ८८६।

की प्रतिज्ञाओं की अवहेलना करके स्वार्थी सिद्ध हों वह समतुलन के रूप में उनके विरुद्ध राजपूतों का उपयोग करे और बख्तसिंह और अन्य राजाओं को नर्मदा की पंक्ति की रक्षा पर जुटा दे कि मराठों की लूट मार की प्रवृत्तियां उस नदी के दक्षिण में सीमित कर दी जायें†। अपने आगमन के दूसरे ही दिन जावेद खां से बड़े आश्चर्य के साथ उसने सुना कि एक पक्ष से कम ही हुआ कि सम्बन्धित प्रान्त शत्रु को विसर्जित कर दिये गये थे। दरबार के नपुंसक आचरण पर वज़ीर को इतना क्रोध हुआ कि वह शहर के बाहर अपनी छावनी में पड़ा रहा और अपनी अनुपस्थिति में की गई अपमान जनक सन्धि का प्रतिवाद किया। उसने बादशाह से आग्रह किया कि लाहौर से काबुल तक का प्रदेश मराठों की सहायता से पुनः प्राप्त किया जाये‡। परन्तु जावेद खां ने वज़ीर की योजना का प्रबल विरोध किया और नवयुवक अहमदशाह को अधिक रुचिकर व्यसनों में मग्न कर दिया। सफदर जंग ने निवेदन किया कि बादशाह की पुनः पुनः उक्त आज्ञाओं के अनुसार वह मल्हर राव होल्कर को ५० लाख रु० के वादे पर लाया था और उसकी माँगें पूरी करनी पड़ेगी चाहे अब्दाली के विरुद्ध अभियान किया जाय या नहीं। परन्तु बादशाह ने कोई चिन्ता न की और यह देख कर कि मराठों के साथ की गई सन्धि रद्दी का काग़ज़ बन गई थी और उसकी सारी योजना सर्वथा व्याघात हो गई थी वज़ीर यमुना तट पर अपने डेरों में उदासीन और आकुपित बैठा रहा।

जैसे ही यह खबर फैली कि उनके साथ की गई प्रतिज्ञा का पूरा किया जाना सम्भव न था मराठों ने आसपास के गाँवों को लूटना आरम्भ कर दिया। प्रत्येक प्रभात को वे छोटे अपहारक जत्थों में अपने डेरों से चल देते और जहाँ तक वे पहुंच सकते देश का विनाश करते और सायं को लूट के माल से लदे हुये वापस आते। दिल्ली के चारों ओर के ४० मील तक के प्रायः सब ही गाँव लूट लिये गये और स्वयं राजधानी उनकी दया के आश्रय थी। राजकीय शहर के सम्भावित भाग्य पर सभीत होकर जावेद खाँ को विवश होकर मराठों की माँगों को पूरा करने के लिये और दरबार को इस जटिल स्थिति से बचाने के लिये एक सामयिक उपाय का आश्रय लेना पड़ा। स्वर्गीय निज़ामुल्मुल्क के ज्येष्ठ पुत्र ग़ाज़ी-

---

†शाकिर ६५।

‡ता० अहमदशाही ३४ब और ४०ब।

उद्दीन ख़ाँ फ़ीरोज़जंग को उसने दक्षिण के ६ सूबों पर नियुक्त करा दिया इस प्रतिज्ञा पर कि वह अपनी नियुक्ति शुल्क के रूप में मराठों के प्रति आर्थिक बन्धनों को पूरा करेगा, जो पारस्परिक सम्मति से ५० लाख से घटकर ३० लाख रु० हो गये थे। मल्हर राव, जो पेशवा को (जो इस समय पूना के पास सलाबत जंग से हार खा गया था) दक्षिण में उसके कष्टों से बचाने का इच्छुक था, तुरन्त फ़ीरोज़जंग को उसके छोटे भाई सलाबत जंग के विरुद्ध जो फ्रेञ्च सहायता से हैदराबाद में शासन कर रहा था, सहायता देने को तैयार हो गया। दक्षिणियों के परिभ्रमक दलों की उपस्थिति से छुटकारा पाने के लिये जावेद ख़ाँ ने मल्हर राव को बादशाही कोष से कई लाख रुपये और दिये और जल्दी से चौदह मई १७५२ ई० को फ़ीरोज़जंग की नियुक्ति का अधिकार पत्र निकलवा दिया। उस पर उसी दिन मराठों ने दिल्ली का सामीप्य छोड़ दिया और फ़ीरोज़जंग ने भी कुछ दिनों के बाद दक्षिण को अपना प्रयाण आरम्भ किया*।

अब चूँकि मराठों का सवाल हल हो गया था और अब्दाली अफ़ग़ानिस्तान को वापस चला गया था। दिल्ली के प्रायक नागरिक अपने घरों को वापस आ गये। सफ़दर जंग को भी, जो इस सारे समय में नदी तट पर छावनी डाले पड़ा हुआ था, बादशाह ने आदेश भेजा कि शहर को वापस आये और अपने महल में रहे। उसको सान्त्वना देने को

*दिल्ली समाचार ७१; ता० अहमदशाही ३५; सियर III ८८६; त० म० १५३ ब; हदीक़तुलआलम II २३५-३६; पत्रे यादि आदि पत्र नं० १०२; पुरन्दर दफ़्तर जिल्द १, २२८।

नासिर जंग की हत्या १५ दिसम्बर १७५० ई० को हुई और फ़ीरोज़ जंग ३१ जनवरी १७५१ ई० को दक्षिण में नियुक्त हुआ। १ फरवरी १७५१ ई० को अपने सूबों के लिये प्रस्थान करने की आज्ञा उसको दी गई, परन्तु चूँकि २ करोड़ ८० लाख रु० का अत्यधिक पेशकश देने में वह असमर्थ था, वह दिल्ली न छोड़ सका। बीच में मीर बख़्शी के पद से ज़ुल्फ़िकार जंग च्युत किया गया। यह पद फ़ीरोज़ जंग को १७ जून को दिया गया। मई १७५२ ई० वह पुनः दक्षिण में नियुक्त किया गया इस वादे पर कि वह मल्हर राव को ३० लाख रु० देगा। (ता० अहमदशाही ३५ और ३७ अ; दिल्ली समाचार ६१, ६३, ७१)।

अपने मालिक की इच्छा से लाभ उठा कर वज़ीर ने प्रार्थना की कि अवध और इलाहाबाद का दो गत वर्षों से बाक़ी राजस्व कर छोड़ दिया जाये क्योंकि वह उन प्रान्तों में पठान उपद्रवों के कारण कुछ भी वसूल न कर सका था। बादशाह से उसने यह प्रार्थना और भी की कि उसके प्रान्तों की जागीर भूमि उसको दे दी जाये, राजेन्द्रगिरि गोसाईं को सहारनपुर का फौजदार और उसके दो अन्य कृपा पात्रों को क्रमशः इटावा और कोड़ा का फौजदार नियुक्त कर दिया जाये। वे दोनों ज़िले उस समय खालसा थे। बादशाह अहमदशाह ने अनिच्छा से ऊपर की ये सब प्रार्थनायें स्वीकृत कर लीं और १२ जुलाई १७५२ ई० को सफ़दर जंग ने सन्तोष की मुद्रा में दिल्ली में प्रवेश किया†।

जावेदखां की हत्या ६ सितम्बर १७५२ ई०।

सफ़दर जंग को अब पता चला कि वह केवल नाम का वज़ीर था। उसके पद का सारा अधिकार और गौरव जावेदखां के हाथों में जा चुका था जो राजमाता की मित्रता के कारण निर्बुद्धि बादशाह को अपनी संरक्षता में रखे हुये था और राज्य का सब महत्वशाली व्यापार सम्पादित करता था। वज़ीर की नियुक्ति के प्रथम दिवस से ही चालाक लोभी षण्ड प्रान्तों में बादशाह के अधिकार को पुनः स्थापित करने की सफ़दर जंग की योजनाओं का खण्डन कर रहा था और उसको पद च्युति और अवनति के उपायों को एक भाव कर रहा था। रुहेलखण्ड अभियान में वज़ीर की अनुपस्थिति में बादशाही सेनाओं के सेनापतियों की नियुक्ति और पद-च्युति, विदेशों से लड़ाई और शान्ति और नीच वंश के निकृष्ट व्यक्ति को महान सामन्त वर्ग में मिलाना—यह सब सत्ता उसने अपहरण करली थी। उसके प्रोत्साहन पर वज़ीर का मित्र और पक्षपाती जुल्फ़िकार जंग (जो उसकी तरह शिया था) मीर बख़्शी के पद से च्युत किया गया और तूरानी दल का स्तम्भ ग़ाज़ी उद्दीनखां फ़ीरोज़जंग रिक्त स्थान की पूर्ति के लिये नियुक्त किया गया; उसी के परामर्श पर पंजाब और मुल्तान अब्दाली को विसर्जित कर दिये गये, और उसके अनुरोध पर उधमबाई का चाचा अमनखां, जो जन्म और पेशा से नीच गायक था, मुअत्क़दुद्दौला की उपाधि से सामन्त बना दिया गया, उसको सप्त हज़ारी का पद दिया गया और दरबार के महत्तम सामन्तों की समानता का स्थान उसको दिया

†ता० अहमदशाही ३८ अ और ब।

गया। यह सब वज़ीर के लिये उत्तेजक था जो राज्य संचालन में साझी के विचार का सहन न कर सकता था। यही नहीं उसको यह अनुभव करने के लिये विवश किया गया कि जब तक इस शक्तिशाली नपुंसक को दरबार में रहने दिया जायेगा वह वज़ीर की भांति कार्य न कर सकेगा। जावेदखां भी नवयुवक बादशाह पर अपना अधिकार और सत्ता छोड़ने को तैयार न था। इस प्रकार ये दोनों बड़े आदमी एक दूसरे की जान के दुश्मन हो गये और प्रत्येक उपयुक्त अवसर की प्रतीक्षा में था कि जब वह दूसरे को दरबार से निकाल दे।

दिल्ली में सफ़दर जंग के प्रत्यागमन के दिन से उसमें और जावेदखां में पूरी तरह अनबन हो गई। १२ जुलाई १७५२ ई० को जब यमुना के दूसरे किनारे पर अपनी छावनी से वज़ीर शहर में अपने निवास स्थान को वापस आ रहा था जावेदखां इस इच्छा से अंगूरी बाग में, जो वज़ीर के घर के रास्ते पर था, जाकर बैठ गया कि वज़ीर को वहां पर उसको सादर प्रणाम करना पड़े। नपुंसक को प्रणाम न करने की इच्छा से जावेदखां की उपस्थिति की चिन्ता न करते हुये वज़ीर सीधा शहर को चला गया। घमण्डी और सर्वशक्ति सम्पन्न षण्ड इसको सहन न कर सकता था। तुरन्त उसने बल्लू जाट को, जो सुयोग से उस समय दिल्ली में था, आमन्त्रित किया, सफ़दर जंग की मित्रता से उसको विमुख कर अपनी ओर आकृष्ट कर लिया, और उसको सिकन्दराबाद का फौजदार नियुक्त कर दिया, जो बादशाह की अपनी जागीर (जेब खास) थी, और उसको यह आदेश दिया कि अविलम्ब उसको उसके साधिकार फौजदार से छीन ले। अपने पदस्थापन के थोड़े दिन पीछे ही जाट नदी पार कर सिकन्दरा पहुंच गया, अधिकारस्थ क़मरअली को पराजित किया, उसके पुत्र को मार डाला और बलपूर्वक उसके हाथों से ज़िले को छीन लिया। तब उसने सन्नास का राज्य आरम्भ किया, जो कुछ मिलता उसको लूट लेता, धनिकों के घरों के फर्श खोदता, और व्यापारियों को उनसे बलपूर्वक धन हरण करने के लिये शारीरिक पीड़ा देता। चूँकि सिकन्दराबाद दिल्ली से केवल ३२ मील था (दक्षिण पूर्व) इन अत्याचारों की खबर उसी रात को बादशाह के दरबार में पहुंच गई। सफ़दर जंग ने, जो दर्शन समय उपस्थित था, जावेदखां से पूछा—'मामला क्या है? यदि आपने बल्लू को फौजदारी दी है, वह इतना नर संहार क्यों कर रहा है और उनकी सम्पत्ति क्यों लूट रहा है? यदि उसने ये बातें बिना आपकी अनुमति के की है, मैं वहां जा रहा

हूँ और उसको बन्दी बना कर लाऊँगा" इस सीधे प्रश्न के उत्तर को टाल कर खान ने कहा कि वह स्वयं उस आदमी को दण्ड देने जायेगा। परन्तु अगले दिन उसने केवल एक छोटी सी टोली अपने जमादार नरसिंहराव की अधीनता में भेजी और उसको यह असंदिग्ध आज्ञा दी कि सिवाय अत्यन्त आवश्यकता के वह युद्ध कदापि न करे। नरसिंह ने बल्लू को सारी लूट सहित दनकौर* के गढ़ को भाग जाने दिया जो बल्लमगढ़ से क़रीब १५ मील पूर्व जावेदखाँ की व्यक्तिगत जागीर में था। राजेन्द्रगिरि के नेतृत्व में वज़ीर की सेना इस बीच में पहुँच गई थी। उसने बल्लू के विरुद्ध आक्रमण आरम्भ कर दिया। परन्तु चतुर जाट ने खुले में रण की विपत् में पड़े बिना कुछ नावें इकट्ठा कीं, यमुना को पार कर लिया और सकुशल बल्लमगढ को वापस पहुंच गया। राजेन्द्रगिरि अपने स्वामी के पास वापस आगया। बादशाह की खालसा भूमि को, जो बिलकुल दिल्ली के पास थी, नष्ट करने का दण्ड बल्लू को देने में समर्थ न हुआ। वज़ीर विवश था। उसने खुले दरबार में जावेदखाँ पर यह आरोप लगाया कि उसने बदमाश को इन अपराधों के करने का प्रोत्साहन दिया है। जावेद खाँ चुप हो गया और शरम से अपना सिर नीचा कर लिया†।

इस बल्लू जाट कथानक ने अग्नि के लिए चिन्गारी का काम किया। वज़ीर ने यह अनुभव कर लिया कि या तो वह अपने निजी जीवन को वापस जाये या षड्यन्त्र के सर्वनाश का प्रयत्न करे। विश्वास घाती हत्या की कला में निपुण सफ़दर जंग ने अत्यन्त आवेश की मूर्छा में निश्चय किया कि जावेद खां की हत्या करा कर वह सदैव के लिये उसके हस्तक्षेप से छुटकारा पा लेगा। अपने आचरण को सफ़दर जंग ने इस आधार पर न्यायानुकूल समझा कि खुले युद्ध में बहुत से प्राणियों और धन की हानि होगी। विद्रोह की सम्भावना से बचने के लिये जो बादशाह के एक बड़े कृपापात्र की हत्या पर हो सकता था उसने गुप्त सैनिक तैयारियां की और अपने अनन्य मित्र भरतपुर के सूरजमल को बुलाया। बल्लू और जयपुर के महाराजा माधवसिंह के एक दस्ते और उनके दलों के साथ सूरजमल आ पहुँचा और दिल्ली से ६ मील दक्षिण, वर्तमान खोकला

---

* सिकन्दराबाद और दनकौर के लिये देखो शीट न० ५३ एच०।

† ता० अहमदशाही २८ ब ४० ब; शाकिर ७१; अन्तिम पुस्तक गलती से सूरजमल की जगह बल्लू देती है।

रेल्वे स्टेशन के समीप कालिका देवी के मन्दिर के पास उसने छावनी डाली। जावेद खाँ और सफ़दर जंग दोनों यह चाहते थे कि ये प्रसिद्ध सज्जन पहिले उनमें से एक ही को मिलें और केवल उसी के द्वारा अपना निवेदन बादशाह से करायें। अन्त में बादशाह की अनुमति से यह निश्चय किया गया कि सफ़दर जंग के निवास स्थान पर वज़ीर और जावेद खां दोनों एक साथ इन सज्जनों से वार्ता करें और इस कार्य के लिये ६ सितम्बर १७५२ ई० रखा गया। इस दिन वज़ीर ने जावेद खां को अपने साथ नाश्ता करने के लिये विनम्र निमन्त्रण भेजा और साथ-साथ अत्यन्त गुप्त रीति और पूर्वावधान से अपने घर में अपने कुछ स्वामिभक्त सैनिकों को नियोजित कर दिया। जावेद खां के आगमन पर वज़ीर ने दिखावे के लिये बड़े सौहार्द से उसका स्वागत किया और दोनों ने साथ-साथ भोजन किया। तीसरे पहर सूरजमल आया और वे कुछ समय तक परामर्श करते रहे। कुछ समय बाद वज़ीर ने अपना हाथ अतिथि के हाथ में दिया और इस बहाने पर कि सूरजमल के विषय में वह उसका विमर्श एकान्त में लेना चाहता है वह उसको मच्छी भवन के नाम से प्रसिद्ध अपने महल के एक वप्र के नीचे गुप्त कमरे को ले गया। जैसे ही उन्होंने परदा उठाया और कमरे में प्रवेश किया सफ़दर जंग ने एक या दो ताने मारे और कर्कश स्वर में जावेद खां के राज्यकार्य में हस्तक्षेप की ओर संकेत किया। परन्तु वार्तालाप के अति कटु होने के पहिले ही वज़ीर अन्तःपुर को जाने के लिये उठ खड़ा हुआ। ठीक उसी समय अली बेग खां जारजी (दूसरे के अनुसार मुहम्मद अली जारजी), राजा पृथीपति के हत्यारे ने, कुछ लौहवस्त्रधारी मुग़लों के साथ पीछे से अकस्मात प्रवेश किया। निमिषमात्र में उसने अपनी कटार जावेद खां के पेट में भोंक दी और उसके साथियों ने एक क्षण में अपनी तलवारों और कटारों से षण्ढ को समाप्त कर दिया। उसका सिर काट कर उन्होंने मकान के नीचे फाटक पर फेंक दिया जहाँ पर आमिष के अनुचर भीड़ लगाये हुये थे। उसका धड़ उन्होंने यमुना के तट पर फेंक दिया। इस दुखद घटना पर जावेद खाँ के आदमी भयभीत हो गये और अत्यन्त संभ्रम में भाग निकले। परन्तु वज़ीर के मुग़लों और शहर के गुण्डों ने उनमें से बहुतों को पकड़ कर लूट लिया*।

*ता० अहमदशाही ४० अ-४१ ब; अब्दुलकरीम १०८ ब-१०६ अ;

जावेद ख़ाँ जिसका यह दुखद अन्त हुआ जन्म से एक नीच कुल का गुलाम था। परन्तु अपनी चिकनी चुपड़ी ज़ुबान, अवसरवादी स्वभावों और रानी उधम बाई से मित्रता के कारण उसने उन्नति की और शाही अन्तःपुर का उपाध्यक्ष हो गया और मुहम्मदशाह के राज्यकाल में बेगम की जागीर का दीवान हो गया। अपनी प्रेयसी के एकमात्र पुत्र अहमदशाह के राज्यारोहण पर उसकी पहली उन्नति ६ हज़ार के मनसब पर हुई, आगे वह दरबार ख़ास का अध्यक्ष नियुक्त हुआ और इसके आगे बढ़ कर अपने पूर्व पदों के साथ-साथ कई और विभागों का कार्य उसको सौंपा गया—अर्थात् गुप्तचर विभाग, बादशाही हाथीख़ाना, जागीरों और नियुक्तियों का स्थिरीकरण, बेगम की जागीर और बादशाह की जेबख़ास। अन्त में वह हफ़्तहज़ारी हो गया और नवाब बहादुर की उपाधि में सामन्त भी बन गया, जो उपाधि पहिले कभी दरबार के किसी सामन्त को नहीं दी गई थी।

यद्यपि सर्वथा निरक्षर और युद्ध या नागरिक प्रशासन से प्रायः अनभिज्ञ नवाब बहादुर ने अहमदशाह के चेतना हीन मस्तिष्क पर इतना असीम प्रभाव और गौरव डाल लिया था कि महामन्त्री सहित सब मन्त्री प्रत्यक्ष रूप से उसके अधीनस्थ हो गये थे। वास्तव में व्यक्तिगत व सार्वजनिक महत्व के सब विषयों में वह बादशाह का एकमात्र परामर्शदाता और प्रतिनिधि हो गया था। बादशाह को भोग विलास में लिप्त रख कर और उसकी कुचेष्टा की तृप्ति के साधन उपस्थित कर वह अपना प्रभाव अपने मालिक पर जमाये रहा। कुलीन सामन्तों ने इसको अपना अपमान समझा जब वे इस नवोदयी दास की आज्ञा-वश कर दिये गये। उसने भी

ता० म० १५४ अ और ब; सियर III ८८०; दिल्ली समाचार ७३; तबसीर २७२ ब; शाकिर ८१; हरिचरण ४०८ अ; म० उ० I ५६७; अहवाल १६५ अ। इमाद ६०; अब्दुलकरीम १०६ अ; और आज़ाद ८५ कहते हैं कि बादशाह ने वज़ीर को आदेश दिया कि जावेद ख़ाँ को मरवा डाले जो असम्भव प्रतीत होता है।

हत्या के समाचार पर वज़ीर के मकान के बाहर आदमियों में बहुत हलचल पैदा हो गई। यह समझ कर कि सूरजमल की भी हत्या कर दी गई है जाट सिपाहियों ने वज़ीर का मकान घेर लिया। जब सूरजमल बाहर आया और उनसे मिला तब ही वे बिखरे (देखो ता० अहमदशाही ४१ ब)।

उनकी अभिजात दूरस्थिता पर अप्रसन्न होकर उनको राजा का कोप भाग बनाने का प्रयत्न किया और अपने चारों ओर छोटे छोटे सरदारों को इकट्ठा कर लिया जिनको उसने ऊँचे पद और जागीरें दिलवाई। परन्तु धन के प्रति उसके असाधारण लोभ के कारण और राज माता उधम बाई के साथ अत्यधिक घनिष्टता के कारण जिसको उसने अपने पूरे वश में कर लिया था, लोग इस षण्ढ से बहुत ही घृणा करते थे। मुगल अन्तःपुर के सब उपचारों और नियमों को चुनौती देते हुए वह रात शाही हरम में अहमदशाह की माता की संगति में बिताता। यह कलंक जनता को मालुम हो गया और दिल्ली की गलियों और बाजारों में लोग स्वच्छन्दता से इस पर बात-चीत करने लगे‡।

सफदर जंग से राज परिवार और दरबार अप्रसन्न, उसका प्रशासन असफल।

जावेद खाँ की हत्या से ऐसे परिणाम पैदा हुये जिनके विपरीत वज़ीर ने आशा की थी। वज़ीर की आशा थी कि सर्वसत्ता सम्पन्न नपुँसक की मृत्यु के बाद वह दरबार में प्रभुता और बादशाह के मन पर पूर्ण अधिकार प्राप्त कर लेगा और जब उसकी योजनाओं का विरोध करने के लिये कोई प्रतिद्वन्दी न रहेगा उसके आत्मोत्कर्ष के प्रयत्नों के लिये पूरा अवसर मिलेगा। परन्तु यह होना न था। तारीखे अहमदशाही का लेखक कहता है :—" जब यह खबर बादशाह को पहुँची वह बहुत चिन्तित हो गया। बीच में वज़ीर का कर्त्ता ख्वाजा नमकीन एक बड़ी सेना लेकर किले को आया, रोज़ेअफ़ज़ू खाँ नाज़िर के द्वारा बादशाह के दर्शन किये और वज़ीर को धृष्ट कृति के लिये अनेक क्षमा प्रार्थनायें अर्पित कीं और पाप शोच के अनेक कारण उपस्थित किये। प्रत्येक सम्भव रीति से उसने बादशाह को बारम्बार विश्वास दिलाया कि वज़ीर उसकी प्रत्येक आज्ञा को राजभक्त सेवक की भाँत सदैव पालन करने के लिये प्रस्तुत है। और वह यह उत्तर लेकर वापस गया..........बादशाह और राजमाता को बहुत शोक है। कहा जाता है कि उधम बाई ने शोक मनाने की रीतियों का पालन किया। उसने श्वेत वस्त्र धारण किये, अपने हाथों

‡जावेद खाँ की जीवनी के लिये देखो—ता० अहमदशाही १४ ब, १५ ब, २० ब, २५ अ, २८ ब, ४० अ; दिल्ली समाचार २६, ४४, ६३, ७२; शाकिर ३४-३५, ६३, ७१; सियर III ८७२, ८८२।

और गले के आभूषण उतार डाले (जैसे कि वह अब विधवा हुई हो)। परन्तु इस विषय में बादशाह ने किसी से कुछ नहीं कहा"*। मृतक की आश्रयदाता गर्वशीला राजमाता ने स्पष्ट रूप से इस पाप पर अपनी अधिक से अधिक अप्रसन्नता प्रगट की और बादशाह ने घृणा और भय से अपना मन वज़ीर की ओर से फेर लिया। सफ़दर जंग की क्षमा प्रार्थनाओं पर भी राजपरिवार सर्वथा उसके विरुद्ध हो गया और बादशाह ने, जो सदा किसी न किसी पर आलम्बन रखने का अभ्यासी था; अब अपनी कृपा वज़ीर के शत्रुओं को देने लगा और अन्त में इन्तिज़ामुद्दौला और उसके साथियों के हाथों में पूरी तरह फंस गया। यह परिवर्तन शनैः शनैः हुआ। इसका उत्तरदायित्व सफ़दरजंग के अगले सात मासों के आचरण पर उतना ही है जितना कि स्वयं आदि अपराध पर।

जावेद खाँ की हत्या के बाद सफ़दर जंग का सर्वतन्त्री आचरण एक स्वार्थी तानाशाह का हो गया। राज्य में और दरबार में अपनी व्यक्तिगत प्रभुता के अतिरिक्त उसको और किसी बात की चिन्ता न थी। इस गर्हित अपराध के दिन ही उसने प्रबन्ध कर दिया कि मृतक की सम्पत्ति और जागीर राज्य के नाम पर ज़ब्त कर ली जाये और यह ध्यान रखने के लिये उसने अपने आदमी नियुक्त कर दिये कि स्वामिपरिवर्तन के काल में कोई चीज़ न हटा दी जायें, न छिपा दी जाये। बादशाही कारख़ाने, जो जावेद खाँ के पास थे, उसने अपने अधिकृतों के नियन्त्रण में कर दिये। इन साधनों से संतुष्ट होकर वज़ीर ने पराढ के दीवान लुत्फ़ अली खाँ और उसके व्यक्तिगत सेवक इस्माईल को पकड़वा लिया कि अपने मालिक के गड़े हुये ख़ज़ाने को बता देवें†। यह कर लेने के बाद उसने बादशाही क़िला पर पूर्ण अधिकार पाने और बादशाह के शरीर को अपने आश्रितों द्वारा घेर लेने का कार्य आरम्भ किया। प्रथम बादशाह के स्वामिभक्त पितृगत नौकर हाजी मुहम्मद के स्थान पर उसने अपने एक विश्वास पात्र सेना नायक अबुतुराब खाँ को क़िलादार नियुक्त किया यह स्पष्ट आज्ञा देकर कि वह किसी को जिसके पास हथियार हों या जो घोड़े पर हो सिवाय अपने दलीय मनुष्यों के क़िला के अन्दर प्रवेश न दे। तब उसने अपने राजभक्तकर्ता राजा लक्ष्मीनारायण के पुत्र

---

* ता० अहमदशाही ४१ ब-४२ अ।

† ता० अहमदशाही-४२ अ।

किशन नारायण को दीवाने खास के फ़ाटक पर नियुक्त किया कि बादशाह की उपस्थिति में प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगा दे*। जब कि ये दोनों कर्ता और उनके सहायक वज़ीर की आज्ञाओं का इतनी कठोरता से अक्षरशः पालन कर रहे थे कि कोई सामन्त या राज्य कर्मचारी जो उसके दल का सदस्य न हो बादशाह तक न पहुँच सकता था या गढ़ के अन्दर न आ सकता था, सफ़दर जंग स्वयं अपने महल में ठहरा रहा जहाँ वह सरकारी लेखकों और कर्मचारियों को बुला लेता और राज्य कार्य वहीं करता‡।

अहमदशाह ने अब अनुभव किया कि बाहर की समाज से अलग महल की चार दीवारों के अन्दर बन्द उसकी स्थिति बन्दी जैसी हो गई थी। शुक्रवार १५ सितम्बर १७५२ ई० को वह क़िले के अन्दर लकड़ी की मस्जिद में नमाज़ पढ़ने गया, परन्तु ख़्वाजा तमकीन खाँ किशन नारायण और एक या दो और वज़ीर के कृपा पात्र पदाधिकारियों और क़ाज़ी के अतिरिक्त और कोई सामन्त राज्य-परिजनों में नहीं था। महल में वापस प्रवेश करते समय बादशाह ने किशन नारायण से पूछा—कोई दरबारी जो दरबार या राजपरिवार के समय उपस्थित होते हैं आज नहीं आया। बादशाही अफ़सर भी जो रक्षा कार्य पर नियुक्त हैं गढ में नहीं आते हैं। क्या क़िलादार उनको आने नहीं देता है या वज़ीरुल्मुमालिक ने उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया है? अबु-तुराब खाँ ने उत्तर भेजा—"जो आता है उसको मैं आने देता हूँ। यदि कोई नहीं आवे तो मैं क्या करूँ।" रविवार १७ सितम्बर को बादशाह ने दरबार किया, परन्तु पूर्व विज्ञप्ति के होते हुये भी शुजाउद्दौला के अतिरिक्त और कोई सामन्त उपस्थित नहीं हुआ। बीमारी के बहाने पर सब ने छुट्टी माँग ली। दूसरे दिन भी दरबार हुआ, परन्तु कोई सामन्त उपस्थित न था। इस दिन बादशाह ने नाज़िर रोज़ अफ़ज़ू खाँ को कुछ पद बख़्शे, जैसे बादशाह के लिये पेयजल, पान और इतर आदि का अध्यक्ष, जो सब उसकी मृत्युपर्यन्त आवेद खाँ के पास थे और जो सदैव अत्यन्त राजभक्त आदमियों के हाथों में ही सौंपे जाते थे। आवेद खाँ के आधीन मुख्य और महत्वशाली विभाग वज़ीर ने अपने आदमियों को

---

* ता० अहमदशाही-४२ ब।
‡ ता० अहमदशाही ४२ अ।

दिये, और तब भी उसका चित्त शान्त न हुआ। उसको सन्देह हुआ कि उसकी पक्की शत्रु, उधम बाई तूरानी और पठान सामन्तों से गुप्त पत्र व्यवहार कर रही थी। अतः शाही अन्तः पुर के फाटकों पर बराबर सख्त पहरा रखने और राजमाता के सम्मुख प्रवेश पर प्रतिबन्ध लगाने के अलावा सफ़दर जंग ने आठ महिला गुप्तचर गृह दासियों के रूप में शाही अन्तः पुर में निवास करने को भेजा कि वे उन सब पत्रों के अन्तर्गत विषय का पता लगायें जो बाहर जाते थे। धृष्ट कार्य पर उधम बाई को बहुत क्रोध हुआ और उसने पुरस्कार देकर उन स्त्रियों को निकाल दिया पहिले की अपेक्षा और भी अधिक सन्देह में पड़कर सफ़दर जंग अपने घर पर बिगड़ कर बैठ गया और कहला भेजा कि वह दरबार में उपस्थित न होगा जब तक कि उसको उसकी सुरक्षा का विश्वास न दिला दिया जाये। साधन हीन जैसा कि अहमद शाह था उसको वज़ीर की प्रतिज्ञा के आगे झुक जाना पड़ा। अपनी माता को अपने साथ लेकर शनिवार २३ सितम्बर को वह वज़ीर के मकान पर उस से मिलने गया, उसको अपने विश्वास और समर्थन का उसको निश्चय कराया, उसको क़िले को लाया और दीवान खास के फाटक पर उसको वापस जाने की आज्ञा दी। तब भी प्रतीत नहीं होता है कि वज़ीर को पूरा सन्तोष हुआ। अतः बादशाह को और भी झुकना पड़ा और वचन देना पड़ा कि बिना उसकी स्वीकृति के वह कोई नियुक्ति नहीं करेगा। तदानुसार वज़ीर ने अपने कई कृपा पात्रों को क़िले में और उसके बाहर भी छोटी परन्तु महत्वशाली जगहों पर नियुक्त कर दिये और पुराने शाही सेवकों को विवश होकर उनके लिये अपनी जगहें खाली करनी पड़ीं। २६ सितम्बर को जावेद खाँ के चार महत्वशाली पद बादशाह ने वज़ीर के पुत्र शुजाउद्दौला को दिये—अर्थात् अहदियों की बख्शीगिरी, नियुक्तियों और दोनों के स्थिरीकरण की अध्यक्षता, दण्डधरों का आधिपत्य और ज़िलौ खास (सवारी) का प्रबन्ध। जावेद खाँ की हत्या के बाद पहिली बार सफ़दर जंग पहिली अक्तूबर (रविवार) को दरबार को गया। इमादुल्मुल्क और समसमुद्दौला (मुहम्मद शाह के मीर बख्शी खाँ दौराँ समसमुद्दौला का पुत्र) भी जो ऊपर से अपने को वज़ीर के दलीय सदस्य घोषित करते थे आज दरबार में उपस्थित हुए, परन्तु बीमारी के बहाने पर इन्तिज़ामुद्दौला आज भी अनुपस्थित रहा। प्रधान मन्त्री के पद पर आसीन होने

के बाद अब पहिली बार वज़ीर ने पूर्ण सत्ता का उपभोग किया और अगले कुछ मासों में जिन पदों को उसने आवश्यक समझा उनको अपने नियेजितों से भर दिया। फीरोज़जंग की मृत्यु पर उसने उसके पुत्र शिहाबुद्दीन को अमीरुलुमारा इमादुलमुल्क गाजीउद्दीन खाँ बहादुर की उपाधि से मीर बख्शी के पद पर १२ दिसम्बर १७५२ ई० को नियुक्त करवा दिया। पहिली जनवरी १७५३ ई० को उसका पुत्र शजाउद्दौला, उन अनेक पदों के साथ साथ जिन पर वह पहिले से ही नियुक्त था, गुसलखाने का अध्यक्ष नियुक्त किया गया। १४ को उसने साहुल्ला को चतुर्थ मीर बख्शी के पद पर पहुँचा दिया और उसके तीन दिन बाद ही उसने शुजाअद्दौला के साले मिर्ज़ा अली खाँ को तृतीय मीर बख्शी के पद पर बिठा दिया। इस तरह बादशाह के शरीर के चारों ओर वज़ीर के आश्रितजन जम गये और दरबार उसके नातेदारों, कृपापात्रों और चाटुकारों से भर गया। अहमदशाह चौंक उठा, परन्तु कुछ समय कुछ भी करने की हिम्मत न कर सका*।

दरबार ने और प्रान्तों में अधिकांश विभुत्व और शक्तिशाली सामन्तों को पहिले से ही सफ़दर जंग ने अपना विरोधी बना लिया था। अपने सहकारियों को सन्तुष्ट रखने के बजाय उसने अपने प्रशासन के आरम्भ से यह नीति अपनाई कि किसी को धनी और शक्तिशाली न बनने दिया जावे†। वज़ीर के आसन बैठने से कुछ महीने भी नहीं बीते थे कि उसने इन्तिज़ामुद्दौला से सरहिन्द का ज़िला अपहरण कर लिया जिसका राजस्व ५ हज़ार तूरानी मुग़ल सैनिकों के वेतन के बदले में उसी दिया गया था। फ़ीरोज़ जंग, इन्तिज़ामुद्दौला और कुछ अन्य तूरानी सामन्तों की पैतृक जागीरों का उसने अपने नाम पर संक्रमण प्राप्त कर लिया था—इस प्रकार उसने सब के सब मध्य एशिया के सुन्नी मुग़लों को अपने विरुद्ध कर लिया था‡। इसी तरह उसने रुहेला और बंगश पठानों और उनके सजातियों को, जो उस समय तूरानियों के बाद भारतीय मुस्लिम आबादी का सब से बड़ा अंश थे, अपना कट्टर शत्रु बना लिया था। निस्सन्देह इस समय भी सफ़दर जंग को कुछ सुन्नी अफ़सरों की सेवायें प्राप्त थीं,

*ता० अहमदशाही ४२ ब-४३ ब; दिल्ली समाचार ७३७५।
†ता० अहमदशाही १६ अ।
‡पूर्ववत्।

परन्तु वे थोड़े से ही स्वार्थी व्यक्ति थे। भारतीय मुसलमानों का केवल एक वर्ग, जिसकी सहायता पर वह भरोसा कर सकता था, उसके सहधर्मी शियों का अल्प संख्यक दल था। इस वर्ग में इस संकट के समय में केवल एक बड़ा सामन्त सादत ख़ाँ ज़ुल्फ़िक़ार जंग था जो कुछ समय पहिले मीर बख्शी के पद से च्युत कर दिया गया था और जो १७५१ ई० से बलात् अवकाश और दरिद्रता में रह रहा था। इस प्रकार दरबार में वज़ीर का कोई शक्तिशाली मित्र न था। प्रान्तों में भी उसके थोड़े से मित्र थे। उसने मूर्खतावश १७४२ ई० से ही अपने पड़ोसी और सहधर्मी बंगाल के अलीवर्दी ख़ाँ ऐसे व्यक्ति को रुष्ट कर रखा था।

जन साधारण भी उतना ही असन्तुष्ट थे। मुहम्मद शाह के लम्बे परन्तु निर्बल राजत्वकाल में दिल्ली की सरकार धीरे-धीरे दिवालिया हो गई थी और बादशाह प्रान्तीय राज्यपालों का अधिपति न रह गया था। अब आत्मोत्कर्ष की नीति जिसका अनुकरण एक रूप में सतत् सफ़दर जंग और जावेद ख़ाँ ने किया था और सफ़दर जंग का अपने प्रान्तों के हितों को साम्राज्य से बढ़ कर समझने के कारण प्रशासन टूट गया था। वज़ीर, सर्वसत्ता सम्पन्न नपुंसक और उनके कृपापात्रों ने अपने अपने लिये बड़ी-बड़ी जागीरें बना ली थीं और उनके लोभी कर्तागण शाही राजस्व कर ग्राहकों की अपेक्षा जनता के लिये अधिक पीड़क सिद्ध हुये। अवध और इलाहाबाद में छोटे-छोटे जागीरदारों की रियासतों का, जो उनकी आजीविका का एकमात्र साधन थीं, उनका पट्टा अपने नाम प्राप्त कर, सफ़दर जंग ने अपहरण कर लिया था और इटावा और कोड़ा जहानाबाद के ज़िलों में ख़ालसा ज़मीन पर बिना स्वत्व के अधिकार कर लिया था। उसने राजेन्द्र गिरि गोसाईं ऐसे अपने कृपापात्रों को उपजाऊ ज़िले दे दिये थे जिनके कर संग्रह में कठोर निष्ठुरता से मुसलमान ज़मींदारों और धर्म परायण सैयदों को बहुत रोष आया क्योंकि पहिले अधिकारियों से उनके साथ अपेक्षाकृत सद्व्यवहार होता था*। राजस्व मन्त्री की हैसियत से अपने सरकारी पद का उपयोग करके सफ़दर जंग साम्राज्य की आय का अपहरण कर रहा था और उसको अपने व्यक्तिगत सैनिक संस्थापन पर व्यय कर रहा था जब कि शाही लेखक, गृह सेवक और सैनिक क्षुधा पीड़ित रहते और दो वर्षों से उनका वेतन उनको नहीं

*ता० अहमदशाही ४४ ब-४५ अ।

मिला था। जब शाही सेना की न्यायोचित माँगों पर कोई ध्यान न दिया जाता सिपाही प्राय: हलचल पैदा कर देते, क़िले में आगमन और प्रत्यागमन रोक देते, पानी का संचय काट देते और तब भी उनके हिसाब साफ न हो सकते। अपने हृदय की व्यथा में शाही इतिहासकार शोक करता है—साम्राज्य का सर्वनाश हो गया। खालसा से जो चाहता वज़ीर ले लेता और शाही कोष में कुछ न आता। उसने अपने स्वामी को दरिद्री बना दिया..........वज़ीर अपना घर बनाने में व्यस्त था और साम्राज्य को नष्ट करने पर वह तुला हुआ था*।

देश की आन्तरिक और बहि: आक्रान्ताओं से रक्षा के प्रति वज़ीर की उदासीनता और असमर्थता जनता के असन्तोष का सब से बड़ा कारण था। मराठे शाही राजधानी को धमकी दे रहे थे और अहमदशाह अब्दाली पंजाब पर नया आक्रमण करने का विचार कर रहा था। २२ अक्तूबर १७५२ ई० को ३,५०० सिपाहियों की एक मराठी सेना आई और तालकटोरा पर छावनी डाल दी†। शाही गुप्तचरों ने नवम्बर में सूचना दी कि अपने लाहौर के मार्ग पर अब्दाली शाह जलालाबाद पहुँच गया है और उसका सेनापति सिन्धु तट पर आ गया है। लाहौर के नागरिक भयभीत हो गये थे और उनमें से अधिक धनी लोग अपने परिवारों और बहुमूल्य सामान के साथ दिल्ली भाग आये थे। भारतीय राजधानी भी भयाकुल थी। दरबार के एकमात्र सत्ता सम्पन्न सामन्त सफ़दर जंग ने अब बादशाह से प्रार्थना की कि आक्रान्ता की प्रगति का विरोध करने के लिये वह स्वयं प्रयाण करे। साधनहीन मुग़ल बादशाह ने उत्तर दिया—"मेरे पास न तो युद्ध सामग्री है और न विश्वास योग्य सेना। यदि मेरे व्यक्तिगत प्रयाण से कोई लाभ हो सकता है, मैं तैयार हूँ परन्तु अकेला। इस समय प्रशासन के आप एकमात्र केन्द्र हैं। सारा देश, उसकी आय और व्यय आपके हाथों में है। सैनिकों के वेतन चुकाने के लिये धन संग्रह का प्रयत्न करें और मेरे प्रयाण के लिये युद्ध सज्जा प्रस्तुत करें‡।" वज़ीर उस समय चुप रहा, परन्तु कुछ दिन पीछे जब शत्रु की प्रगति की किंवदंतियाँ फिर से प्रचलित हुईं, उसने १८ दिसम्बर को

---

*ता० अहमदशाही ४४ ब; शाकिर ३४-३५।

†ता० अहमदशाही ४४ अ।

‡ता० अहमदशाही ४५ ब।

प्रस्ताव किया कि बादशाह उसके विरुद्ध फिर १६ को प्रयाण करे जो दिन ज्योतिषियों ने निश्चित किया था। राजमाता से परामर्श करके बादशाह ने उत्तर भेजा—"न मेरे पास और न वज़ीर के पास धन है। देश, सेना और कोष की दशा से वह परिचित है। यदि प्रयाग से प्रयाण की तैयारी करना सम्भव हो तो मुझे सूचित किया जाये कि मैं प्रस्थान आरम्भ करूँ*।" वज़ीर फिर कोई उत्तर न दे सका। इस तरह दो से अधिक मास व्यर्थ गये। इस बीच में अफ़ग़ानों का बादशाह अटक पहुँच गया और अपने एक कार्यकर्ता को ५० लाख रु० मांगने भेजा जो अप्रेल १७५२ ई० के सन्धि-पत्र के अनुसार दिल्ली दरबार ने कर रूप में देना स्वीकृत किया था। यह आदमी १३ अप्रेल १७५३ ई० को† दिल्ली पहुँचा और १५ को बादशाह के सम्मुख उपस्थित किया गया। २० फरवरी को ४ हज़ार की एक और मराठी सेना दिल्ली आ गई थी और कालिका देवी की पहाड़ी के पास छावनी डाल कर ठहर गई थी, और सफ़दर जंग ने जो उत्तर-पश्चिम से पठान आक्रान्ता का सामना करने सदा तैयार रहता था, बादशाह से एक बार फिर आग्रह किया कि अब्दाली के विरुद्ध अभियान का नेतृत्व करे। अपनी ३० हज़ार सेना बादशाह की अधीनता में रखने को वह सहमत हो गया और उसे वचन दिया कि एक पक्ष में वह ३० हज़ार मराठों की सेवा प्राप्त कर लेगा। परन्तु बादशाह और इन्तिज़ामुद्दौला वज़ीर के उच्छेद का षडयन्त्र रच रहे थे और उसकी योजना पर कोई ध्यान न दिया गया। अब सफ़दर जंग ने पठान राजदूत को २२ मार्च को विदा किया और अपने स्वामी के विरुद्ध गृह-युद्ध की तैयारियाँ करने लगा‡।

सफ़दर जंग के विरुद्ध षडयन्त्र, वह दिल्ली छोड़ने पर विवश: मार्च १७५३ ई०

सफ़दर जंग की तानाशाही के विरुद्ध सार्वजनिक रोष इस समय दिल्ली में अपनी पराकाष्ठा को पहुँच गया था और अब वह निष्ठुर दैव गति में फँसने वाला था। गत कुछ मासों से उसके विरुद्ध एक दल धीरे-धीरे परन्तु बराबर अग्रसर हो रहा था और एक गुप्त षडयन्त्र भी उसका पतन प्राप्त करने के लिये चल रहा था। कर्मदक्षता के प्रति अपने स्वामी-

*ता० अहमदशा० ४६ अ।

†दिल्ली समाचार ७६।

‡ता० अहमदशाही ४७ ब, ४८ ब; पेशवा दफ्तर संग्रह जिल्द XXI पृ० ५३, ५४, ५५।

विक वैराग्य से और वज़ीर की मर्मच्छेदी दासता से विवश होकर अहमदशाह ने जावेद खाँ की हत्या के पीछे सारा प्रशासन कार्य अपनी माता पर छोड़ दिया था और अन्तःपुर के आनन्दों में सान्त्वना की खोज कर रहा था। उधम बाई इस तरह सरकार की वास्तविक अभिनेत्री हो गई थी। सब महत्वशाली राज्य व्यापार का वह सम्पादन करती और पर्दा के पीछे से उच्च अधिकारियों से वार्तालाप करती*। सफदर जंग की कट्टर शत्रु उसने अपनी सर्वोपरि अधिकार और सत्ता का उपयोग अपने नेतृत्व में वज़ीर के विरुद्ध एक संश्लेष निर्माण में किया। इन्तिज़ामुद्दौला से उसकी चतुर माता शोलापुरी बाई द्वारा उसको प्रोत्साहन मिलता रहा कि अपने दोनों के शत्रु के विरुद्ध वह द्रुत और शक्तिशाली प्रहार करे। इमादुलमुल्क, हिसाम खाँ, समसमुद्दौला (मुहम्मद शाह के समय के खाँ दौराँ समसमुद्दौला का पुत्र), अक़ीबत महमूद खां और कुछ अन्य सामन्त धीरे-धीरे मिला लिये गये और यद्यपि वे अपने को ऊपर से वज़ीर के पक्ष-पुरुष कहते थे किन्तु उपकारक के विरुद्ध गुप्त रूप से षड्यन्त्र में सम्मिलित हो गये। यह निर्णय किया गया कि सफदर जंग के पुत्र को और उसके अनुजीवी अबू तुराब खाँ को उनके पदों—मीर आतिश और क़िलह दार—से हटा कर वे पहिले बादशाह को मुक्त करें और क़िले में वज़ीर के प्रभाव को समाप्त करें; और इसके बाद वे अन्य उपाय एक साथ करें कि वज़ीर की पद-च्युति और पतन प्राप्त हो जायें।

बादशाह और राजमाता के पूर्ण समर्थन के आश्वासन पर इन्तिज़ामुद्दौला ने, जो अब तक केवल गुप्त रूप से वज़ीर के विरुद्ध कूट प्रबन्ध एवं षड्यन्त्र कर रहा था, अब इसको आवश्यक न समझा कि अपनी शत्रुता को छुपाये रखे। जब सब दूसरे सामन्त दरबार में उपस्थित होने पर तैयार कर लिये गये वह दृढ़तापूर्वक गढ़ में प्रवेश करने से इन्कार करता रहा इस आधार पर कि उसका अन्दर और बाहर का सब प्रबन्ध पूर्णतया वज़ीर के हाथों में है और आगामी संघर्ष के पूर्वज्ञान से उसने सिपाही भरती करना आरम्भ कर दिया। वज़ीर भी सतर्क और सावधान हो गया और इन्तिज़ामुद्दौला के मकान के पास से उसने निकलना बन्द कर दिया इसलिये कि वह कहीं अन्दर से आक्रमण न करे या गोली

*ता० अहमदशाही ४६ अ।

†इमाद २२।

न चलाये। अतः दिल्ली में निर्बन्ध किम्वदन्तियाँ फैल गईं और लोग प्रतिदिन टक्कर की आशंका करने लगे। बाहर से वज़ीर का दृढ़ समर्थक होने का बहाना करते हुये अहमदशाह इन्तिज़ामुद्दौला से गुप्त सहानुभूति रखता था और उसको अपनी सहायता का वचन दिया। बिना इस वास्तविक अभिप्राय के वह प्रतिद्वन्दियों में प्रत्यक्ष से संधाता प्रतीत होता था। एक दिन सफ़दर जंग ने चार बाग़ को आनन्द के लिए जाना निश्चय किया। इसकी सूचना पाकर इन्तिज़ामुद्दौला ने भी अपने सैनिकों को सुसज्जित किया और वहाँ जाने को तैयार हो गया। परन्तु वज़ीर ने कुछ सोच समझकर प्रयाण के विचार को छोड़ दिया और इस तरह उस दिन टक्कर न हुई। किसी और दिन जब शुजाउद्दौला वज़ीराबाद की ओर शिकार को गया, तूरानियों का नेता भी घोड़े पर सवार होकर एक मुग़ल कप्तान के घर को गया। जनता ने तुरन्त वैरभाव के विस्फोट की आशंका की और नगर सम्भ्रम और कोलाहल से व्याप्त हो गया जो इन्तिज़ामुद्दौला के अपने महल को वापसी पर ही शान्त हुआ। १२ मार्च को आधी रात में सफ़दर जंग ने ख़्वाजा तमकीन को बादशाह को चेतावनी देने भेजा कि चूँकि इन्तिज़ामुद्दौला उस पर निशाक्रमण की तैयारी कर रहा था उसने भी अपने सिपाहियों को तैयार कर लिया है। बादशाह के प्रश्न करने पर इन्तिज़ामुद्दौला ने लिखित उत्तर भेजा कि आक्रमण की तैयारियाँ करना तो दूर रहा उसने किसी ऐसी चीज़ का स्वप्न भी नहीं देखा था। उसने यह भी लिखा कि मुट्ठी भर चौकीदारों को छोड़कर उसके पास कोई सिपाही नहीं थे। सफ़दर जंग को उत्तर से सन्तोष न हुआ और दोनों प्रतिद्वन्दियों ने युद्ध की तैयारी में अपनी सेनाओं को शहर में केन्द्रित करना आरम्भ कर दिया। इससे सारी दिल्ली भयग्रस्त हो गई। और अगले ही प्रभात को व्यापारियों ने अपना सामान दूकानों से अपने घरों पर लाना शुरू कर दिया। अधिक धनी नागरिकों ने अपने घर बार की रक्षा के लिये सिपाही नौकर रख लिये। मराठे इन्तिज़ामुद्दौला के मकान के सामने आ डटे और शाही मनसबदार और सब सब प्रकार के सैनिक गढ़ की रक्षा के लिये, यदि उपद्रव शुरू हो जाये, क़िले में इकट्ठे हो गये। बादशाह ने प्रतिद्वन्दियों को बार बार आज्ञायें भेजी कि अपनी सेनाओं को हटा दें। सर्व प्रथम इन्तिज़ामुद्दौला ने आज्ञा का पालन किया और १४ को अपने सिपाही हटा दिये। १६ को वज़ीर ने इसका अनुकरण किया और तब शहर को

हलचल गायब हो गई* ।

इन्तिज़ामुद्दौला की स्पष्ट घोषणा से कि वह शक्तिशाली वज़ीर के विरुद्ध है और उसने इस विषय पर अन्त तक लड़ने का निश्चय कर लिया है—साम्राज्यवादियों के पक्ष को बल प्राप्त हुआ। एक बड़े सामन्त द्वारा विरोध-केन्द्र स्थापित देख कर, असन्तुष्ट मनसबदार और उच्चपदाधिकारी, जो चुपचाप उपयुक्त अवसर की प्रतिज्ञा कर रहे थे, अब गुप्त रूप से इन्तिज़ामुद्दौला के साथ हो गये। सफ़दर जंग के शत्रुओं ने तमकीन खां के १३ मार्च को अर्ध रात्रि में ससैन्य गढ़ में प्रवेश को बढ़ा कर चतुर सैनिक चाल का रूप दे दिया जिसका उद्देश्य बादशाह और उसकी माता को बन्दी बनाना था† । यह भीरू और अकर्मण्य अहमदशाह को कुपित करने के लिये और यह प्रतिज्ञा करने के लिये पर्याप्त था कि शुजाउद्दौला को मीर आतिश के पद से च्युत कर और यह जगह अपने राजभक्त अनुचर हिसाम खां समसमुद्दौला को देकर वह सदा के लिये गढ़ पर से वज़ीर के अधिकार का अन्त कर दे। परन्तु सफ़दर जंग की अचल शत्रुता के भय से यह पद खान ने लेने से इन्कार कर दिया। इसी तरह दो और सामन्त सादुल्ला खां और सैयद अली खाँ भी हिम्मत न कर सके। अतः शुजा-उद्दौला को स्पष्ट पद च्युत करने की नीति छोड़ दी गई। और उसके स्थान पर चतुर और छामायिक उपाय द्वारा उसी उद्देश्य को गुप्त रीति से प्राप्त करने की नीति अपनाई गई। १७ मार्च जिस दिन उस वर्ष का हिन्दुओं का होली का त्योहार था बादशाह ने शुजाउद्दौला के नायब, मीर आतिश मुसवी खाँ को बुलाया और इन शब्दों में उस पर फटकार लगाई :—"क़िले का आवश्यक शाही नौकरों के क़िले में प्रवेश पर निषेध लगाता है मुझ से निवेदन किया गया है कि वज़ीर के आदमी गढ़ में आते हैं और आप के कमरे के पीछे बैठ जाते हैं और जिस किसी को चाहते हैं आने देते हैं। आप क्या कहते हैं?" मुसवी खाँ डर गया और क्षमा प्रार्थना के थोड़े से शब्दों के अतिरिक्त कुछ न बोल सका। उसके अधिकार को खोखला करने के लिये यह शाही उपालम्भ पर्याप्त था और शाही तोपखाना के अधिकारियों ने आज्ञा के लिए उसके पास

---

* ता० अहमदशाही ४८ अ और ब।

† त० म० १५५ ब-१५६ अ ; शाकिर ७२

जाना बन्द कर दिया*।

परन्तु यह केवल प्रस्तावना थी उस सावधानी से प्रयोजित चतुर सैनिक चाल की जिसको साम्राज्यवादियों ने उसी सायंकाल को (१७ मार्च) कार्यान्वित करने का निश्चय कर लिया था। चौथाई रात भी न बीती थी जब उन्होंने झूठा मयाक्रंदन फैला दिया कि बड़ी सेना लेकर वज़ीर किले पर आक्रमण करने और उसमें प्रवेश करने आ रहा है। इससे शहर और किले में बड़ी हलचल मच गई। शाही मनसबदारों, अधिकारियों और सिपाहियों ने उसकी रक्षा के लिये शस्त्र धारण कर लिये और तोप खाने के सब अधिकारियों और सिपाहियों को बादशाह ने आज्ञा दी कि क़िले के बाहर युद्ध व्यवस्था में अपने को सुसज्जित कर लें। क़िलादार अबु तुराब ख़ाँ जो स्वयं बाहर अपने स्थान पर था, भाग कर वज़ीर के घर को गया कि उसको वस्तुस्थिति की सूचना दे। वह अभी चला ही था जब सफदर जंग के वे आदमी जो अब तक क़िले के अन्दर थे क़िले से बाहर निकाल दिये गये और अहमदशाह की आज्ञा पर फाटक बंद कर दिये गये। इस तरह नीति के एक साहसी वार से सफ़दर जंग का अधिकार से क़िला छीन लिया गया। क़िले के प्राकारों पर लगी हुई बड़ी तोपें अब भर दी गईं और सफदर जंग के मकान की ओर उनके मुँह मोड़ दिये गये†।

जब १८ मार्च का प्रभात हुआ लोगों को सत्य का पता चला शहर में तुरन्त कोलाहल बन्द हो गया। जब सफदरजंग ने देखा कि वह सैनिक चाल में परास्त हो गया है और उसका महल क़िले की तोपों की मार में है, वहां से हट कर वह दूसरे मकान को चला गया जो उसने कुछ दूरी पर बनवाया था। उसको सान्त्वना देने के उद्देश्य से बादशाह ने उसको उस दिन एक अपनी पहनी हुई पगड़ी भेंट की जिसको उसने सादर स्वीकार किया। परन्तु उसने बादशाह को एक प्रार्थना पत्र भेजा जिसमें अपने प्रान्तों को जाने की अनुमति मांगी। उसने लिखा:—"चूँकि आज कल

---

* ता० अहमदशाही ४८ ब।

† ता० अहमदशाही ४६ अ; दिल्ली समाचार ७६; त० म० १५५ ब-१५६ अ; सियर III ८६१; अन्तिम ग्रंथ कहता है कि बादशाह ने मुसवी ख़ाँ को आज्ञा दी थी कि वज़ीर को एक पत्र पहुंचा दे और जब वह चला गया उसके सब आदमी बाहर निकाल दिये गये।

हुज़ूर का दिल मुझसे हटा दिया गया है यह अच्छा होगा कि जहां कहीं हुज़ूर की इच्छा हो, मुझे जाने का हुकुम दिया जाये। मेरे नक़द धन से और मेरी सम्पत्ति से हुज़ूर मेरे सिपाहियों का वेतन चुका दें और शेष शाही खज़ाने में रख लिया जाये। आप वज़ारत और अन्य पद जिसको चाहें दे देवें"। वज़ीर को इस विचार से धोखा हुआ कि इससे भीरु बादशाह डर जायेगा और इससे उसके प्रति उसका आचरण बदल जायेगा। परन्तु अहमदशाह ने आशातीत सौभाग्य की भांति उसका स्वागत किया, उसको उसके शब्द पर पकड़ लिया, शीघ्र ही उसकी प्रार्थना स्वीकृत करली और उसको अपने सूबों के जाने की अनुमति देदी। परन्तु एक शब्द भी उसके पदों और सम्पत्ति के बारे में न कहा। वज़ीर ऐसी आशा के लिये तैयार न था परन्तु अब उसके पास आज्ञापालन और खुले विरोध के बीच में और कोई उपाय न था। अतः २२ मार्च को उसने अब्दाली के कर्ता को अपना प्रणाम भेजा और २३ को दिल्ली के उत्तर ३ मील पर यमुना के किनारे वज़ीराबाद को उसने अपने अग्र डेरे भेज दिये। परन्तु यातायात के साधनों और कुलियों की कमी के बहाने पर उसने अपना प्रयाण उस दिन आरम्भ न किया*।

१७ मार्च की सफल सैनिक चाल के दिन और एक बार उसके पहिले भी सफ़दर जंग ने इन्तिज़ामुद्दौला के साथ वैरशमन के दो प्रयत्न एक दूसरे के बाद किये और उनके असफल होने पर वह उससे जावेदखां का तरह से छुटकारा पाना चाहता था। इन दोनों अवसरों पर उसने इमादुलमुल्क को, जिसको उसने साम्राज्य में सबसे अधिक महत्वशाली और उत्तरदायित्व पूर्ण दूसरे स्थान पर चढ़ा दिया था, अपना दूत बनाकर इन्तिज़ामुद्दौला के मकान पर भेजा कि उससे शर्तें तय करले। परन्तु इस कृतघ्न नवयुवक ने अपने मामा (इन्तिज़ामुद्दौला) से एक गुप्त समझौता कर लिया और यद्यपि वह खुले में अपने को वज़ीर का अनुचर कहता था वह वास्तव में अपने उपकारी के सबसे भयानक शत्रु से मिल गया था। संकट का पता लगने पर इन्तिज़ामुद्दौला ने उसके मकान पर आने के वज़ीर के

---

* ता० अहमदशाही ४६ अ—४८ ब; अब्दुलकरीम १०६ ब; शाकिर ७२; हरिचरण ४८ ब; त० म० १५६; सियर III ८६१।

आमन्त्रण को स्वीकार करने से इन्कार कर दिया†। वह, इमादुल्मुल्क और समसमुद्दौला बादशाह की सहमति से सफ़दरजंग के प्राणों के विरुद्ध प्रतिषड्यन्त्र रचना आरम्भ कर दिया। उनकी योजना थी कि सफ़दर जंग को शाही क़िले में वार्तालाप के लिये आमन्त्रित करें, उसको भगाले जायें और इन्तिजामुद्दौला को वज़ीर नियुक्त करादें। उन्होंने मराठा वकील बापूजी महादेव से प्रार्थना की कि ५ हज़ार सैनिक क़िले को भेजदे जो संकट का सामना करने के लिये तैयार रखे जायें। प्रार्थना का पालन हुआ। परन्तु वज़ीर के सौभाग्य से बादशाह की सौतेली माता मलिका ज़मानी को षड्यन्त्र की खबर लग गई थी, उसने सफदर जंग को एक गुप्त पत्र भेजा, जिसमें उसको विश्वासघात की सूचना दी और चेतावनी दी कि किले में न आये*।

---

† ता० अहमदशाही ४६ अ० और ८२ ब; त० म० २५५ अ० और १५५ ब।

मई १७५२ ई० दक्षिण जाते हुये फ़ीरोज़जंग ने अपने बाल पुत्र शिहाबउद्दीन को सफ़दर जंग के सुपुर्द कर दिया था। वज़ीर ने बालक को नायब मीर बख्शी नियुक्त करा दिया था। फीरोज़ जंग का औरंगाबाद में देहान्त हो गया और जब २६ अक्तूबर १७५२ ई० को यह खबर दिल्ली पहुंची, शिहाबुद्दीन अपने परिचारक अक़ीबत महमूद के सिखाने पर वज़ीर के मकान को तुरन्त चला गया। सारी रात और आधा दिन वहीं पर रोते बिताया। सफ़दर जंग को उस पर तरस आगया, उसने उसको और शुजाउद्दौला को पगड़िया बदला दीं और उसके साथ अपने पुत्र के समान व्यवहार करने को तैयार हो गया। वज़ीर की बहू भी शिहाबुद्दीन के सामने घूँघट न निकालती जैसे माता पुत्र के सामने नहीं निकालती है। सफ़दर जंग ने बादशाह को फीरोज़जंग की सम्पत्ति को ज़ब्त करने से रोका और शिहाबुद्दीन को इमादुल्मुल्क अमीरूल उमरा की उपाधि से मीर बख्शी नियुक्त करवा दिया। परन्तु यह कृतघ्न नवयुवक जो अनेक कृपायें इस पर वज़ीर ने कीं थीं सब भूल गया और इन्तिज़ामुद्दौला से अपने उपकारक का नाश कराने के लिये जाकर मिल गया। देखो सियर III, ८६०; त० म० १५५ अ०; म० उ० II, ८२७; शाकिर ६६; अब्दुलकरीम ११० अ०; इमाद ६२, ६३।

* अन्ताजी मानकेश्वर का पत्र दिनाङ्क २८ मार्च १७५३ ई० पेशवे दफ्तर आदि में जिल्द II, ८५ सरदेसाई–पानीपत पृ० १६ में भी उद्धरित।

यह जान कर कि स्थिति सन्धिक्रम की अवस्था से बाहर होगई थी, सफ़दर जंग ने अब दिल्ली छोड़ने का निश्चय कर लिया। २५ मार्च को अहमदशाह और उसकी माता ने वज़ीर के प्रयाण को जल्दी कराने की इच्छा से विदा देने की विधिवत् रसम के व्यवहारिक सम्मान वस्त्र और भेंटें उसको भेज दीं। अतः २६ मार्च १७५३ ई० को वर्षा होते हुये अपने परिवार और सामान के साथ सफ़दर जंग राजधानी से चल पड़ा और यमुना के किनारे किनारे सड़क पर हो लिया। शाही क़िले की दूसरी ओर सामने पहुँच कर वह अपने हाथी से उतर पड़ा और इसको ओर व्यवहारिक प्रणाम किया। वृष्टि की छोटी छोटी बूँदें उसकी आंखों के आंसुओं से मिल गईं और ज्योतिषियों ने ठीक ही भविष्यवाणी की कि वह कभी दिल्ली को नहीं लौटेगा†। पहिले उसने अपने तकिया मजनू पर लगाये और फिर दिल्ली के उत्तर पश्चिम क़रीब ६ मील पर इस्माईल ख़ा के बाग़ की ओर चल दिया। उसको अब भी यह व्यर्थ की आशा थी कि बादशाह उसको वापस दरबार में बुला लेगा। इस आशा में वह दिल्ली के समीप सप्ताहों तक ठहरा रहा। वह कभी दाहिने से बाँये और कभी बाँये से दाहिने जाता और इस बहाने पर कि कुलियों और यातायात के साधनों की कमी है अपने सूबों के लिये प्रस्थान स्थिगत करता रहा। परन्तु जब उसने बादशाह के भाव में कोई परिवर्तन न पाया तो युद्ध की तैयारियां करने और राजेन्द्र गिरि गोसाईं और सूरजमल जाट को अपनी सहायता के लिये बुलाने पर विवश हो गया*।

संघर्ष की तैयारियां।

दिल्ली से वज़ीर के हट जाने के बाद बादशाह प्रतिदिन उसको सन्देशे भेजता कि अवध की ओर अपना प्रयाण जल्दी करे। वापस बुलाये जाने में धीरेधीरे निराश होकर सफ़दर जंग ने प्रयाण करने से इन्कार कर दिया और उत्तर दिया—"बादशाह मुझे कहाँ भेजना चाहता है? क्या कोई अभियान उसने मेरे सुपुर्द किया है? क्या मैंने बादशाह से कुछ छीन लिया है और यहां आगया हूँ? मैंने शहर छोड़ दिया है और यहां डेरा

† ता० म० १५६ अ; दिल्ली समाचार ७६; हरिचरण ४०१ अ।

* ता० अहमदशाही ४६ ब-५० अ और ऊपर दी हुई अन्ता जी की चिट्ठी।

डाले पड़ा हूँ। अब मैं कहां जाऊँ ?" चूँकि अहमदशाह वज़ीर को बल पूर्वक हटाने में असमर्थ था और उसके सिपाही अपने वेतन के लिए शोर मचा रहे थे जो कई महीनों से उनको नहीं मिला था, वह शान्ति के पक्ष में था और उसने दो-तीन आदमी सफ़दर जंग के पास भेजे कि शर्तें तय हो जायें। परन्तु शान्ति पूर्वक वज़ीर की शर्त इन्तिज़ामुद्दौला और इमादुलमुल्क के सर्वनाश से कम न थी और इसलिए २६ अप्रैल को उसने अकाबत महमूद खाँ को चुनौती देकर उनके पास भेजा कि 'लड़ाई के लिए बाहर आ जायें यदि वे पुरुष हों'। तब भी बादशाह ने शान्ति-प्रयास पर हाफ़िज़ बख्तावर खाँ और होशमन्द खाँ को भेजा। परन्तु शीघ्र चेता वज़ीर ने दोनों तूरानी सामन्तों की शिकायतें कीं और रूक्षता से कहा—"मैं उनको किसी न किसी तरह मार डालूँगा"। दूसरे दिन उसने वास्तव में दो सिपाही अपने शत्रुओं को गोलों से उड़ा देने के लिए भेज ही दिये। उन्होंने अपनी गोलियाँ इन्तिज़ामुद्दौला और इमादुलमुल्क पर चलाईं जब वे दरबार को जा रहे थे और क़िले के फाटक पर ६ बजे प्रातः पहुँचे थे। परन्तु वे निशाना चूक गये और वज़ीर की छावनी की ओर भागे। उनमें से एक पकड़ा गया और मार डाला गया। इमादुलमुल्क ने अब युद्ध की प्रतिज्ञा कर ली और कहा—'अब मुझ में और वज़ीर में खुली शत्रुता है और मुझे लड़ना पड़ेगा'†।

सप्रिकम में भी दोनों दल नये सिपाही भरती कर रहे थे और अपने मित्रों को दूर या नज़दीक से बुला रहे थे। जल्दी तैयारियां आरम्भ हो गईं। शहर में इन्तिज़ामुद्दौला और इमादुलमुल्क दुर्ग को दृढ़ करने और सेना और रण सामग्री जुटाने के कार्य में एकाग्र चित्त होकर लग गये। प्रथम ने अपने ऊपर सामन्तों, उनके पुत्रों और उच्च अधिकारियों को जो अपनी इच्छा से या मजबूरी से अवकाशग्राही हो गये थे, शाही झण्डे के नीचे सेवा करने के लिए तैयार करने का कार्य लिया और दूसरा अपनी स्वाभाविक शक्ति और उत्साह से संघर्ष की और तैयारियाँ करने में जुट गया। उधम बाई ने इमाद के अधिकार में दो करोड़ रुपये रख दिये और उसने अपनी जेब से इसमें ७० लाख और मिलाये। उसने मराठा और अफ़ग़ान सरदारों को पत्र लिखे कि वे आयें और बादशाह का साथ दें। दिल्ली से वज़ीर के हटने के दिन ही साम्राज्यवादी शहर

†ता० अहमदशाही ५० अ-५२ ब।

से बाहर आ गये थे और किले के नीचे यमुना की रेत पर छावनी डाल दी थी। वहाँ पर उन्होंने अपनी रक्षा-परिखा बनाई और उस पर अपने सिपाहियों और शाही सेवा में जाट दल को लगा दिया*। दिल्ली में उपस्थित मराठी सेना की सकर्म सहायता प्राप्त करने का दोनों पक्षों ने भरसक प्रयत्न किया। बापू जी महादेव का पहिले से ही बादशाह के साथ गुप्त समझौता हो गया था और वह उसके अधिकार में ५ हज़ार मराठा सिपाही रखने को तैयार था जिसके बदले में अहमदशाह ने पेशवा को सफदर जंग के अवध और इलाहाबाद के प्रान्तों को देने की प्रतिज्ञा की थी। परन्तु मराठा आज्ञापक अन्ता जी मानकेश्वर ने वज़ीर और बादशाह दोनों से कूट चाल चली। अन्त में महादेव की दृढ़ प्रतिज्ञा की जय हुई और दक्षिणी और से दिग्ध रूप से साम्राज्यवादियों के साथ हो गये। उन्होंने १६ लाख रुपये वार्षिक की बड़ी जागीर अर्पण करने के सफ़दर जंग के प्रस्ताव को तिरस्कृत कर दिया। तब भी आरम्भ में इन्तिज़ामुद्दौला, इमादुलमुल्क और मराठा आज्ञापक को छोड़कर बादशाह के पक्ष में कोई प्रसिद्ध व्यक्ति न थे। अधिकांश सामन्त छोटे और बड़े वज़ीर† से मिल गये थे जिसके पास दिल्ली छोड़ने के समय उसी की आज्ञा में २५ हज़ार सिपाही थे।

सफदर जंग की गलतियां और कठिनाइयां।

अपना आक्रमण दृढ़ता और पूरे बल से आरम्भ न कर और शत्रु को अपनी योजनायें छोड़ने पर विवश न कर, सफदर जंग ने शत्रु की निर्बलता से कोई लाभ न उठाया। यदि उसने ऐसा किया होता, तूफ़ान आसानी से शान्त हो जाता। गुलाम हुसैन खां ठीक कहता है—"यदि कष्ट के आरम्भ में वज़ीर अपने एक योग्य सेनापति को उन दोनों को (इन्तिज़ामुद्दौला और इमादुलमुल्क) ज़ंजीरों में बाँधकर लाने के लिये भेज देता, सारा काम आसानी से हो जाता क्योंकि उस समय प्रतिरोध उपस्थित करने के लिये उनके पास कोई शक्ति नहीं थी।" परन्तु वह इस धोके में पड़ा हुआ था कि शक्ति का केवल प्रदर्शन ही उसके साधन हीन शत्रुओं को भयभीत कर अधीनता में लाने के लिये और निर्बलचित्त बादशाह को विवश कर उसको दरबार में पुनः बुलाने के लिये पर्याप्त

---

* त० म० १५६ ब।

† अन्ता जी मानकेश्वर की चिट्ठी जो पहिले दी गई है।

होगा। क्योंकि वज़ीर ने सोचा क्या वह यह पसन्द करेगा कि दिल्ली के निर्दोष नागरिकों के प्राणों और उनकी सम्पत्ति का व्यर्थ विनाश हो। उसको अति विलम्ब से पता चला कि उसके शत्रु समाहित-चित्त थे और उन्होंने अन्त तक लड़ने का निश्चय कर लिया था। तब वह हत बुद्धि हो गया और जान न सका क्या करे। बादशाह से लड़ना अत्यन्त अनुचित और उसकी कीर्ति के लिये हानिकारक था और निश्चय ही उस पर राजद्रोह और घृणित कृतघ्नता का कलंक लगा देता*। और उसके अधिकांश पक्ष समर्थकों और नातेदारों और प्रायः उसके सब ही मुग़ल सिपाहियों के स्थायी घर दिल्ली में थे। उन लोगों ने अपने परिवारों और सम्पत्ति को शहर में छोड़ रखा था और खुले युद्ध में अवश्य ही वे सब शत्रु की दया पर निर्भर हो जाते। तब भी सफदर जंग तैयार न था कि बिना युद्ध के अपनी अधीनस्थता मान ले और अपने प्रान्तों और वज़ारत से पद-च्युत का सहन कर ले। इस विकल्प में उसने डेढ़ मास खो दिया। उसकी अनिश्चयता अकर्मण्यता से पूरा लाभ उठा कर तूरानी सामन्तों ने एक बड़ी सेना इकट्ठी कर ली और साम्राज्यवादियों में साहस और आशा का सञ्चार कर दिया। बहुत से पठानों, बारहा के भाग्य विश्वासी सैयद सिपाहियों, स्वार्थी सिपाहियों के गूजर और बलोची नेताओं और राजपूत सिपाहियों और सरदारों ने समृद्ध जीवन की आकांक्षा से और जागीरें प्राप्त करने की इच्छा से सफदर जंग की अपेक्षा बादशाह का साथ दिया क्योंकि अत्यधिक जनता की निगाहों में सफ़दर जंग विद्रोही था‡। उसकी अकर्मण्यता और आलस के समय में उसके विशाल दलों ने उसका कोष खाली कर दिया और उनको भोजन देना दिन प्रतिदिन कठिन होता गया जब कि युद्ध कई महीनों तक चलता रहा। सिपाही या सेनापति के रूप में सफ़दर जंग ने कभी सम्मान प्राप्त नहीं किया था। नेता के रूप में उसकी निर्बलता और अक्षमता प्रगट हो गई जब उसका पाला इमादुलमुल्क से पड़ा जो असाधारण गुणों, स्फूर्ति, और चातुर्य का चण्ड अविवेकी युवक था और जो युद्ध और कूट-नीति में यश प्राप्ति के लिये अधीर था।

---

* अब्दुलकरीम ११० ब; सियर III ८८१।

‡ पूर्ववत्।

युद्ध का आरम्भिक उपक्रम

पश्चिम से दक्षिण को एक मास के अनुद्दिष्ट परिभ्रमण के बाद राजधानी के क़रीब ६ मील दक्षिण में ख़िज़िराबाद के बाग़ों के पास २२ अप्रैल को सफदर जंग ने अपना शिविर स्थापित किया* । उसके आमंत्रण पर सूरजमल, जिसने अपना घमरा का अभियान सफलता पूर्वक समाप्त कर लिया था, १५ हज़ार जाट सवारों की सेना लेकर उससे यहाँ पर पहिली मई को आकर मिल गया† । उसके सिपाहियों की संख्या में अधिकता और उसके कोष की वृहत्ता के कारण जनसाधारण और अनुमत्री और धीर पुरुषों का विश्वास था कि वज़ीर विजयी होगा। अतः भूतपूर्व मीर बख्शी सादत ख़ाँ ज़ुल्फिकार जंग, जो पुनः बादशाह की नौकरी करने के लिए इस संकट समय में राज़ी हो गया था, शाह मरदाँ की क़ब्र (समाधि) की यात्रा (ज़ियारत) के बहाने से शहर के बाहर आया और अपने पूरे परिवार और ५ हज़ार आदमियों के साथ ४ मई को सफदर जंग से जाकर मिल गया‡ । बादशाह की कृतघ्नता से पीड़ित, जिसने जून १७५१ ई० में उसकी अवलम्बित पदच्युति की आज्ञा दी थी और जिसने उसको दो वर्ष के बलवश अवकाश और दरिद्रता में डाल दिया था, ज़ुल्फिकार जंग ने सफदर जंग के आचरण की कठोर निन्दा की कि उसने अपने को दिल्ली से कैसे निकाला जाने दिया और उससे प्रबल आग्रह किया कि अज्ञान और मूर्ख बादशाह को अलग करने का एक साहसी प्रयास करे और शासन पर पुनः अधिकार प्राप्त कर ले। वज़ीर ने उत्तर दिया कि वह राजभक्त और आज्ञाकारी नौकर था और अपने स्वामी के विरुद्ध जाने का इरादा न रखता था। ज़ुल्फिकार जंग ने अब कहा कि राजभक्ति और आज्ञाकारिता की कोई अर्थ नहीं जब बादशाह स्वयं अपना स्वामी न हो। वह अपकर्षक व्यसनों में लिप्त था और नवयुवक नवोदयों के हाथों में फँसा हुआ था। इस व्याख्यान का वज़ीर पर वही प्रभाव पड़ा जिस आशय से यह दी गई थी और उसने पूछा कि उस स्थिति में वह क्या करे। भूतपूर्व मीर बख्शी ने उसको सलाह दी कि

---

*ता० अहमदशाही ५१ ब ।

†ता० अहमदशाही ५३ अ ।

‡ता० अहमदशाही ५३ अ; दिल्ली समाचार ७७; शाह मरदाँ की क़ब्र सफ़दर जंग के मक़बरे के पास है ।

गद्दी पर किसी को बैठाये, अहमदशाह से युद्ध करे और जब विजयी हो जाये राज्य परिवार के किसी कुमार का अभिषेक कर दे--और ऐसी कृति के उदाहरण भूतकाल में मिलते थे। सूरजमल ने प्रस्ताव का समर्थन किया*।

सफ़दर जंग ने २२ अप्रैल को पहिले ही दिल्ली की समीप की तूरानी सामन्तों की जागीरों को लूटने के लिये भेज दिया था और इससे एकबारगी राजधानी में चीज़ों के दाम बढ़ गये थे। अब जुल्फिकार जंग के तानों से वह कार्य में प्रेरित हो गया और अगले ही दिन (५ मई) उसने गोसाईं आज्ञापक को बारापुला की ओर और इस्माईल खाँ को नागली के गांव की ओर, जो यमुना के पास था, तूरानी सरदारों के घरों पर हमला करने के लिये जाने की आज्ञा दी। इससे शहर में आकुलता छा गई और बादशाह भयभीत हो गया। उसने शुजाउद्दौला के साले मिर्जा अली खां को अपने हाथ से पत्र लिखा कि वज़ीर को अपना इरादा छोड़ने पर राजी कर ले और इसी कार्य पर उसने पूजनीय नाज़िर रोज़ अफ़जूँ खां को भी भेजा। परन्तु सफ़दर जंग रुका नहीं और उसने कोई उत्तर नहीं दिया। दूसरे दिन (६ मई) बादशाह ने ख्वाजा बख्तावर खाँ और वजीह खां को भेजा और तब वज़ीर ने साफ शब्दों में उत्तर दिया—"शान्ति सम्भव है यदि मीर बख्शी, द्वितीय मीर बख्शी और पंजाब और मुलतान के राज्यपाल की जगहें तूरानियों से छीन ली जायें और मेरे नियोजित व्यक्तियों को दे दी जायें और पाँच सम्मान वस्त्र मुझको भेज दिये जायें कि जिस किसी को मैं चाहूं उन्हें (उन जगहों के प्रतिष्ठापन के रूप में) दे दूँ। आगे, इतिमादुद्दौला (इन्तिज़ामुद्दौला) और इमादुलमुल्क बादशाह की सेवा से निर्वासित कर दिये जायें। नहीं तो कल अवश्य ही मैं उनके घरों पर हमला करूँगा। मेरी सेना मेरी आज्ञा की प्रतीक्षा में है और शाही क़िला पास है, वास्तव में मेरी निगाह में है......"†।

इस प्रगल्भता पर अप्रसन्न होकर बादशाह ने ८ मई को मीर आतिश के पद सहित शुजाउद्दौला को उसके सब पदों से विधिपूर्वक च्युत कर दिया और समसमुद्दौला को मीर आतिश और ख्वाजा अहमद को

---

* हरिचरण ४०६ अ और ब; त० म० १५६ ब; सुजान चरित १६२।

† ता० अहमदशाही ५३ ब।

क़िलादार नियुक्त किया। उसने इमादुलमुल्क और समसमुद्दौला को आदेश दिया कि रक्षा परिखा जल्दी पूरी कर लें और नदी की रेत पर लगी हुई अग्निमित्तियों को और आगे बढ़ा दें, और यदि सफदर जंग आक्रमण करे तो वह स्वयं रण में जाने को उद्यत हो गया*। परन्तु चूँकि वज़ीर का अब भी विश्वास था कि शहर के निवासियों के हितों को दृष्टि में रख कर बादशाह बात को परमावधि तक नहीं पहुँचायेगा उसने प्रबल आक्रमण धारण न किया। न उसने साम्राज्यवादियों पर खुले आक्रमण की आज्ञा दी†। उसने सूरजमल और राजेन्द्र गिरि को आदेश दिया कि पुरानी दिल्ली पर, जिसके चारों ओर कोई दीवार नहीं थी, हमला करें और उसको लूट लें। ६ मई को इन नेताओं और सिपाहियों ने लाल दरवाज़ा के समीप शहर के पूर्वी भाग को लूट लिया जहाँ प्रायः ग़रीब और मध्य श्रेणी के लोग रहते थे। अपनी सारी सांसारिक सम्पत्ति के अपहरण और बिलकुल बे घर बार होकर ये दीन दुखारी लोग नई दिल्ली (शाहजहानाबाद) के परकोटित शहर को रक्षा में भाग गये। १० को प्रातः काल सूरजमल के लुटेरे दल फिर सक्रिय हो गये और सैयदवाड़ा, पंचकोई, ताड़का गंज और जयसिंहपुरा के पास अब्दुल्ला नगर को उन्होंने नष्ट कर दिया। शहर के इस भाग में कुछ धनी नागरिकों के मकान थे और उन्होंने अपने परिवारों और सम्पत्ति की रक्षा में हथियार उठा लिये। तीसरे पहर साढ़े तीन बजे के करीब अन्ता जी मानकेश्वर और शादिल खां ने मराठा और बदख़्शी दल लेकर शाही रक्षा परिखा से अवपात किया और राजेन्द्रगिरि पर आक्रमण किया जो वज़ीर के अग्रदल का नेता था। यह युद्ध का यह प्रथम रण था। शाही तोपख़ाना ने गोसाईं नेता को अपने बहुत से साथियों के प्राण गंवा कर पीछे हटने पर मजबूर कर दिया। जाट पुरानी दिल्ली के किसी भाग में प्रतिदिन प्रगट होते और साम्राज्यवादी‡ उनका सामना करने जल्दी से पहुँचते। परन्तु शाही सेनायें हर जगह नहीं पहुँच सकती थीं और थोड़े

---

* ता० अहमदशाही ५४ ब।

† अब्दुलकरीम ११० अ।

‡ ता० अहमदशाही ५४ ब, ५५ अ; हरिचरण ४१० ब; अब्दुलकरीम १११ अ; शाकिर ७४; ता० म० १५६ ब; सियर III ८६१; दिल्ली समाचार ७७।

ने मुहल्लों में ही समय पर पहुँची, महापराक्रमी जाटों ने एक सप्ताह के अन्दर ही सारे पुराने शहर को लूट कर नष्ट कर दिया। उसके अशिष्ट लोभ और निर्मम प्रजा पीडन के लाखों शिकार नई दिल्ली में हर जगह झुंड के झुंड घूमते थे। बादशाह ने उनके निवास के लिये उद्यान गृहों को खोल करके अल्प कालिक प्रबन्ध किये—जैसे चाँदनी चौक में साहिबा बाग़; तीस हज़ार का बाग़ (बागे सि हज़ारी) और अन्यों को जाट लूट की यह रौद्रता, जन साधारण में जाटगर्दी के नाम से कुख्यात, दिल्ली के नागरिकों की स्मृति में १६ शदी के आरम्भिक वर्षों तक हरी रही जब सैयद गुलाम अली अपने ग्रन्थ इमादुस्सआदत का संग्रह कर रहा था०।

युद्ध का द्वितीय उपक्रम

पुरानी दिल्ली को लूट और विनाश से अहमद शाह और उसके वज़ीर में अन्तिम विच्छेद हो गया। क्रुद्ध बादशाह ने अपने मन से समझौते के विचार को निर्वासित कर दिया, विधि पूर्वक सफदर जंग को प्रधान मन्त्री के पद से मुक्त कर दिया और उसकी जगह पर १३ मई को इन्तिज़ामुद्दौला को नियुक्त कर दिया। इसके उत्तर में भूतपूर्व वज़ीर ने उसी दिन सुन्दर आकृति के एक नपुंसक को, जिसको कुछ दिनों पहिले शुजाउद्दौला ने मोल लिया था, गद्दी पर बैठा दिया, उसको "अकबर शाह न्याय कर्त्ता" की उपाधि दी और मशहूर कर दिया कि वह औरंगज़ेब के कनिष्ट पुत्र कामबख्श का पौत्र है*। अपने को उसने वज़ीर बनाया, सादत खाँ को मीर बख्शी नियुक्त किया और अन्य पदों को अपने कृपापात्रों में बाँट दिये। तब सफदर जंग ने राजधानी पर घेरा डाल दिया और दिल्ली की सड़कों पर छोटे-छोटे युद्ध लड़ने लगा। उसके प्रोत्साहन पर जाटों ने अपना विनाश का कार्य जारी रखा और थोड़े दिनों में पुरानी दिल्ली को टुकड़े-टुकड़े करके इतनी पूर्णता से लूट लिया कि उनके निर्दयी हाथों से कुछ न बचा। सफदर जंग के धर्म गुरु शाह बासित का घर भी नहीं बचा। सारा पुराना शहर, जिसकी जन संख्या शाहजहाँ के कस्बे से कुछ अधिक थी, सर्वथा नष्ट हो गया और

० इमाद ६३।

*ता० अहमदशाही ५५ अ; सबसीर २७४ ब; ता० आली० १५४ ब; अब्दुलकरीम ११० अ; सियर III ८६२; हरिचरण ४६६ अ; मुजान चरित १६२।

यहाँ एक दीपक भी न रहा†। भूतपूर्व वज़ीर ने इस प्रकार अपना सारा ध्यान इस तरह की राजनैतिक लूट मार में लगा दिया और शक्तिशाली आक्रमण करने का और अपने हमले को एक वेध्यबिन्दु पर केन्द्रित करने का विचार न किया। अतः तीन सप्ताहों से कम समय में ही उसको पता चला कि तख्ता उसके प्रतिकूल उलट गया है।

उसी दिन जब भूतपूर्व वज़ीर ने छद्मराज को गद्दी पर बैठाया था, बादशाह ने सब दिशाओं को पत्र भेजे जिनमें ज़मींदारों, आमिलों, राजाओं और धन लोभी सिपाहियों के जत्थों के नेताओं को आह्वान था कि राजद्रोही स्वधर्मभ्रष्ट (सफदर जंग) के विरुद्ध उसको सहायता दें। थोड़े से समय में ज़मींदारों और महत्वाकांक्षी भाग्योदयी सैनिकों के झुण्ड मुख्यतया पठान, बलूची, मेवाती गूजर और बारहा के सैयद बड़ी संख्या में आ पहुँचे और साम्राज्यवादियों के दलों की वृद्धि कर दी। नवागन्तुकों में अधिक महत्वशाली थे—चिन्ता गूजर‡, बल्लू खां, बहादुर खां बलूच, सैफुल्ला खां का पुत्र मुहम्मद सादिक़ खां और इमादुल्मुल्क का भविष्य का प्रतिद्वन्दी नजीब खां पठान। २ हज़ार सिपाहियों के साथ चिन्ता गूजर और १५ हज़ार रुहेलों का, जो सफदर जंग के स्वाभाविक शत्रु थे, नेता नजीब खां ३ जून को* बादशाह से आकर मिल गये और संघर्ष की लहर को साम्राज्यवादियों के अनुकूल मोड़ दी।

सफदर जंग के दिल्ली से हटने के एक मास के अन्दर ही १७ या १८ वर्ष का लड़का इमादुल्मुल्क शाही सेनाओं का सर्वोपरि नेता बन गया। भूतपूर्व वज़ीर के सिपाहियों को अधिक वेतन और पुरस्कारों के प्रस्तावों से फुसलाकर बादशाही सेना को बढ़ाने के कार्य में वह अपनी स्वाभाविक स्फूर्ति और उत्साह से जुट गया। उसने एक घोषणा निकाली कि सफ़दर जंग का प्रत्येक सिपाही जो पाप-दल का सदस्य हो ५० रु० का पुरस्कार

---

†ता० अहमदशाही ५५ अ; सियर III ८६२; सुजान चरित्र १६७-१८१; दिल्ली समाचार ७८।

‡रुहेलों की तरह चिन्ता डाकू विद्रोही था। सफदर जंग ने कई बार उसके विरुद्ध सेना भेजी थी, परन्तु प्रत्येक बार वह सफलता पूर्वक निकल जाता।

* ता० अहमदशाही ५७ अ; अब्दुलकरीम १११ ब; सियर III ८६१; त० म० १७ अ; शाकिर ७२; गुलिस्तां ४६।

और एक मास का अग्रिम वेतन (५० रु०) पायेगा यदि वह अपने मालिक को छोड़कर शाही सेवा में भरती जाये। इन प्रस्तावों से लोभित होकर और दिल्ली में पीछे पड़े हुए अपने परिवारों के पीड़न से डर कर, भूतपूर्व वज़ीर की सेवा में मुग़लों ने; जिनमें से अधिकांश अपने भाइयों तूरानी सामन्तों की तरह मध्य एशिया के मुग़ल थे, उसका साथ, लगभग एक-एक व्यक्ति तक, छोड़ दिया और इमादुलमुल्क के अधीन सेना में भरती हो गये। उसने उनको—संख्या २३ हज़ार—एक अलग दल में, जो बदख़शी पल्टन के नाम से जन साधारण में प्रसिद्ध हुई, संगठित किया और अपने परिचारक अक़ीबत महमूद खां को उसका नेता बनाया। भूतपूर्व वज़ीर के गौरव को खोखला करने के लिए और देश की मुस्लिम जनता की सहानुभूति और समर्थन को अपने पक्ष के हित में प्राप्त करने के लिए, मीर बख़शी को एक दूसरी चाल सूझी। उसने घोषित किया कि राजद्रोही स्वधर्मभ्रष्ट सफ़दर जंग के विरुद्ध युद्ध धर्मयुद्ध (जिहाद) है क्योंकि वह समय के ख़लीफ़ा (रसूल का उत्तराधिकारी) के विरुद्ध युद्ध कर रहा है। अतः उसने सब सच्चे विश्वासियों (मुसलमानों) को आह्वान दिया कि मुहम्मदी झण्डे के नीचे, जिसको उसने खड़ा किया था, वे एकत्रित हो जायें और इस प्रशंसनीय कार्य में साम्राज्य की सहायता करें। इस पर नीच वर्गों के हज़ारों मुसलमान विशेष कर पंजाबी और काश्मीरी झण्डे के नीचे आ गये। उन्होंने भूतपूर्व वज़ीर से अन्त तक लड़ने की प्रतिज्ञा की और शहर में बहुत बड़ा उत्साह पैदा कर दिया।

उसके पक्ष समर्थकों के घरों और उनकी सम्पत्ति को ज़ब्त करके और दिल्ली के उन तमाम नागरिकों को नष्ट करके जो सफ़दरजंग से गुप्त सहानुभूति भी रखते थे, इमादुलमुल्क ने भूतपूर्व वज़ीर को और भी निर्बल कर दिया। मीर बख़शी ने बादशाह को यह वृत्तान्त भेजा कि १६ मई को रात को शुजाउद्दौला के सालों मिर्ज़ाअली खाँ और सालार जंग के महलों से तोपों के गोले और हवाइयां उनके समीपस्थ शाही सन्दकों पर फेंके गये थे। यद्यपि ये भूतपूर्व वज़ीर के निकट सम्बन्धी थे ये दोनों सामन्त अपने स्वामी बादशाह के पक्ष से लड़ रहे थे। तब भी यह वार्ता इसके लिये पर्याप्त थी कि बादशाह उनको बन्दी बनाने की और उनको घरों की ज़ब्ती की आज्ञा देदें उस सब धन और बहुमूल्य उपकरणों के साथ जो उनके अन्दर हो। इन आज्ञाओं के सम्पादन से बहुसंख्यक लोगों का

नाश हो गया जो यह जानते हुये भी कि वे दोनों सामन्त विरोधी दलों के निकट सम्बन्धी थे, उनके घरों में दिल्ली में उनको शरण के लिये अति सुरक्षित स्थान समझ कर आकर छुपे थे। बहुत से धनी लोग जिनका उससे कोई सम्बन्ध नहीं था शाही अधिकारियों और उनके अति उत्साही अधीनस्थों के अशिष्ट लोभ के शिकार हो गये।

यह देख कर कि साम्राज्यवादी नित्य नयी शक्ति का संचय कर रहे थे सफ़दर जंग ने अपने आलस्य को दूर फेंका और दोनों ओर से लड़ाई नयी चण्डता और शक्ति से आरम्भ हो गई। उसके आदमी नगर पर कभी एक ओर से कभी दूसरे ओर से हमला करते। इन चालों से १७ मई की रात को वह साम्राज्यवादियों के हाथों से कोटिला (कोहटीला) फ़ीरोज शाह को छीनने में सफल हो गया। काबुली दरवाज़े से पुराने शहर में में प्रवेश कर वह बलपूर्वक कोटिला के अन्दर अपना रास्ता बनाने में सफल हो गया। इस बीच में शादिलखां और देवीदत्त ने एक भिन्न मार्ग से पहुँच कर सफ़दर जंग के सिपाहियों पर हमला किया और लड़ाई सायकाल तक चलती रही, जब दोनों पक्ष अपनी अपनी खाइयों को वापस चले गये। यहाँ पर उसके मुख्य सेनापति इस्माईलखाँ ने फ़ीरोज शाह के क़िले की चोटी पर भित्तियाँ बनालीं और साम्राज्यवादियों पर जो गढ़ के नीचे अपनी छावनी में पड़े थे अपनी तोपें चलाना आरम्भ कर दिया। कुछ गोले क़िले के अन्दर भी गिरे। शाही सेवा में जाटों को जिनकी रक्षा परिखा पास ही थी बहुत हानि पहुँची, परन्तु शान्त दुर्दम साहस से जो उनकी जाति का सदैव गुण रहा है वे अपने स्थानों पर दृढ़ता से डटे रहे। उनके उदाहरण का अनुसरण शाही खानज़ादों ने किया जिन्होंने शहर के दक्षिणी दरवाजा, दिल्ली दरवाजा पर लगी हुई बड़ी तोपों को छोड़ा और कोटिला के कुछ वप्रों और प्राकारों को तोड़ गिराया। तोपों की दूर की मार के कुछ दिनों बाद इस्माईलखाँ ने अपनी भित्तियों को आगे बढ़ा दिया और नई दिल्ली के प्राकार के कोणे पर बुर्ज से मिला हुआ स्थित इन्तिज़ामुद्दौला के महल को हस्तगत करने के उद्देश्य से उसने नये शहर के एक वप्र, नीला बुर्ज नामक के नीचे तक एक सुरंग लगाई। ५ जून को प्रातःकाल उसने उसमें आग लगादी। यद्यपि पूरा बुर्ज नहीं उड़ा, तब भी स्फोट के प्रभाव से और बुर्ज के और इन्तिज़ामुद्दौला के महल के समीप एक मकान के पत्थरों के गिरने से २००

से अधिक शाही सिपाही और पत्थर कट मर गये। इस संकट काल पर नदी के किनारे से सफ़दर जंग के आदमियों ने इकबारगी हमला किया। इनका सामना नये वज़ीर के मकान से ४ हज़ार सिपाहियों ने किया। भयानक रण हुआ और शाही खन्दकों से भीषण अग्नि वर्षा पर भी विजय सफ़दर जंग की सेना के वश प्रतीत होती थी। परन्तु इमादुल्मुल्क, हाफ़िज़ बख़्तावर ख़ाँ, नजीबख़ाँ रुहेला और अन्य साम्राज्यवादी मोर्चों पर दौड़ गये, अति प्रबल प्रतिरोध उपस्थित किया और दोनों पक्षों की भारी हानि हुई। नजीबखां और उसका भाई गोलियों से घायल हो गये और ४०० रुहेले रण क्षेत्र में मारे गये। इस प्रकार सफ़दरजंग का आक्रमण सफल न हुआ और दोनों दल जहाँ के तहाँ रह गये। रात भर तोपें अपना कार्य बराबर करती रहीं और ६ जून को सूर्योदय के क़रीब २ घण्टे पहिले इस्माईलख़ाँ ने कोटिला छोड़ दिया और भूतपूर्व वज़ीर की रक्षा-परिखा को वापस चला गया*।

साम्राज्यवादियों ने अब अपनी भित्तियों को अब आगे बढ़ाया और कोटिला फ़ीरोज़शाह और पुराने क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया जो कहा जाता है महाभारत के प्रसिद्ध वीर पांडवों के निवास स्थान के स्थल पर है। इन दोनों क़िलों की चोटी पर जहां से सफ़दरजंग की रक्षा परिखा पर गोला बारी हो सकती थी बड़ी बड़ी तोपें लगाकर उन्होंने उसकी खाइयों पर गोले बरसाना आरम्भ कर दिया। भूतपूर्व वज़ीर अब और दक्षिण की ओर हटने पर विवश हो गया और कुछ दिनों की लड़ाई के बाद उसको नदी के पास की अपनी जगह छोड़ना पड़ी और शहर से क़रीब ४ मील दक्षिण तालकटोरा की ओर हटना पड़ा। परन्तु वह प्रति दिन दिल्ली के किसी भाग या उपनगर पर हमला करता और शाही सिपाही जल्दी से तर्जित स्थान पर पहुँच जाते और उसको बाहर निकाल देते। इस अनियमिक युद्ध में भूतपूर्व वज़ीर के कुछ वीर सैनिक प्रतिदिन मारे जाते और ईदगाह के रण में जो १२ जून की संध्या के पास हुआ बहुत से जाट सिपाही और उनके कुछ मुख्य अधिकारी रणभूमि में ही मर गये†।

सफ़दर जंग के पीछे पीछे इमादुल्मुल्क लगा रहा और क़रीब क़रीब

---

* ता० अहमदशाही ५७ व ५८ अ।
† व पूर्वत्।

नित्य भिड़न्तें होती जिनमें जाटों और नागों का मुख्य भाग रहता। अपने मृत्यु आह्वानक अनुचरों के साथ राजेन्द्रगिरि सुलभ अवसर पर शाही तोपखाना पर टूट पड़ता, कुछ तोपचियों को मार डालता और अक्षुण्ण अपनी जगह पर वापस आ जाता। श्रद्धालु जनता का विश्वास था कि वह जादूगरी में निपुण था और इस कारण से गोलियों के लिये अभेद्य था। १४ जून की सायंकाल को तालकटोरा के रण में इस निश्शंक वीर सरदार का अन्त हो गया। इस दिन के करीब ६ बजे प्रभात में दोनों दल सैन्य सुसज्जा में प्रगट हुये। सफ़दर जंग स्वयं कुछ दूर से अपने आदमियों का मार्ग दर्शन कर रहा था। तीसरे पहर उसके क़िजिलबाशों और जाटों ने साम्राज्यवादियों पर हमला किया, मराठा और बदख़्शी सिपाहियों को बड़ी संख्या में मार गिराया और ऐसा प्रतीत होता था कि भूतपूर्व वज़ीर उनको कुचल ही देगा। परन्तु जब रणघोर भयानकता से हो रहा था इमादुल्मुल्क सैनिक सहायता लेकर पहुँचा और हतोत्साही साम्राज्यवादियों का साहस बंधाया। वीर संघर्ष के बाद इमादुल्मुल्क शत्रु को हटाने में सफल हो गया। इसमें एक गोली से राजेन्द्रगिरि को घाव लगा जो घातक सिद्ध हुआ और अगले ही दिन वह मर गया। सफ़दर जंग की सेना के सबसे बड़े वीर और सबसे अधिक निडर सेनापति ने अपने स्वामी के हित में इस प्रकार अपने स्वामी के हित में अपने प्राणों को न्यवछावर कर दिया*।

राजेन्द्रगिरि की मृत्यु से भूतपूर्व वज़ीर की सेना पर अन्धकार छा गया और सफ़दर जंग से अधिक और किसी को दुख नहीं हुआ। पूरे १० दिन वह सर्वथा निश्चेष्ट रहा और उसने सब लड़ाई स्थगित करदी। साम्राज्यवादी भी अपने शिविर से बाहर न निकले। मृतक के पट शिष्य उमराव गिरि को नवाब ने नागा सेना का सेनापति नियुक्त किया। परन्तु राजेन्द्र गिरि के देहान्त के बाद वह स्वयं किसी रण में सम्मिलित न हुआ†।

* ता० अहमदशाही ५६ अ; त० म० १५७ ब; अब्दुलकरीम ११२ अ; सियर III ८८१; हरिचरण ४१० अ; दिल्ली समाचार ७८; सुजान चरित १६०-६१; गुलिस्तां ४६ इमाद पृ०-६४ के अनुसार इसमाइल खाँ ने पीछे से राजेन्द्र को गोली से मार दिया। परन्तु गुलिस्तां कहता है उसके नजीब खां की गोली लगी थी।

† ता० अहमदशाही ५६ ब; सुजान चरित पृ० ६१-२।

युद्ध का अन्तिम उपक्रम

क्योंकि बहुत से सैनिक उसकी सेना का त्याग कर चुके थे इस समय सफ़दर जंग की सेना बहुत कम हो गई थी। और दूसरी ओर शाही सैनिकों की शक्ति और संख्या दिन प्रतिदिन बढ़ रही थी। रुहेलों, गूजरों, बलूचों, सैयदों, हिन्दू जमींदारों, मराठों और रुहेलखण्ड के सादुल्ला खां और फ़र्रुख़ाबाद के अहमद खां बंगश, पंजाब के मुईनुल्मुल्क और अन्य मुसलमान सरदारों द्वारा भेजे हुये सिपाहियों ने उनकी संख्या को एक लाख के बृहत आँकड़े तक पहुंचा दी थी। अतः प्रत्येक की दृष्टि में यह युद्ध का परिणाम पूर्वनिश्चित था और सफ़दर जंग का पक्ष प्रायः निराशामय। अतः उसके बड़े अधिकारियों तथा निकट के नातेदारों ने भी भूतपूर्व वज़ीर को छोड़ना और बादशाह के पक्ष में मिलना आरम्भ कर दिया। सआदत खां के बड़े भाई के पुत्र शेर जंग ने भी अपने भाई का पक्ष त्याग दिया और २० जून को बादशाह के सम्मुख उपस्थित हो गया। उसने साम्राज्यवादियों को इससे अवगत कराया कि सफ़दर जंग की सेना निस्तब्ध हो गई और सूरजमल को छोड़कर और कोई शक्तिशाली सरदार सेना में नहीं रह गया है और वह भी शान्ति का उत्सुक था यदि उसको क्षमा कर दिया जाये और उसका पूरा प्रदेश उसके पास रहने दिया जाये। जाट राजा ने अब शान्ति की प्रस्तावना की परन्तु इमादुल्मुल्क के अन्त तक लड़ने के आग्रह के कारण वे सर्वथा अस्वीकृत कर दिए गये। इस समय अनवरस्थित युद्ध चलता रहा और सफ़दर जंग और भी दक्षिण की ओर हटने पर मजबूर हो गया। कभी कभी अपना सामान उसको मराठा लुटेरों के हाथों में छोड़ना पड़ा*।

पहली जुलाई को विकट रण हुआ जिसमें तोपखाने का भाग मुख्य रहा। तब सफ़दर जंग ने अपने जाट और नागा सिपाहियों को दिल्ली की सेना से लड़ने भेजा। रण में साम्राज्यवादी हार गये। जाटों ने भागते हुये शत्रु का पीछा किया और दौड़ भाग का युद्ध होता रहा। परन्तु दुर्भाग्य से सूरजमल के मुख्य बख्शी गोकुलराम गौड़ को गोला लगा और उसका निष्प्राण शरीर घोड़े से गिर गया। भूतपूर्व वज़ीर की विजय इस तरह हार में बदल गई और उसकी सेना हतोत्साह होकर रणक्षेत्र से लौट आई†।

* ता० अहमदशाही ५६ ब—६१ ब।

† ता० अहमदशाही ६१ ब-६२ अ; सुजानचरित्र १६१-१६३।

सफदर जंग ने अब अनुभव किया कि अब तक शत्रु को किले और शहर का शरण प्राप्त था उसको हराना असम्भव था। अतः सूरजमल के सुझाव पर उसने अपनी रक्षा-परिखा छोड़ दी और चिरागेदिल्ली से होकर भारतीय राजधानी से १२ मील दक्षिण पूर्व में तिलपट के गाँव की ओर १६ जुलाई को प्रयाण किया कि साम्राज्यवादी खुले मैदान में आजायें और उनसे वहाँ पर युद्ध होई‡। इमादुल्मुल्क ने भी अपनी खाइयाँ आगे बढ़ाई और भूतपूर्व वज़ीर द्वारा खाली की हुई भूमि पर धीरे-धीरे अधिकार करता गया यहाँ तक कि वह शाह से दक्षिण क़रीब ६ मील पर खिज़राबाद के मैदान और कालिका देवी (ओकला रेलवे स्टेशन के पास) के मन्दिर को पहुँचा गया। कुछ दिनों तक प्रयाण, प्रतिप्रयाण और दैनिक डिम्ब युद्ध होते रहे। अन्त में २५ जुलाई को जाटों ने रुहेलों पर आक्रमण किया जो गढ़ी मैदान के गांव पर घेरा डाले थे। कई घन्टों तक बराबरी का रण होता रहा और किसी पक्ष से थकावट या हार के चिह्न दिखलाई न पड़े। अन्त में जाट अपने समान वीर विरोधियों को पराजित करने में सफल हुये। उन्होंने उनको रणक्षत्र से भारी हानि पहुंचा कर भगा दिया और उनकी तोपों और हथियारों को हस्तगत कर लिया*।

इस अविरत उद्योगिता के काल के पीछे कुछ दिनों का विराम हुआ जिसमें विरोधी सेनायें अपनी जगहों से न हटीं। बादशाह और नये वज़ीर के दीन आचरण पर अप्रसन्न होकर, जिसको वह २६ जुलाई की हार का कारण मानता था, इमादुल्मुल्क दूसरे ही दिन दिल्ली वापस आ गया और अहमद शाह से स्वयं प्रार्थना की कि वह स्वयं रण में चले और एक निकट रण में संघर्ष का निर्णय कर ले। शाही सैनिकों ने भी अपने वेतन के लिये शोर मचाया जो बहुत दिनों से बाकी चली आती थीं। ३० जुलाई को सफदर जंग की सेना बदरापुर की नहर के समीप दिखाई पड़ी और एक हल्के डिम्ब युद्ध के बाद वापस आ गई। तब फिर हलचल बहुत दिनों के लिए रुक गई जिसके बाद १६ अगस्त को भूतपूर्व वज़ीर के क़िज़िलबाश, जाट और नागे रण के लिए तैयार होकर निकले। अपनी तोपों को आगे करके साम्राज्यवादियों ने शत्रु का सामना किया और

‡ ता० अहमदशाही ६६ ब ; सुजानचरित १६५-१६१।

* ता० अहमदशाही ६६ ब ; सुजान चरित १६४-१६६।

तुग़लुक़ाबाद से यमुना के तट तक तीन मील से अधिक लम्बी पंक्ति पर कई स्थानों पर घोर डट कर युद्ध हुआ। कहीं-कहीं पर तोपों की टक्करें हुईं और कई स्थानों पर दस्त ब दस्त लड़ाई हुई जिसमें नजीब खां के पठानों और सूरजमल के जाटों ने बहुत ख्याति प्राप्त की। एक स्थान पर जाटों और मराठों में व्यक्तिगत संघर्ष हुआ जिसमें दोनों ओर से बहुत वीरता दिखाई गई परन्तु अन्त में जाटों की हार हुई और उनके एक सरदार को भाले का घाव लगा। सायंकाल योधा अपनी छावनियों को वापस गये। दूसरे प्रभात को सफ़दर जंग ने फरीदाबाद से प्रस्थान कर दिया और कुछ दिनों के बाद बल्लभगढ़ से और भी पीछे हट गया। उसने बल्लभगढ़ में खाइयाँ खोदीं और भित्तियाँ खड़ी कीं जब कि उसका शिविर ५ मील और दक्षिण को हट कर सिकरी में था। मन्द और शनैः प्रयाणों द्वारा इमादुलमुल्क उसके पीछे-पीछे सतत बढ़ रहा था। २६ को उसने खिज़िराबाद छोड़ा और दिल्ली से १६ मील दक्षिण में किशन दास के तालाब और बदरा पुर से होकर पहिली सितम्बर को फरीदाबाद के उत्तर में पहुँच गया। उसकी आज्ञा की अवहेलना कर उसके सपाहियों ने क़स्बा लूट लिया†। इमादुलमुल्क ने अब बल्लभगढ़ को हस्तगत करने की तैयारियाँ आरम्भ कीं जो उसकी और सिकरी में भूतपूर्व वज़ीर की छावनी के बीच में एक बहुत सुदृढ़ रक्षा स्थान था। परन्तु इस समय नजीब खाँ रुहेला, बहादुर खाँ बलूच और चिन्ता गूजर ने और उनके जाति भाइयों ने जिनका वेतन बहुत दिनों से बक़ाया था, अपनी खाइयाँ छोड़ दीं जो शाही सेना की अग्र पंक्ति में थीं और बारापुला को जाकर वहीं ठहर गये और बादशाह के पक्ष वालों और उसके शत्रुओं को समान रूप से लूटने लगे। दूसरे दिन शाही तोपखाने के सिपाहियों ने भी अपनी स्थितियाँ छोड़ दीं और दिल्ली को अपना वेतन मांगने चल पड़े। साम्राज्यवादियों की इतनी बड़ी संख्या की अनुपस्थिति का लाभ उठा कर सफ़दर जंग ने जितने हो सके सिपाही इकट्ठे किये और ६ सितम्बर को शत्रु की रक्षा परिखा पर साहसी और शक्तिशाली आक्रमण किया। परन्तु भित्तियों पर अपने आदमियों को सैन्य सहायता देने के लिये इमादुलमुल्क २० हज़ार

---

†ता० अहमदशाही ६७ अ-७१ अ; दिल्ली समाचार ७८-७६; अन्ता जी का पत्र—भारत इतिहास संशोधक मण्डल का पत्र-जिल्द III-पत्र-२४; सुजान चरित २००-२०६।

घुड़सवार लेकर जल्दी से आगे बढ़ा और दूसरे दिन की लड़ाई के बाद उसने भूतपूर्व वज़ीर को हरा दिया। ७ और ८ को सूरजमल के जाट जिनकी संख्या ५-६ हज़ार थी, उत्तर में किशन दास के तालाब तक फैल गये। वे अन्न के व्यापारियों को लूट लेते, सिपाहियों को मार डालते, उनके हथियारों और लद्दू जानवरों को छीन लेते और इस तरह से शाही सेना की रसद और कुमकें उन्होंने काट दीं। खाद्य सामग्री की कमी पर, रुहेलों की अनुपस्थिति पर और बादशाह के उदासीन चरित्र पर निराशाग्रस्त होकर इमादुलमुल्क ने ११ सितम्बर को अपनी रक्षा-परिखा छोड़ दी, दूसरे दिन अहमद शाह से मिला, धन और कुमक के लिए सबल निवेदन किये, परन्तु उन पर ध्यान न दिया गया। अतः दिल्ली से बाहर जाने से इन्कार कर दिया जब तक कि नजीब खाँ और उसके जाति भाइयों को उनका शेष वेतन न मिल जाये और वे रण-क्षेत्र में वापस आने को तैयार न हो जायें[१]।

यह समझ कर कि भूतपूर्व वज़ीर को अकेले हाथ सर्वथा कुचल देना ना मुमकिन था इमादुलमुल्क ने साग्रह आमन्त्रण-पत्र मल्हरराव और जयाप्पा को भेजे, जो उस समय दक्षिण में थे, कि जल्दी से उसकी मदद पर आजायें जिसके लिये बादशाह पेशवा को एक करोड़ रुपये देने को सहमत हो गया। यह अवध और इलाहाबाद की राजधानी के अतिरिक्त था जिसके देने का वचन पहिले ही दिया जा चुका था। परन्तु इमादुलमुल्क की योग्यता की ईर्षा से और इस भय से कि कहीं वह दूसरा सफदर जंग न बन जाये अहमद शाह और उसका नया वज़ीर इन्तिज़ामुद्दौला हृदय से शीघ्र शान्ति के इच्छुक थे। अतः उन्होंने जयपुर के राजा माधवसिंह कछवाहा को लिखा कि दिल्ली आ जाये और शान्ति स्थापित करे और मीर बख्शी की विनतियों पर पर भी कि भूखा पीड़ित सिपाहियों के चढ़े वेतन दे दिये जायें और वह स्वयं रणक्षेत्र में आये बादशाह राजधानी से बाहर न निकला। इन्तिज़ामुद्दौला ने शत्रु की शान्ति प्रस्तावना पर भी जल्दी से विचार करने को तैयार हो गया और १४ सितम्बर को उसने अपने वकील लुत्फुल्ला बेग को शत्रु के शिविर में उसके साथ शर्तें तै करने भेज दिया। अतः इमादुलमुल्क जो ११ को दिल्ली लौट आया

[१]ता० अहमद शाही ७१ अ-७३ अ; दिल्ली समाचार ७६ और ८०।

या अपने घर में रुष्ट होकर बैठ गया*।

इस अवसर का उपयोग करके सफदर जंग और सूरजमल साहस पूर्वक फरीदाबाद के उत्तर को बढ़ गये, १४ को उन्होंने शाही खाइयों पर आक्रमण किया, जिनको मीर बख्शी ने सराय ख्वाजा बख्तावर खाँ, बदरापुर और अन्य जगहों पर छोड़ दिया था, दिल्ली की सेना को हर जगह हरा दिया और अन्न, बैल और अन्य सामान उठा ले गये। इस पर दिल्ली की क्रुद्ध जनता और सामन्तों ने भी सफदर जंग को अनेक शाप दिये और इन्तिज़ामुद्दौला को व्यंग और गालियाँ दीं जो सफदर जंग के साथ शान्ति का मध्यस्थित था। आगे चल कर २० सितम्बर की रात को भूतपूर्व वज़ीर के सिपाहियों ने फरीदाबाद के दक्षिण से बख्तावर खाँ की शाही खाइयों पर आक्रमण किया और उसी समय उसके जाटों ने, जो शुक्रुल्ला बेग और सफदर जंग के दूतों को दिल्ली पहुँचा कर लौट रहे थे, उत्तर से साम्राज्यवादियों पर आक्रमण किया और बख्तावर खाँ के बहुत से सिपाहियों को मार डाला। खाँ के सिपाही जिन पर आगे से और पीछे से एक साथ हमला हो रहा था हार मानने को तैयार थे जब उनकी सहायता पर यथा समय लाहौर और बीकानेर के सैन्यदल और अन्ता जी के मराठा सवार पहुँच गये। अब रण की लहर भूतपूर्व वज़ीर के विरुद्ध हो गई जो हार मानने पर और रणक्षेत्र से वापस होने पर मजबूर हो गया। सफदर जंग की इस विश्वासघाती नीति से दिल्ली में बहुत रोष फैल गया और इसके कारण २२ सितम्बर को शान्ति की वार्ता भंग हो गई†।

इस बीच में खबर पहुँची कि माधवसिंह और मराठे सरदार अपने अपने प्रदेशों में चल चुके हैं। भूतपूर्व वज़ीर को भी मालूम हो गया कि २४ को रुहेलों को उनके शेष वेतन का कुछ भाग मिल गया है और मीर बख्शी अपनी रक्षा परिखा की ओर प्रतियान कर रहा है और २८ सितम्बर की रात बारापुला पर नजीबखाँ की छावनी में बिता रहा है। इसके पहिले कि साम्राज्यवादियों को नये सैनिक इमादुल्मुल्क के नेतृत्व में पहुँच जायें, उन पर तीव्र प्रहार करने के लिये सूरजमल और सफदरजंग

*शाकिर ७५; अब्दुलकरीम २८०; दिल्ली समाचार ८०; ता० अहमदशाही ७२ अ-७३ अ।

†ता० अहमद शाही ७३ अ-७५ अ।

के अन्य सेनापति अपने सिपाहियों को और छोटी और बड़ी तोपों को लेकर २६ की प्रभात को दिल्ली की सेना की रक्षा परिखा के सामने प्रगट हुये। उन्होंने शाही खाइयों के दक्षिण पक्ष पर प्रबल प्रहार किया जो मराठों की संभाल में थीं और जो तोपों से सुरक्षित न थीं। मराठे हार गये और बहुत से मारे गये। अबु तुराबखां, हमीदुद्दौला, हाफ़िज़ बख्तावर खाँ और जमीलुद्दीनखाँ उनकी मदद के लिये आगे बढ़े और लड़ाई चल रही थी जब इमादुलमुल्क और नजीबखाँ रणस्थल पर पहुँच गये। मीर बख्शी ने साम्राज्यवादियों में नया बल फूँक दिया और उसने साहस पूर्ण आक्रमण किया। फ़रीदाबाद के तालाब के पास घोर युद्ध हुआ। इमादुलमुल्क अपना हाथी भूतपूर्व वज़ीर की सेना के बीच में ले आया। उसके एक हाथी के मस्थे पर, जिस पर उसका फ़ण्डा था तोप का एक गोला लगा और वह तुरन्त मर गया। एक दूसरे गोले से स्वयं मीर बख्शी के हाथी के दान्त टूट गये। तब वह घोड़े पर सवार हो गया और अपने सिपाहियों को हमले पर अग्रसर किया। जाट हार गये और भगा दिये गये। दोनों पक्षों के बहुत से आदमी मारे गये। सफ़दरजंग के मुख्य सेनापति इस्माईलखां को भाले का घाव लगा। ४ मील तक विजेताओं ने शत्रु का पीछा किया और सायंकाल को अपनी छावनी में वापस आगये। दूसरे दिन (३० सितम्बर) इमादुलमुल्क ने अपनी खाइयां बल्लभगढ़ के डेढ़ मील उत्तर में मजेसर के गांव तक बढ़ा लीं, अपनी तोप-भित्तियां वहां पर लगादीं और जाटों के गढ़ पर गोले बरसाने लगा। नजीबखां ने सीही पर आक्रमण किया और उसको हस्तगत कर लिया जो मजेसर से क़रीब एक मील पूर्व में था। और पास के समृद्ध जाट प्रदेश का रुहेले और मराठे लूटने लगे*।

शान्ति सफ़दर जंग अवध को वापस ७ नवम्बर १७५३ ई०

युद्ध ६ मास तक चला और दोनों दलों के धैर्य और साधनों को उसने निःशेष कर दिया। शाही सैनिक, रुहेले, बलूच और गूजर स्वार्थी सिपाही अपने वेतनों के लिये शोर मचा रहे थे जो बहुत समय से बक़ाया में थे और शाही संस्थानों के गहनों, सोने चांदी की चद्दरों, और

* ता० अहमदशाही ७५ ब-७७ ब; दिल्ली समाचार ८०; शाकिर ७५; सुजान चरित २१२-२२२; अन्तिम ग्रन्थ सूरजमल को विजयी बताता है जो सत्य के विपरीत है।

उपस्करणों की बिक्री से लब्धधन भी सिपाहियों के देयधन को चुकाने के लिये पर्याप्त न थे† । सफदर जंग भी जो भारी धन व्यय से दबा हुआ था इस निरर्थक युद्ध से जिसमें मुख्यतया उसी की हानि हो रही थी ऊब गया था‡ । अतः दक्षिण से मराठों के आगमन से पहिले दोनों शान्ति चाहते थे—बादशाह इसलिये कि महत्वाकांक्षी इमादुल्मुल्क के साथ उनकी मित्रता उसको कुछ मास पहिले के भूतपूर्व वज़ीर की अपेक्षा अधिक शक्तिशाली बना देगी और सफ़दरजंग इसलिये कि उनका आगमन उसके सर्वनाश की भविष्यवाणी होगा । अकेला इमादुल्मुल्क ही युद्ध चाहता था और भूतपूर्व वज़ीर का सर्वनाश करने पर तुला हुआ था इस उद्देश्य से कि सफदरजंग के अवध और इलाहाबाद के सूबे उसको मिल जायें और वह दरबार और साम्राज्य में एकाधिपति का स्थान प्राप्त करले । उसने बादशाह से असंख्य बार सबल आग्रह किया कि अपनी आत्मरक्षा पर रहने की निर्बल नीति को छोड़ दे, स्वयं रणस्थल में प्रयाण करे और सारी सेना को पूरे दलबल से एक आक्रमण की आज्ञा दे कि एक निर्दिष्ट रण में सारा युद्ध समाप्त हो जावे । परन्तु सफदर जंग को कुचल देने की मीर बख्शी की उत्सुकता जिससे नये वज़ीर और बादशाह के मन में घोर शंकायें उपस्थित हो गईं, और अहमदशाह की प्राकृतिक कायरता ने भूतपूर्व वज़ीर की रक्षा की । अपने भतीजे की योजनाओं को आरम्भ ही में नष्ट करने के लिये और इमादुल्मुल्क पर नियन्त्रणार्थ सफदरजंग को सुरक्षित रखने के लिये और मीर बख्शी के विरुद्ध मिश्ररूप में उसकी सेवाओं का उपयोग करने के लिये इन्तिज़ामुद्दौला ने बादशाह और राजमाता को परामर्श दिया कि शान्ति करलें और अहमदशाह ने जो कायरता से महल में छुप गया था, प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया । अतः जब जून १७५३ के अन्त में सूरजमल ने शान्ति की प्रस्तावना की, इन्तिज़ामुद्दौला ने सावधानी से उस पर विचार किया और शान्ति की वार्ता प्रारम्भ करदी । परन्तु चूँकि इमादुल्मुल्क उससे सहमत न था, वार्तालाप छोड़ देना पड़ा । आगे चलकर जब भूतपूर्व वज़ीर की ओर से प्रस्ताव आया, इन्तिज़ामुद्दौला ने १४ सितम्बर को

---

† दिल्ली समाचार ८०; ता० अहमदशाही क्षुधा पीड़ित सिपाहियों के उपद्रवों के वर्णनों से भरा पड़ा है ।

‡ सियर III ८६१ ।

अपने विश्वास पात्र वकील लुत्फुल्ला बेग को सफ़दरजंग से शर्तें तय करने भेजा। वह उस समय बल्लमगढ़ के ८ मील पश्चिम में बादशाहपुर में अपनी छावनी में था। उसने २० को दूत का स्वागत किया और अपने वकीलों राजा लक्ष्मीनारायण, जुगलकिशोर, मकरन्दकिशोर और भीमनाथ को उसी सेवाकार्य पर दिल्ली भेजा। परन्तु जैसे पहिले कहा जा चुका है यह वार्तालाप अकस्मात् समाप्त होगई क्योंकि सफ़दर जंग ने विश्वासघात कर एक रात्रि में आक्रमण कर दिया था और युद्ध तुरन्त पुनः छिड़ गया* ।

इस बीच में राजा माधवसिंह एक बड़ी सेना सहित ६ अक्तूबर को मुहरम नगर के गाँव पर पहुँच गया कि अपने सौजन्य से गृहयुद्ध को समाप्त करने का प्रयत्न करे। इन्तिज़ामुद्दौला ने उसका वहाँ पर स्वागत किया और दोनों साथ साथ दिल्ली से ६ मील दक्षिण यमुना के तट पर नगला को पहुँचे जहाँ राजा ने डेरा डाला। इस वास्ते कि इमादुलमुल्क के द्वारा माधवसिंह बादशाह से न मिले, वज़ीर अहमदशाह को विनोद के बहाने बाहर लाया और प्रयाण ही में १५ को राजा को उससे मिला दिया। १८ को बादशाह ने दरबार खास में विधिपूर्वक उसको दर्शन दिये और २३ को एकान्त में उससे परामर्श किया। अहमदशाह ने बड़े दुख से सफ़दर जंग, इन्तिज़ामुद्दौला और इमादुलमुल्क की शिकायतें की जो साम्राज्य का नाश कर रहे थे। उसने कछवाहा सरदार से प्रार्थना की कि इस संकट समय पर वह साम्राज्य को उस नाश से रक्षा करे जो अवश्यम्भावी प्रतीत होता था। माधवसिंह ने जो वशवर्ती सामन्त और अनुभवी पुरुष था, बादशाह को सान्त्वना दी और कहा कि राज्य पर कोई अनिष्ट न आने दिया जायेगा। मुग़ल बादशाह प्रसन्न हो गया और रत्नजटित पेंच सहित अपनी पगड़ी उतारकर उसको राजा के सिर पर रख दिया और उसको और उसके मुख्य परिचरों को बहुमूल्य वस्त्रों और पुरस्कारों से सम्मानित किया‡।

बादशाह ने अपने आदमियों को आज्ञा दी कि सैनिक सावधानता में

---

* ता० अहमदशाही ६१ अ, ६३ अ–६६ ब, ७३ अ–७५ अ; दिल्ली समाचार ८०; शाकिर ७५।

‡ ता० अहमदशाही ७८ अ—८१ ब।

ढील न करें और इमादुलमुल्क को लिखा कि युद्ध जारी रखे और शत्रु से शान्ति की बात-चीत न करे। इसका अभिप्राय यह था कि मीर बख्शी को सन्देह न हो कि वज़ीर और जयपुर के राजा के माध्यम से सन्धि की बातचीत चल रही है। बादशाह को यह भी भय था कि इमादुलमुल्क शान्ति का माध्यम न बन जाये और अपनी ओर से सफ़दर जंग और सूरजमल से शर्तें तय कर ले। वास्तव में जाट सरदार ने अक्तूबर के बीच में इमादुलमुल्क से सन्धि की बातचीत छेड़ी थी और उसके माध्यम से शान्ति हो भी जाती यदि मीर बख्शी इस बात पर डट न जाता कि सूरज अपने सब प्रदेशों को छोड़ दे सिवाय उनके जो उसके पिता बदनसिंह के पास पहिले से थे। इन चालों के बावजूद बादशाह का उद्देश्य मीर बख्शी से छुपा न रह सकता था। सफ़दर जंग ने अक़ीबत महमूद खाँ को बादशाह और उसकी माता के पत्रों की प्रतिलिपियाँ दे दीं जिनमें उनसे कहा गया था कि इन्तिज़ामुद्दौला के द्वारा शान्ति स्थापित कर ले। अतः बादशाह मजबूर हो गया कि इस आरोप का निराकरण करे और इमादुलमुल्क को लिखे कि उसका इरादा शान्ति का न था और वे सब पत्र सफ़दर जंग के कपट निर्माण थे जो निस्सन्देह झूठ था—साफ़ और प्रत्यक्ष। परन्तु इस अस्वीकरण से मीर बख्शी धोखा न खा सकता था और प्रतिद्वन्दी के उद्देश्यों को निष्फल करने के लिये उसने स्वयं अब शत्रु से वार्तालाप आरम्भ किया। परन्तु इन्तिज़ामुद्दौला कूटनीति की चालों में हराया न जा सकता था और उस ने बादशाह को राज़ी कर लिया कि वह विनोद भ्रमण के बहाने से माधव सिंह के शिविर को जाये और सूरजमल से शान्ति कर ले। अत: २५ अक्तूबर को बादशाह ने खिज़िराबाद की बाग को प्रयाण किया, रास्ते में वज़ीर उसके साथ हो गया और दोनों राजा के शिविर को गये। माधवसिंह ने सूरजमल के वकील का परिचय दिया जिसने बादशाह को भेंट अर्पित की और जाट सरदार के लिये क्षमा प्राप्त की। अहमदशाह दिल्ली को वापस आया और अगले दिन बल्लमगढ़ के दक्षिण में अपने शिविर से थोड़े से अंगरक्षकों के साथ सूरजमल आकर वज़ीर और बादशाह से मिला और मुग़ल सम्राट के साथ विधिवत् शान्ति कर ली*।

गृहयुद्ध के विधिपूर्वक अन्त को और बादशाह और भूतपूर्व वज़ीर

* ता० अहमदशाही ८१ ब-८३ ब।

के बीच में शान्ति की स्थापना की यह सूरजमल की क्षमा प्रस्तावना रूप थी। पहिली नवम्बर को इन्तिज़ामुद्दौला राजा जुगल किशोर के बाग में अपने डेरे से दरबार को वापस आया और ५ को माधवसिंह का वकील फ़तेहसिंह सफदर जंग के पास एक शाही फ़रमान, ६ वस्त्रों की खिलात, एक रत्नजटित मुकुट, एक पछेवड़ी, एक मोतियों की माला और एक घोड़ा बादशाह की ओर से ले गया। सफदर जंग ने उचित सम्मान और रीति से राजभक्त प्रजा की भाँति इनको स्वीकृत किया। इस शुभ शान्ति के विरुद्ध इमादुलमुल्क ने अपना विरोध प्रदर्शित किया जिस पर बादशाह और वज़ीर ने पूर्ण अज्ञान का बहाना किया। तब भी गृहयुद्ध समाप्त हो गया और सफ़दर जंग अवध और इलाहाबाद के प्रान्तों की राज्यपाली पर स्थिरित कर दिया गया। बल्लमगढ़ के दक्षिण-पूर्व ५ मील पर सिक्री के गाँव से उसने अपना शिविर उठा लिया और ७ नवम्बर १७५३ई० को अवध की ओर अपना प्रयाण आरंभ कर दिया। उसकी सेवाओं की मान्यता में माधवसिंह को रणथमभौर का अजेय दुर्ग दिया गया जिसको उसके पूर्वाधिकारी को देने से मुहम्मद शाह ने इन्कार कर दिया था, और अपने कार्य की सफलता पर संतुष्ट होकर वह जयपुर चल दिया* ।

सफ़दर जंग, दिल्ली से वापसी के बाद

आगरा की दिशा में प्रयाण करते हुये सफ़दर जंग १३ को मथुरा पहुँचा और वहाँ १७ तक ठहरा रहा। उसके साथ अब भी वह सुन्दर नपुँसक था जिसको कुछ मास पूर्व उसने गद्दी पर बैठाया था। वह लाल क़नातों से घिरे हुये लाल डेरों में रहता था (लाल डेरे रखना मुग़ल भारत में बादशाह के विशेष अधिकारों में से था) और इस कारण से बादशाह और उसके दरबार को आशंका थी कि भूतपूर्व वज़ीर कहीं फिर न कष्ट दे। १७ को मथुरा पर सफ़दर जंग ने यमुना को पार किया और अवध की ओर मुड़ गया। २२ को शिकोहाबाद और फ़ीरोज़ाबाद के क़स्बों के पड़ोस में पहुँचकर उसने अमरसिंह की संरक्षता में छद्मिक बादशाह को आगरा भेज दिया और स्वयं लखनऊ की ओर चल पड़ा।

* ता० अहमदशाही ८४अ-८५ अ; दिल्ली समाचार ८१-८२; हरिचरण ३१२ अ; सियर III ८६३; त० म० १०७ ब; सुजान चरित २२२-२२३।

यहाँ वह कुछ दिनों के लिये ठहर गया कि प्रशासन को जो गृह युद्ध के कारण गड़बड़ हो गया था पुनः संगठित कर दे और तब २२ दिसम्बर को उसने फ़ैज़ाबाद के लिये प्रस्थान किया। यहाँ वह अपने बड़े भाई मिर्ज़ा मुहसिन के पुत्र मुहम्मद कुली खां—उर्फ छोटे मिर्ज़ा को और शुजाउद्दौला को अपना कार्य समाप्त करने के लिये छोड़ गया*।

सबसे महत्व की समस्या जो उस समय वज़ीर के सामने थी वह अपने साधनों की वृद्धि और अपनी सेना के पुनः संगठन की थी। ताकि वह अपने प्रदेश की मराठों और इमादुल्मुल्क से रक्षा कर सके। गृहयुद्ध के आरम्भ में अवध और इलाहाबाद पेशवा को दे दिये गये थे और उसके सेनापति स्वभावतः इन प्रान्तों को सफदर जंग के हाथों से छीन लेना चाहते थे। इमादुल्मुल्क कम उत्कण्ठा से अवसर की प्रतीक्षा न कर रहा था जब वह अपने पुराने आश्रयदाता का नाश कर दे और उसके प्रान्तों का अपने लिये अपहरण कर ले। बहुत पहिले उसके अधिकारी अक़ीबत महमूद खाँ ने एक शाही फरमान का कपट निर्माण किया था जिसका आशय था कि अवध मीर बख्शी को दिया जाता है और उसने खिलात भी धारण कर ली थी (जो बादशाह ने सौजन्यता के ढग पर उसके पास भेजी थी) और यह भी घोषित कर दिया था कि वह अवध की सूबेदारी में उसका प्रतिष्ठापन है†। १६ नवम्बर को जब दिल्ली में खबर पहुँची कि सफदर जंग मथुरा से लखनऊ चल दिया है, इमादुल्मुल्क ने स्पष्ट घोषणा कर दी कि अवध और इलाहाबाद उसको (मीर बख्शी) दिये गये हैं और वह उन पर अधिकार करने जा रहा है‡। २२ दिसम्बर को अहमदशाह वास्तव में मीर बख्शी को इलाहाबाद का सूबेदार नियुक्त करने पर विवश हो गया§। इमादुल्मुल्क और उसके मराठा मित्रों के इन षडयन्त्रों का प्रतिकार करने के लिये सफदर जंग ने उसके प्रतिद्वन्दी इन्तिज़ामुद्दौला से मैत्री सम्बन्ध स्थापित कर लिया और बादशाह को कभी कभी भेंट भेज कर उसकी कृपा प्राप्त करने का प्रयत्न किया। उसने ४० बाज़ और युद्ध और शिकारी चिड़ियाँ और

---

* ता० अहमदशाही ८६ अ-८७ अ; ८८ अ; ६० अ; १०६ अ।

† ता० अहमदशाही ८७ ब।

‡ ता० अहमदशाही ८८ ब।

§ ता० अहमदशाही ६८ ब।

आठ गाड़ी भर लखनऊ की मिठाइयाँ भेजीं जो वज़ीर ने बादशाह को ६ जनवरी १७५४ ई० को भेंट किया*। चतुर यद्यपि निर्बल राजनीतिज्ञ इन्तिज़ामुद्दौला ने अपनी प्रतिद्वंदी शत्रुता के होते हुये भी आरम्भ से अपना भरसक प्रयत्न किया था कि भूतपूर्व वज़ीर को सर्वनाश से बचा ले। अब उसने उसको और उसके आठ मित्रों को अपना मित्र बना लिया कि अपने भतीजे की महत्वाकांक्षी योजनाओं पर नियन्त्रण रख सके। और उसने उसके विश्वासपात्र अधिकारियों को—जैसे राजा लक्ष्मी नारायण और जुगल किशोर—बादशाह से क्षमा दिला दी और उनके घरों को जो गृह युद्ध में ज़ब्त कर लिये गये थे, उन्हें वापस दिला दिया†।

सफ़दर जंग ने प्रशासन को पुनः संगठित करने का और विद्रोही ज़मींदारों का अधीनस्थ करने का कार्य पहिले ही आरम्भ कर दिया था। यह देखकर कि इमादुलमुल्क का ध्यान जाटों की ओर बंटा हुआ है, सफ़दर जंग जौनपुर को कूच कर गया, वहां से बनारस को जहाँ वह १७ फरवरी १७५४ ई, को पहुँच गया। यहां के स्थानीय राजा बलवन्तसिंह ने, जिसका अधानाकरण अप्रैल १७५२ ई० में स्थगित कर दिया गया था, गृह युद्ध के समय स्पष्ट धृष्टता दिखाई थी और अवध और इलाहाबाद के नायब सूबेदार से लड़ गया था। अब सफ़दर जंग के निकट आगमन पर वह भयभीत हो गया, उसने गंगा को पार किया और बनारस से १४ मील दक्षिण पूर्व चन्दौली में उसने शरण ली परन्तु मालूम होता है कि उसने अपनी अधीनस्थता समय पर स्वीकार कर ली और अपने को नवाब के क्रोध से बचा लिया।

मराठों और इमादुलमुल्क के विरुद्ध सफ़दर जंग, बादशाह से सम्मिलित, मार्च-मई—१७५४ ई०।

सफ़दर जंग के अवकाश ग्रहण के चार महीनों के अन्दर ही बादशाह अहमद शाह इमादुलमुल्क की तानाशाही से ऊब गया और उसने भूतपूर्व मन्त्री को आमन्त्रण दिया कि मीर बख्शी और उसके मराठा मित्रों के विरुद्ध वह एक अभियान में सम्मिलित हो जायें‡। यह इस प्रकार हुआ। सफ़दर जंग के विरुद्ध इमादुलमुल्क की सहायता की विनती पर रघुनाथराव

---

* ता० अहमदशाही १०६ ब।

† ता० अहमदशाही ६७ अ।

‡ ता० अहमदशाही ११२ ब।

एक बड़ी सेना लेकर नवम्बर १७५३ ई० में जयपुर के पास पहुँच गया। इस सेना में मल्हरराव होल्कर, जयाप्पा सिन्धिया और अन्य शक्तिशाली सरदारों के दल सम्मिलित थे। परन्तु इस समय तक गृह-युद्ध समाप्त हो चुका था। इमादुलमुल्क के प्रोत्साहन से जो सफदर जंग के अनन्य मित्र सूरजमल के प्रति बदले की प्यास से झुलस रहा था, मराठों ने जाट प्रदेश पर आक्रमण किया और जनवरी १७५४ ई० में सूरजमल को कुम्हेर के गढ़ में घेर लिया। ग़ाज़ीउद्दीन खाँ, इमादुलमुल्क भी कुछ शाही सेना और तोपखाना लेकर मार्च में अवरोधकों के साथ हो गया। घेरा दो महीनों तक चलता रहा, यद्यपि सूरजमल को अनेक कष्ट झेलने पड़े किन्तु गढ़ छीना न जा सका। अतः जाट गढ़ पर गोलाबारी करने के लिए इमादुलमुल्क ने अक़ीबत महमूद खाँ को दिल्ली भेजा कि शाही अस्त्रागार से कुछ बड़ी तोपें ले आये। इस पर सूरजमल को अवसर मिल गया। उसने बादशाह और इन्तिज़ामुद्दौला को पत्र लिखे कि यदि इमादुलमुल्क की महत्वाकांक्षी योजनायें आरम्भ ही में निष्फल न कर दी जायेंगी, वह सफलता से पागल हो जायेगा और मराठा सहायता से वह वज़ीर को पद-मुक्त कर देगा और साम्राज्य का नष्ट कर देगा। उसने उनको सुझाव दिया कि मीर बख़्शी को बड़ी तोपें न दी जायें और सफ़दर जंग और राजस्थान के राजाओं को आमन्त्रित किया जाये और उनकी सहायता से घृणित मराठों को, जो उन सब के समान रूप से शत्रु थे, उत्तर भारत से निकाल दिया जाये। बादशाह और वज़ीर ने योजना को पसन्द किया। वज़ीर तोपखाना को ऋण रूप में देने से बचना चाहता था। उसने सफ़दर जंग को गुप्त पत्र लिखे कि अपने प्रान्त की सीमा तक आ जाये और बादशाह के साथ हो जाये जैसे कि वह अलीगढ़ पहुंचे। जयपुर और जोधपुर के शासकों को भी पत्र लिखे गये कि वे अपनी सेनाओं सहित चल पड़ें और आगरा पर साम्राज्यवादियों से आ मिलें। इस बीच में अक़ीबत महमूद खां ने एक उपद्रव खड़ा कर दिया जिससे दिल्ली की गलियों में रक्तपात हो गया। परन्तु अक़ीबत महमूद खां हार गया और राजधानी से निकाल दिया गया और बादशाह अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ़ रहा।

जब सब से प्रोत्साहक उत्तर प्राप्त हो गये तो बादशाह ने अपने दरबार और अन्तःपुर के परिच्छद सहित, भूखे सिपाही और लद्दू जानवर लेकर, २७ अप्रैल १७५४ई० को दिल्ली से प्रस्थान किया। उसने यह मशहूर कर दिया कि वह दुग्राब को विनोद भ्रमण पर जा रहा है। सफ़दर जंग

भी कन्नौज के नीचे गंगा के किनारे मेंहदी घाट पर पहुँच गया और वहाँ पर छावनी डाली कि अलीगढ़ में अहमद शाह के आगमन की प्रतीक्षा करे। परन्तु अग्निमोक गढ़ की शरण लेने के स्थान पर जैसा कि निश्चित था बादशाह मूर्खतावश सिकन्दराबाद के पड़ोस में घूमता रहा। उसके गतिविधि की सूचना पाकर मल्हरराव, जिसने मई के मध्य में सूरजमल से शान्ति कर ली थी और जो कुम्मीर से वापस आ गया था, चुपके से अपने शिविर से लपक गया, २५ मई की रात्रि को असावधान मुग़लों पर टूट पड़ा और प्रत्येक वस्तु को सिवाय महले ज़मानी के रत्नकोष के लूट लिया। अपनी षडयंत्रकारिणी माता के सिवाय अपने अन्तःपुर की सब महिलाओं को पीछे छोड़ कर, कापुरुष बादशाह भयभीत होकर मराठों के प्रगट होने के पहिले ही दिल्ली की ओर भाग निकला। वज़ीर ने उसका अनुकरण किया और शेष साम्राज्यवादी भय और संभ्रम में तितर बितर हो गये और शाही महिलायें भी बन्दी बना ली गईं। इस बीच में मल्हरराव के साथ इमादुल्मुल्क दिल्ली पहुँचा, अपने चाचा इन्तिज़ामुद्दौला को पदच्युत करा दिया और रविवार २ जून १७५४ ई० को उसके स्थान पर अपने को वज़ीर नियुक्त करा लिया। उसी दिन उसने अहमद शाह को गद्दी से उतार दिया, उसको और उसकी माता को कारागार में डाल दिया और जहाँदार शाह के ५५ चान्द्रवर्षी पुत्र अज़ीज़ुद्दीन को आलमगीर द्वितीय की उपाधि से राजगद्दी पर बैठा दिया। यह देख कर कि उसकी योजना सर्वथा निष्फल हो गई है सफ़दर जंग अवध को वापस आ गया। मराठों ने सूरजमल से पहिले ही शांति कर ली थी और अब वे दक्षिण को वापस गये*।

सफ़दरजंग की मृत्यु ५ अक्तूबर १७५४ ई०

मेंहदी घाट से वापस आकर सफ़दर जंग ने सेना को शक्तिशाली बनाने के और साधनों को पुनः संगठित करने के कार्य में अपने को जुटा दिया ताकि वह कृतघ्न इमादुल्मुल्क का और स्वार्थी मराठों का जिनकी स्पर्धा भरी आँखें अवध और इलाहाबाद पर लगी हुई थीं, सफ-

*ता० अहमद शाही १०३ ब-१०४ ब, ११० अ, ११६ अ-१२४ ब, १२६ अ-१३७ अ; त० म० १५५ अ-१६३ अ; अब्दुलकरीम १८०-८२; मोराल III १४८ ब-१४६ ब, सियर IV, ८६१-६२; शाकिर ७६ ७७; हादिक़ १३५; प्रो० कानूनगो-जा० इ०, I, पृ० ८७-६४।

लता पूर्वक सामना कर सके। इस समय उसकी एक टाँग में एक फोड़ा निकल आया जो जल्दी ही बिगड़ कर व्रण हो गया। अनुभवी और निपुण चिकित्सक उसको अच्छा करने के अपने यत्नों में हार गये और गोमती के किनारे पापड़ घाट पर १७ ज़िलहिजा ११६७ हि० को उसका देहान्त हो गया (यूरोपीय गणना के अनुसार ५ अक्तूबर १७५४ ई०)*। उसका शव दिल्ली लाया गया और शाहेमरदाँ की क़बर के पास दफ़न किया गया। उसके पुत्र शुजाउद्दौला ने, जो उसके सूबों की राज्य पाली में उसका उत्तराधिकारी हुआ, उसकी क़बर पर एक भव्य मक़बरा (समाधि भवन) बना दिया जिस पर तीन लाख रुपयों की लागत आई और जो भारत में अपनी जाति के अति सुन्दर भवनों में से है। समाधि-भवन के फाटक पर निम्नपद खुदा हुआ है जिसमे उसकी मृत्यु तिथि मालूम होती है:—

چون آن صفدر عصر مردی ز دار فنا گشت رحلت گزین

چنین سال تاریخ او شد رقم که بادا مقیم بهشت برین +

जब सफदर मृत्युलोक से विदा हुआ, उसकी मृत्यु का वर्ष इस प्रकार अङ्कित है—'ईश्वर उसको उत्तम स्वर्ग में स्थान दे'।

---

* त० म० १७८ अ; अब्दुलकरीम २८१; सियर III ८६४-६५; मु० उ० I ३६८; गुलिस्तां ५०; तबसीर २८१ अ; मादन IV १८७ ब; इमाद पृ० ६५, ११६६ हि० बताता है जो ग़लत है। दिल्ली समाचार पृ० १०० में १७ ज़िलहिजा के स्थान पर १७ मुहर्रम है जो लेखक की चूक हो सकती है।

\+ بادا مقیم بهشت برین (११६७ हि०)

सफ़दर जंग का व्यक्तित्व और चरित्र

सफ़दर जंग— मनुष्य के रूप में

अपने पूर्वाधिकारी सआदतखाँ और अवध की मसनद पर अपने सारे वंशजों की भांति* नवाब वज़ीर अबुलमन्सूरखां सफ़दरजंग की आकृति सुन्दर और तेजस्वी थी—चौड़ा मत्था, लम्बी नाक, चमकीली आंखें, गोरा रंग और घनी दाढ़ी। अपने प्राकृतिक उपहार कुशाग्रता और व्युत्पन्नमतित्व के साथ साथ उसमें संस्कृत स्वभाव, मनोहर आचरण और परिष्कृत रुचि भी उसमें पाये जाते थे। वार्तालाप में वह नम्र और ध्यान शील था, परन्तु जनसाधारण के कार्यों और उत्सवों के अवसरों पर वह गम्भीर और गौरवान्वित था और अपराधियों उपद्रवियों को दण्ड देने के समय वह कठोर था†। अपने समय के शगुनों और फलित ज्योतिष में विश्वास रखने वालों से ऊपर न था और उसके अपने ज्योतिषी और नक्षत्र द्रष्टा थे। वह उच्च शिक्षा प्राप्त किये हुये था। वह कोमल और सरल फ़ारसी लिखता था। उसके पत्रों और आवेदनों में रीतिगत अलक़ाब (सम्बोधन) और उगदाब (विनम्रता) को छोड़ कर उसके लेख कठिन अलकारों और लच्छेदार व्यञ्जनाओं से प्रायः मुक्त होते थे। वह स्वयं साहित्य प्रेमी था और विद्वानों को आश्रय देता था, उनके लिये उपाधियाँ प्राप्त करता और उनको उपयुक्त भत्ते और पुरस्कार देता। स्वयं अपने धर्मगुरु शाह बासित के अतिरिक्त ईरान के शेख मुहम्मद हसन, पवित्र मशद के सैयद ज़ैनुलाबदीन तबतबाई, सैयद मुहम्मदअली औरंगाबादी, मीर गुलाम नबी बिलग्रामी, मलिकुलुल्मा

* अवध के नवाबों और बादशाहों के चित्र लखनऊ की चित्रशाला में सुरक्षित हैं और देखे जा सकते हैं। अवध के पद-च्युत बादशाह वाजिदअली शाह के दासी पुत्र शाहज़ादा बाबर, उसके पुत्र और पौत्रों को मैंने मार्च १६३० में नं० १० पार्कलेन, कलकत्ता में देखा। उनकी आकृतियां एशियाई या युरोपीय सुन्दर राजकुमारों जैसी हैं

† हादिक ३८५; सियर III; इमाद ३१।

मौल्वी फ़ज़्लुल्लाखां, मौल्वी हमदुल्लाखाँ, शुजाउद्दौला के अध्यापक मिर्ज़ा अलीनक़ी और कई दूसरों को सफ़दरजंग आश्रय देता था‡। तारीखे मुज़फ्फ़री का लेखक एक घटना का उल्लेख करता है जो कवियों के प्रति सफ़दरजंग की वदान्यता पर और उसके अपने कविता प्रेम पर प्रकाश डालता है। वह लिखता है—एक दिन जब नवाब वज़ीर बादशाह को मुजरा करने जा रहा था, वह क़िले के अन्दर नहरे फ़ैज़ के दृश्य का आनन्द लेने के लिये ठहर गया जो एक तंग नहर थी और यमुना से शाही क़िले में आती थी। दृश्य सुन्दर था, वज़ीर ध्यान में मग्न होगया और सफ़दरजंग ने अपने साथी मिर्ज़ा अपने अस्फ़हानी से, जो अक्सीर उपनाम से कविता करता था, कहा कि प्रसंग के उपयुक्त कोई पद सुनाये। मिर्ज़ा ने वज़ीर की अन्तर्तम भावनाओं का अनुमान कर निम्नपद बनाया—

قد تیسدہ سرو گریہ ام رسید این آب تند زیر پل گذشت

सफ़दरजंग बहुत प्रसन्न हुआ और कवि को ५ हज़ार रु० नक़द और स्वर्ण सज्जा सहित एक तुर्की घोड़ा पुरस्कार में दिया*।

दरिद्रों और कंगालों के प्रति सफ़दरजंग बहुत उदार था। इमादुस्स आदत का कर्ता लिखता है कि जब कोई ग़रीब आदमी उससे सहायता की याचना करता नवाब उसको ५० अशर्फ़ियाँ देता। यह उसका जीवन पर्यन्त अभ्यास रहा†। हमारे पास असल पत्र हैं जो सफ़दरजंग ने अपने नायबों और आमिलों को लिखे थे और जिनमें उनको आज्ञा दी थी कि वे ईश्वर भक्त सैयदों और अवध के अन्य प्राचीन परिवारों को उनकी जागीरें वापस करदें या उनके जीवन निर्वाह के भत्ते पुनः आरम्भ करदें जो स्थानीय अधिकारियों द्वारा अन्याय से उनसे छीन लिये गये थे§। वास्तव में उसका हृदय दयालु था जो शत्रु को विपत् में देख कर दया से प्लावित हो जाता। अपने वंश के पैतृक शत्रु इमादुलमुल्क को

---

‡ सियर II ६१५-६१८, III ८५८; इमाद ५२।

* त० म० १७२ अ-१७२ ब।

† इमाद ३१; हादिक़ ३८६ इसकी साक्षी देता है कि वह उदार व्यक्ति था।

§ मक्तूबात पृ० १७६-१८०, १६३।

जब वह १५ या १६ वर्ष का अनाथ बालक था, आश्रय देना इस बात का प्रमाण है।

सफ़दरजंग का व्यक्तिगत जीवन उच्चतर की नैतिकता से व्याप्त था जो उस वर्ग में जिसका वह था और उस समय में जिसमें उसने अपना जीवन बिताया अत्यन्त दुर्लभ थी। उसके एक ही पत्नी थी जिससे उसका प्रगाढ़ प्रेम था और उसके कोई पासवान, वेश्या व दासी न थी। लखनऊ का गुलाम अली लिखता है†। "उसके स्वाभाविक विनय और उसके सदाचरण के बोध ने उसके अन्दर किसी स्त्री की संगति की इच्छा न पैदा होने दी सिवाय उस विख्यात सती की (सद्रुन्निसा)।" वह प्यारा पिता, दयालु नातेदार और सच्चा मित्र था। सत्तारूढ़ होने पर उसने अपने बहुत से मित्रों और नातेदारों को ईरान से बुलाया और शाही सेवा में उनको अच्छी जगहें दिलाई। उसने अपने बड़े भाई मिर्ज़ा मुहसिन को हफ्त हज़ारी के पद तक पहुंचा दिया और अपने बहनोई नसीरुद्दीन हैदर, शुजाउद्दौला के सालों और अपने अन्य नातेदारों को उसने अच्छे मनसब दिलाये। अपने मराठा मित्रों के प्रति वह सदैव सच्चा रहा और यद्यपि वे कभी-कभी दुरंगी चाल चल जाते, वह उनकी मित्रता पर दृढ़ भरोसा करता रहा जब तक कि उन्होंने उसके सूबों अवध और इलाहाबाद की माँग साफ साफ न की और जब तक वे उसके अचल शत्रु ग़ाज़ीउद्दीन खाँ इमादुलमुल्क से बिलकुल न मिल गये। सूरजमल की मित्रवत् भक्ति का ऋण उसने उसको मथुरा से फरीदाबाद तक विस्तृत प्रदेश में स्थिर करके चुका दिया यद्यपि जाटों ने शाही आज्ञा की अवहेलना कर बलपूर्वक इस प्रदेश पर अपना* आंशिक नियन्त्रण स्थापित कर लिया था। वह अवगुणों से मुक्त न था। उसको आडम्बर और प्रदर्शन बहुत प्यारे थे और उसने अपने पुत्र के विवाह पर ४६ लाख रु० व्यय किये। कभी-कभी उसको घमण्ड आ जाता और वह अनम्रता से अधिक बुद्धिमान पुरुषों के विमर्शों को तिरस्कृत कर देता। परन्तु उसका मुख्य अवगुण था—विश्वासघात से अभिज्ञता और छल-कपट द्वारा हत्या जो उसके राजनैतिक यन्त्र थे और वे १८ वीं शताब्दी के भारत में असाधारण न थे।

---

† इमाद २६।

*इमाद ५६; इलियट VII ३६२।

सफदर जंग सर्वाधिक रणयोग्य सेना का स्वामी

यद्यपि उसका जीवन पारश्रमिक सैनिक प्रवृत्तियों से पूर्ण था सफदर जंग मुश्किल से सफल सैनिक कहा जा सकता है। वास्तव में उसके अन्दर सिपाही का साहस और उत्साह न था और न सेनापति की क्षमता और गुण सम्पन्नता। अतः वह अपने समस्त अधिकारी जीवन में भी विजय बिना दूसरे की सहायता के ऐसे शत्रु पर भी न प्राप्त कर सका जिसके पास उसके आधे भी आर्थिक साधन और सैनिक शक्ति हो और तब भी विचित्र बात यह है कि उसके सारे समकालीन व्यक्ति—मराठे सरदार, राजपूत राजे, सूरजमल जाट और मुसलमान सामन्त और इतिहासकार—उसको उस समय के भारत का सब से प्रबल मुसलमान सरदार और सामन्त मानते थे। उसके अधिकृत प्रदेश, उसके आर्थिक साधनों और उसके सैनिक प्रतिष्ठान में उसकी शक्ति निहित थी। देश में सर्वाधिक रणयोग्य सेना उसके पास थी और वह उनको उदार वेतन और पुरस्कार देकर और उनके हित की व्यक्तिगत चिन्ता रख कर सन्तुष्ट रखता था। अपने नायबों के अधीनस्थ प्रान्तों में नियुक्त दलों के अतिरिक्त सफदर जंग अपने पास २० हजार 'मुग़ल' सवारों की स्थायी सेना रखता था, जिनमें से ६-७ हज़ार क़िज़िलबाश अर्थात् ईरानी तुर्क थे जो उस समय एशिया में सब से अच्छे सिपाही माने जाते थे*। पहिले वे नादिर शाह की सेना में थे, परन्तु अपनी इच्छा से भारत में रह गये थे। शेष तूरानी तुर्क और श्रीनगर के पास के मुख्यतया अदीबल ज़िला के कश्मीरी थे जो 'मुग़ल' बनते थे, मुग़ल वस्त्र पहनते थे और फ़ारसी भाषा बोलते थे†। सआदत ख़ाँ के नाम के प्रथम अक्षर पर मुग़ल सवार 'सीन' दल के नाम से विख्यात थे। इनके अलावा हिन्दुस्तानी सिपाहियों की भी अच्छी संख्या थी जिनमें सर्वाधिक महत्वशाली तत्व नागा सन्यासियों का था जिनको जन साधारण 'गोसाईं' कहते थे। सैनिकों के पास ईरानी व देशी चुस्त तेज़ घोड़े थे और नवाब उनको पूरी सुसज्जित देता था जिसमें वर्दी और अच्छे अस्त्र शस्त्र सम्मिलित थे। मुग़ल सवारों को, जो वज़ीर के कृपा-पात्र थे, ५० रु० प्रति मास की दर से वेतन मिलता था और

*सि० म० १७२ अ; इमाद ३१।

†इमाद ३१।

हिन्दुस्तानी सवार को उसी समय के लिये ३५ रु० ‡। पैदल सिपाहियों का वेतन कम था। वेतन वृद्धि या उन्नति के कोई निश्चित नियम न थे, परन्तु जब कभी सफ़दर जंग अपनी सेना को अवलोकनार्थ जाता वह सवार को दस रु० की और पैदल को २ रु० की वेतन वृद्धि देता यदि वह उसकी स्फूर्ति और निपुणता से प्रसन्न हो जाता। नवाब वज़ीर अपनी सेना के प्रति अपरिमित रूप से उदार था और इस पर विशाल धन-राशि व्यय करता। उसकी सदैव इच्छा रहती कि योग्य कमाण्डर, कप्तान व सिपाही की सेवा को उदार पुरस्कार द्वारा प्राप्त कर ले जिसको वह उनके वेतन से नहीं काटता। उसके पास बादशाह के बाद देश में सब से बड़ा और अच्छा तोपखाना था और अनेक लड़ाकू हाथी थे जिन पर सोने और चाँदी की चद्दरों की बड़ी-बड़ी आलमारियाँ थीं। उसके मुख्य कमांडर इस्माईल बेग खाँ और राजेन्द्र गिरि गोसाईं थे। उसके युद्ध शिविर में प्रत्येक वस्तु होती थी जिसकी आवश्यकता पड़ सकती हो। वह अपने पास नावें भी रखता था कि वह जल्दी से नदी पर पुल बाँध ले यदि उसको पार करने का अवसर आजाये*।

सफ़दर जंग के धार्मिक विचार और नीति

सफ़दर जंग ईश्वर भक्त शिया था और अपने धर्म के अनुष्ठानों को सूक्ष्म सावधानता और नियमितता से करता था। परन्तु वह स्वमतासक्त न था। उसकी धार्मिक नीति, मध्यकाल के अन्य मुसलमान शासकों के विपरीत, सहनशीलता की थी। वास्तव में वह अपनी हिन्दू और मुसलमान प्रजा के साथ एक-सा बर्ताव करता था और उसके उच्चतम और सब से अधिक विश्वासपात्र अधिकारी हिन्दू थे। महाराजा नवलराय† जो खुदागंज में अपने स्वामी के लिये लड़ता हुआ मारा गया था, उसका प्रथम सहायक था और उसके सारे राज्य के सैनिक और नागरिक प्रशासन का संचालक था। इससे बड़ा पद सफ़दर जंग के हाथ में देने को न था। उसके सूबों में उसका दीवान राजा राम नारायण था और दिल्ली में उसका वकील राजा लक्ष्मी नारायण था। दिल्ली में नवाब के मुख्य कृपा-पात्र रसाला का दीवान राजा नागर मल और अलीवर्दी खाँ

‡पूर्ववत्—सियर II ५२० भी देखो।

*सियर III ८५०।

† नवलराय के पूर्ण वृत्तान्त के लिये परिशिष्ट 'अ' देखो।

का वकील युगुल किशोर थे। उसके दो मुख्य कमाण्डरों में एक हिन्दू था। उसके मुख्य मित्र मराठे और जाट थे। अतः कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि दिल्ली दरबार का कट्टर मुस्लिम दल (तूरानी) सफ़दर जंग पर यह आरोप लगाये कि वह हिन्दू-पक्षीय है।

सफदर जंग—प्रशासक के रूप में

राजनीतिज्ञ और प्रशासक—दोनों रूपों में सफदर जंग सामान्यता से ऊँचा न उठ सका। राजनीतिज्ञ की और राजनैतिक धीसम्पन्नपुरुष की अनागतात्मक दूरदर्शिता उसमें न थी और न प्रशासक का संशोधक उत्साह और वह अपने को संकट में कभी नहीं डालना चाहता था। पहिले से जीर्ण साम्राज्य की तीव्र अधोगति रोकने के लिये और अपनी प्रजा की दशा को संभालने के लिये उसने कुछ नहीं किया। पहिले से ही कलंकित राजस्व प्रशासन को सुधारने के निमित्त उसने कोई प्रयास न किया। बेईमान शाही अधिकारियों को शुद्ध करने का और पददलित कृषक वर्ग को अन्यायपूर्ण धनापहरण, आन्तरिक उपद्रवों और बहिःआक्रमणों से बचाने का कोई प्रयास न किया। यह ठीक है कि इस कार्य के लिये स्थिति अनुकूल न थी और सिवाय धीमम्पन्न पुरुष के साम्राज्य को कोई बचा नहीं सकता था। परन्तु इन सुधारों के लिये सफ़दरजंग के पास न तो विचार थे और न तदानुकूल योग्यता। उसके ही प्रान्तों में सिपाहियों और ईश्वर भक्त मुसलमानों को जागीरदान की हानिकारक प्रथा पूर्ववत् चलती रही।

वज़ीर के रूप में सफ़दरजंग पूर्णतया असफल रहा। कुछ तो स्थिति के कारण जिस पर उसका कोई वश न था और कुछ अपनी ही सीमित योग्यता और आत्मोत्कर्ष की नीति के कारण सफ़दरजंग ने चारों ओर शत्रु पैदा कर लिये थे। उसकी स्वार्थी नीति यह थी कि दरबार में अपने सहकारियों को, अपने दल के व्यक्तियों को छोड़कर, उपेक्षा और दरिद्रता में रखा जाये और उनको धनी और प्रभावशाली न बनने दिया जावे। उसने उनकी पैतृक जागीरों को अपने नाम करा लिया और प्रशासन के उत्तरदायी कार्य से उनको दूर रखा। परिणाम यह हुआ कि उसके मुख्य विरोधी, तूरानी लोग, जिनके पूर्वजों ने भूतकाल में बराबर तीन पीढ़ियों से मन्त्रियों का कार्य किया था और जिनका सम्मान उनके पदों और वंशगत सम्बन्धों के कारण देश के बड़े से बड़े राजे और सामन्त करते

ये, पहिले की अपेक्षा अधिक शत्रु बन गये, सफ़दरजंग को नोदयवी अपहारक मानने लगे, मूर्ख बादशाह और उसकी षड्यन्त्रकारिणी माता के पक्ष में हो गये और उनको प्रोत्साहन दिया कि राज्य के हित में सफ़दरजंग द्वारा समर्थित सभी योजनाओं को नष्ट कर दें। वज़ीर के पास वह आकर्षक व्यक्तित्व, वह शक्ति और वे गुण न थे जो विरोध को निःशस्त्र कर देते हैं और शत्रुओं को मित्र बना देते हैं। न उसके पास आत्मा की वह उदारता और चरित्र की वह उच्चता थी जो मनुष्य को सामान्य ईर्षा-द्वेष से ऊपर उठा देते है, जो उसके शत्रुओं को क्षमा दिला देते हैं और जो स्वयं उसको और दूसरों को जीवित रहने देते हैं। उसके पास अपने विरोधियों के विरुद्ध सन्धि सघठन की योग्यता न थी और न वह निश्चित साहस था जो उपयुक्त अवसर पर अपने शत्रुओं के प्रतिकूल घोर प्रहार की प्रेरणा उसको देता। अपनी सीमित योग्यताओं के कारण सफ़दरजंग ने इस पर विचार ही न किया कि भूख से अधमरे सिपाहियों का वेतन नियमानुसार देने का प्रबन्ध करके, उनको ठीक सज्जा देकर, उनके ऊपर अच्छे और योग्य कमान्डर रखकर और उनमें स्वस्थ और प्रबल अनुशासन फूँक कर शाही सेना का सुधार किया जाये। मराठों के परिभ्रमक दलों से शाही राजधानी की सुरक्षा का प्रबन्ध भी उससे न हो सका। खालसा और प्रान्तों के राजस्व का उसके द्वारा अपहरण से बादशाह और उसका परिवार अभावता और दरिद्रता की अवस्था को प्राप्त हो गये और अन्त में उसके खुले विद्रोह से जनता और सामन्तों की सहानुभूति एक समान उसकी ओर से हट गई और सदैव के लिये राजद्रोही देव निन्दक होने का कलंक उस पर दिल्ली में लग गया।

उसकी महत्तम सफलता अवध और इलाहाबाद को चिरस्थायी शान्ति का देना था जिसका भग दुर्वों के एक भाग पर अल्पकालीन बंगश अधिकार और उसके शासन के आरम्भ में थोड़े से स्थानीय आक्षेपक उपद्रवों द्वारा हुआ था। ऐसे काल में जब भारत के सब भाग महाराष्ट्र के निर्दयी बल के आगे नत मस्तक थे अवध और इलाहाबाद ही केवल वे प्रान्त थे जिनमें उनके लुटेरे दलों का प्रवेश नहीं हुआ था*। सफ़दरजंग की प्रबल सेना और उसके विशाल आर्थिक साधन उनके

* पंजाब ही एक अपवाद था। परन्तु यह अब्दाली के अधिकार में था और सफ़दरजंग के देहान्त के केवल दो वर्षों के अन्दर ही मराठों ने इसको अपने प्रभाव क्षेत्र में ले लिया था।

लिये और उसके सूबों के विद्रोही सरदारों के लिये मयासद थे। उसका दूसरा उपहार अपनी प्रजा के सब वर्गों के लिये सर्वतन्त्री न्याय था। इमादुस्सआदत का लेखक कहता है—'उसने (सफदर जंग) अपने न्याय से अपनी प्रजा को सुखी कर दिया।' स्वयं त्यागी फ्रान्सीसी, सियारुल्मुताख्खीन का अनुवादक मुस्तफा जो कई वर्षों तक लखनऊ में रहा निम्नलिखित कहानी देता है जो उसने सफदर जंग के समकालीनों से सुनी थी—"बनारस की एक हिन्दू महिला की शारीरिक मनोहारता पर मुग्ध होकर, जिसने उसके प्रेम प्रयासों का कोई उत्तर न दिया था, शुजाउद्दौला एक रात को सीढ़ी लगाकर उसके घर में चढ़ गया। परन्तु तुरन्त ही उसके नातेदारों ने उसको पकड़ लिया और शहर के कोतवाल को इसकी सूचना दे दी। कोतवाल आज्ञा के लिये नवाब वज़ीर के पास गया और बीच रात में उसको जगाया। सफदर जंग ने सक्रोध टिप्पणी की—यदि आप अपने उत्तरदायित्व के योग्य होते तो मुझे बीच रात में जगाकर यह न पूछते कि उन गुण्डों का क्या करें जो एक नागरिक के घर में सीढ़ी लगाकर चढ़ जायें। कोतवाल संकेत समझ गया और अपने स्थान पर वापस आकर उसने शुजाउद्दौला की खूब पिटाई की, उसको कारागार में डाल दिया जहाँ वह सात दिन तक बिना अन्न के बन्द रखा गया। इस अवधि की समाप्ति पर वह उसी दशा में अपने पिता के सामने पेश किया गया कि शपथ ग्रहण करे। सफदर जंग ने उसकी ओर घृणा से देखा और व्यंग से कहा—"यह हज़रत हैं।" और यद्यपि शुजाउद्दौला सप्ताह में दो बार उसके दर्शन करने आता, नवाब वज़ीर ६ मास तक उससे दूसरा शब्द न बोला और एक संधान हुआ†। ऐसा हो सकता है कि कहानी अक्षरशः सत्य न हो, परन्तु इसका कोई आधार अवश्य होगा क्योंकि मुस्तफा ने नवाब वज़ीर के देहान्त के केवल २० वर्ष बाद ही इसको सुनी थी। निस्सन्देह आगामी पीढ़ी द्वारा सफदर जंग के न्याय-प्रशासन का सार्वजनिक अनुमान इससे प्रगट होता है।

चिरस्थायी शान्ति और एक रस न्याय ने जिसने सबल और अशान्त को नियन्त्रण में रखा और जिसने जीवन और सम्पत्ति की सुरक्षा की भावना उत्पन्न कर दी, ललित कलाओं के और लाभप्रद उद्योगों के विकास को प्रोत्साहन दिया और अवध को इस योग्य बनाया कि वह

† सियर-इंगलिश अनुवाद जिल्द IV ६५-६७ अ।

एक विशेष प्रकार की संस्कृत का विकास कर सके जो समस्त भारत में लखनवी संस्कृति के नाम से प्रसिद्ध है*। जब सब अन्य प्रान्त अपकर्षता और अराजकता की दशा में डूबे हुये थे अवध ने यह उन्नति की कि सफ़दर जंग के पुत्र और पौत्रों के समय में वह धन, वैभव और संस्कृति में दिल्ली प्रतिद्वन्दी बन गया।

यद्यपि वह सफल वज़ीर न था, सफ़दर जंग ने उस पद को गौरव और दृढ़ता से शोभित किया और अपने पूर्व अधिकारी आलसी कमरुद्दीन की अपेक्षा वह अधिक अविरुद्ध और परिश्रमी था। इन्तिज़ामुद्दौला से लगाकर अन्त तक अपने असंख्य उत्तराधिकारियों की अपेक्षा वह निस्सन्देह अधिक राजभक्त और सफल भी था जिन्होंने अहमदशाह के राजत्व काल के अन्तिम दिनों से बहादुरशाह द्वितीय तक, जो दिल्ली के राजा सिंहासन पर बाबर के वंश का अन्तिम राजकुमार हुआ, वज़ीर के उच्च आसन को कलंकित किया।

---

* आसफ़ुद्दौला और उसके उत्तराधिकारियों के समय में वह अश्लील हो गई।

अध्याय १८

प्रशासन और लोगों की दशा

प्रशासन

अवध का मुग़ल प्रान्त उत्तर-पूर्व में गण्डक नदी से दक्षिण-पश्चिम में गंगा तक और उत्तर में नैपाल की तराई से दक्षिण में सई नदी तक फैला हुआ था। इसके पूर्व में गण्डक पर बिहार का प्रान्त था, दक्षिण में इलाहाबाद की ओर पश्चिम में मुरादाबाद (फ़र्रुख़सियर के समय में निर्मित) और आगरा के। सआदत ख़ाँ बुर्हानुल्मुल्क ने कोड़ा जहानाबाद (इलाहाबाद में) की सरकार, जो मोटे रूप से फ़तहपुर के वर्तमान ज़िले के बराबर थी, आगरा में चंदेरी की रियासत और बनारस, जौनपुर, ग़ाज़ीपुर, आजमगढ़, बलिया के वर्तमान ज़िले और मिर्ज़ापुर का पूर्वी भाग, जो सब उस समय इलाहाबाद के सूबे के अंग थे, उसमें मिला लिये थे। अवध के अलावा सफ़दर जंग ने १७४८ ई० में इलाहाबाद का प्रान्त प्राप्त कर लिया था जो अवध की दक्षिणी सीमा पर था और जिसके पूर्व में वर्तमान बिहार, दक्षिण में वर्तमान मध्य प्रदेश और पश्चिम में आगरा का मुग़ल सूबा था। परन्तु इलाहाबाद का दक्षिणी अर्ध भाग, जिसमें काल्पी की सरकार को छोड़कर सारा बुन्देलखण्ड था, छत्रसाल बुन्देला के वंशजों के हाथों से छीना न जा सका। अवध उस समय ५ सरकारों में बँटा हुआ था—अर्थात्, फ़ैज़ाबाद, गोरखपुर, लखनऊ, खैराबाद और बहराइच। इलाहाबाद में १७* सरकारें थीं (मुर्तज़ा हुसैन के अनुसार १६) जिन में सर्वाधिक महत्व वाली थीं—इलाहाबाद, अरैल, ग़ाज़ीपुर, चुनार, मिर्ज़ापुर, बनारस, जौनपुर, कड़ा मानिकपुर, शाहज़ादपुर, ज़मानिया, कोड़ा जहानाबाद और कलिंजर।

सआदत खां और सफ़दर जंग दोनों अपने प्रदेश के स्वतन्त्र मालिक थे—दिल्ली में अपने नाममात्र के अधिपति से व्यवहार स्वतन्त्र, यदपि

* अकबर के समय में दस सरकारें थीं।

नाम में नहीं। वे मुग़ल दरबार के वज़ीर या किसी और उच्च अधिकारी से आज्ञायें न प्राप्त करते थे, किसी अपने से उच्च अधिकारी को अपनी आय का हिसाब न देते थे और स्वतन्त्र शासकों की भाँति आचरण करते थे, वे अपने अधीनस्थ अधिकारियों की नियुक्ति करते और अपनी इच्छानुसार उनको उपाधियाँ और पद देते। परन्तु उस समय की भारतीय राजनैतिक प्रथा के अनुसार वे अपने को केवल राज्यपाल ही कहते और ऐसी शाही आज्ञाओं को मानने का ढोंग रचते जो उनकी सत्ता के स्वतन्त्र व्यापार में बाधा न डालतीं परन्तु उनके गौरव की या उनके आर्थिक साधनों की वृद्धि करतीं।

अपने समय में प्रत्येक के पास एक नायब या उपराज्यपाल या जो वास्तव में दोनों नागरिक और सैनिक प्रशासन का प्रान्त में मुख्य अधिकारी होता था क्योंकि सूबेदार को प्रान्तीय शासन के विवरणों की अपेक्षा दिल्ली की राजनीति में अधिक रुचि होती थी। दूसरा सबसे बड़ा अधिकारी—दीवान माल और नागरिक न्याय को संभालता था परन्तु परन्तु आरम्भिक मुग़ल शासन के व्यवहार के विपरीत वह नायब के अधीन होता था। जब सफ़दर जंग के समय में अवध का राज्य इलाहाबाद और बंगश रियासत के इसमें मिल जाने से बहुत बढ़ा हो गया था, तब भी राजा नवलराय सारे प्रदेश का उपराज्यपाल बना रहा। परन्तु १७५१ ई० में राजा की मृत्यु पर प्रत्येक प्रान्त का अलग अलग नायब नियुक्त किया गया—मुहम्मद कुली खां अवध का और अली कुली खां इलाहाबाद का। नायब और दीवान के अलावा प्रत्येक सूबे में एक बख़्शी (वेतन अधिकारी), एक क़ाज़ी (मुस्लिम न्यायाधीश), एक सदर (धार्मिक प्रतिष्ठान और दान का मुख्याधिकारी) और एक मुहतसिब (मृतक मनुष्यों की सम्पत्ति का पञ्जिक) होता था। राजस्व एकत्रीकरण और पुलिस प्रशासन के कार्यों के निमित्त सफ़दर जंग ने अवध और इलाहाबाद को बड़े बड़े ज़िलों में विभाजित कर दिया था जो फ़ौजदारों के अधिकार क्षेत्र से बड़े थे और हरएक के ऊपर एक नाज़िम नियुक्त किया†। प्रत्येक ज़िले में कुछ परगनों के एक समुदाय पर एक आमिल (राजस्व वसूल करने वाला) होता था‡ जिनकी सहायता के लिये

† समाचार पृ० १२७ अ।
‡ मन्सूर पृ० १७६-१७८।

प्रत्येक परगना में या महल में एक तहसीलदार होता था। फौजदार और करोड़ी हटा दिये गये। नाज़िमों और आमिलों के पास सिपाहियों की टोलियाँ होती थीं जिनकी संख्या प्रत्येक ज़िले की भौगोलिक स्थिति और उसकी निवासी जनता के चरित्र के अनुसार भिन्न-भिन्न होती थी। शुद्ध आँकड़े उपलब्ध नहीं है कि हम कर निर्धारित की प्रकृति और विधि का ठीक अनुमान लगा सकें। ऐसा प्रतीत होता है कि सूबों के कुछ भागों में राज्य का सम्बन्ध सीधे कृषक (असमी) से होता था जब कि अन्य भागों में ठेका (इजारा) चलता था। छोटे और बड़े ज़मींदार अपनी ज़मीनों के कब्ज़े में रहने दिये गये। अपनी रियासतों में वे स्वयं से लगान वसूल करते। पूरे व्यवहारिक और विधायक अधिकार से काम लेते और नवाब का धन संग्रह का बिना हिसाब बताये पेकार के रूप में सरकारी राजस्व जमा कराते। साधारणतया बिना शक्ति के अपने ऊपर उपयोग के या कम से कम अपने ऊपर बिना सैनिक दबाव के वे कर न देते। सरकार की सेवा में बहुत से सज़ावाल थे जो ज़मींदारों से राजस्व लेने भेजे जाते थे। प्रान्तों में सैकड़ों जागीरदार (बिना लगानी ज़मीन के मालिक) विशेषकर मुसलमान शेख़ और सैयद और भाग्यशाली सिपाही थे। परन्तु मालूम होता है कि राजस्व के नियम नम्र थे और सरकारी माँग न्यायपूर्ण थी इसलिये लोग समृद्ध और संतुष्ट थे। उन्नाव के ज़िले में अपनी व्यक्तिगत खोज से सी० ए० इलियट इस निर्णय पर पहुँचे कि सफ़दर जंग के प्रशासन में देश में इतनी समृद्धता थी जितनी कोई देशी सरकार सम्भव कर सकती थी*।

देश की सब मुसलमानी सरकारों की भाँति सआदत ख़ाँ और सफ़दरजंग का अवध और इलाहाबाद का नवाबी प्रशासन देश में सैनिक अधिवास था। एक विशाल और सुसज्जित सेना के अलावा जो फ़ैज़ाबाद में सदैव सेवा के लिये तैयार रहती थी, प्रत्येक ज़िला के मुख्य-स्थान पर एक सबल दल भी रहता था कि बड़े और उपद्रवी सरदारों पर नियन्त्रण रखे। राजस्व एकत्रीकरण के कार्य में आमिल और तहसीलदार भी सेना से काम लेते थे। प्रत्येक प्रसिद्ध नगर का प्रशासन-जैसे फ़ैज़ाबाद, लखनऊ, गोरखपुर, बनारस, इलाहाबाद इत्यादि—एक सैनिक अधिकारी कोतवाल के हाथ में रहता था जिसकी

* समाचार-पृ० १२७

सहायता के लिये सिपाहियों का एक जत्था, हरकारे और चपरासी आदि रहते थे†। दीवान और क़ाज़ी को छोड़कर प्रान्तों में सभी अधिकारी प्रायः सैनिक अफ़सर थे और उनके नाम सेना के रजिस्टरों में थे। सिवाय राजस्व इकट्ठा करना और जनता की आन्तरिक उपद्रवों से और बाहर के आक्रमणों से रक्षा करना, सरकार का कोई कार्य न था।

जनता

१६ वीं शताब्दी में अवध और इलाहाबाद अति-बहु-संख्यक हिन्दु प्रान्त थे। वहाँ मुसलमान विरले ही कहीं कहीं पाये जाते थे। यद्यपि सफ़दरजंग की मृत्यु से लगभग दो सौ वर्ष बीत चुके हैं, मुसलमान इन प्रान्तों में अब भी बिल्कुल अल्पसंख्यक हैं*। उस समय जनता का सबसे अधिक महत्वशाली भाग राजपूत थे जो सारे प्रदेश में फैले हुये थे और बहुत सी जातियों, वंशों और इन वंशों की शाखाओं में बँटे हुये थे। उनमें से प्रसिद्ध थे—वर्तमान उन्नाव और रायबरेली ज़िलों के बैस और कन्हपुरिया; गोंडा के बिसेन और जनवार, बाराबंकी के रैकवार, प्रतापगढ़ के सोमवंसी, कोड़ा जहानाबाद के खीचर और बुन्देलखण्ड के बुन्देले। प्रत्येक बड़े या छोटे राजपूत सरदार के पास ईंट या मिट्टी की बनी हुई एक सुदृढ़ गढ़ी होती थी। यह किसी दुर्गम्य गाँव में घने जंगल के चक्र से घिरी होती थी और अपनी रियासत में वह वास्तव में सर्व-सत्ता सम्पन्न था, अपने परिवार की छोटी शाखाओं को, ईश्वर भक्त ब्राह्मणों को और गाँव के कारीगरों को वह जागीरें देता, अपने अधीन छोटे ज़मींदारों से कर लेता और युद्ध काल में सेवा के लिये अपने जाति भाइयों की टोलियों को बुलाता। अपनी भूमि और जनता से उसका सम्बन्ध इतना घनिष्ट था कि प्रान्तीय अधिकारियों द्वारा उसकी रियासत का वास्तविक अपहरण नहीं हो सकता था‡। प्रसिद्धिता में दूसरे स्थान पर ब्राह्मणों का वर्ग था—विशेष कर कान्यकुब्ज उप-जाति

---

† इमाद ५०; सियर इंगलिश अनुवाद जिल्द IV, ६५ अ

* देश के विभाजन से पहिले मुसलमानों के सबसे अच्छे दिनों के लिये यह ठीक था। विभाजन से मुसलमानों की संख्या और भी कम हो गई है।

‡ समाचार पृ० १२६।

का जिनमें से कुछ पुरोहित, ज्योतिषी, फलित-ज्योतिषी और अध्यापक थे और अन्य सिपाही का पेशा करते थे। राजपूतों के बाद अवध में सर्वाधिक युद्धप्रिय वे ही थे। पासी सिपाही और चौकीदार थे और अहीर और कुर्मी प्राय: कृषक। उस समय मुसलमान विशेष कर नगरों के निवासी थे और उन्होंने सिवाय सिपाही या नागरिक अधिकारी के और किसी पेशे को अपनाया नहीं था। उनमें संख्या में सबसे अधिक दो जातियाँ थीं—अफगान और शेख। जौनपुर, इलाहाबाद और मलीहाबाद में अफगान बसे हुये थे और लखनऊ, काकोरी, खैराबाद, गोपामऊ, बिहानी और बिलग्राम में बड़ी संख्या में शेख पाये जाते थे। सआदत खाँ और सफदर जंग के बहुत से मित्र, अधिकारी और सिपाही जिनमें से कई हजार ईरानी तुर्क थे लखनऊ और फ़ैज़ाबाद में बस गये थे। लखनऊ में कुछ मुहल्ले जैसे कटरा अबुतुराबखाँ, कटरा खुदा यार खाँ, कटरा बिजन बेग खाँ, कटरा मुहम्मद अलीखाँ, कटरा हुसैन खाँ, सराय माली खाँ और इस्माइलगंज (अन्तिम को छोड़कर सब के सब विद्यमान)—नवाब के कुछ अफसरों और कमान्डरों के नाम से विख्यात हुए। अयोध्या के प्राचीन नगर से पश्चिम की ओर ४-५ मील पर सआदत खाँ ने घाघरा के तट पर (सरजू भी कही जाती है) एक नया कस्बा बसाया और उसका नाम फ़ैज़ाबाद रखा। मन्द भवनों और बागों से उसने इसको अलंकृत कर दिया और अपने सिपाहियों और अफसरों को कहा कि अपने मकान वहाँ बना लें और बस जावें। सफदर जंग ने कुछ और भवन वहाँ निर्माण किये और उसकी जनसंख्या की वृद्धि की। इस प्रकार १८ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में फ़ैज़ाबाद मुसल्मानों का प्रथम महत्व का उपनिवेश बन गया।

उद्योग और व्यापार।

अवध का प्रान्त कृषि धन में सदैव सम्पन्न रहा है। अपने सम जलवायु, पर्याप्त वृष्टि और उपजाऊ धरती के कारण यह गेहूँ, चावल, जौ, चना, मक्का बाजरा, तिलहन और अन्य धान्य की बड़ी बड़ी फसलें देता है। अधिक बहुमूल्य फसलें जैसे रुई, अफीम, गन्ना, खरबूजा और तम्बाकू का भी अधिकांश भागों में होती है और फल जैसे आम, अमरूद, बेर, करौंदे और भिन्न भिन्न प्रकार के शाक हर एक गाँव में पैदा होते हैं जिनके कारण प्रान्त का नाम उचित ही "भारत का बाग" पड़ गया है। इलाहा-

बाद अवध से कम उपजाऊ और धनी नहीं है। इस काल में जिसका अवलोकन हो रहा है ये प्रान्त उद्योग धन्धों में भी पीछे नहीं थे। १७वीं शताब्दी के प्रथमार्ध में भी अवध के कमख़्वाब की लन्दन के बाज़ार में बहुत क़दर थी और १६४० में अंग्रेज़ों की ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने लखनऊ में इनके थान इकट्ठे करने के लिये एक फैक्ट्री खोली थी जो दरियाबाद (बाराबंकी के पास), खैराबाद और कुछ अन्य जगहों पर बुने जाते थे। अंग्रेज़ व्यापारी इनको 'दरियाबादस', 'खैराबादस' और "अकबरीज़" (अकबर का प्यारा कपड़ा) कहते थे। पश्चिम अवध में एक प्रकार का कपड़ा जो मरकोली के नाम से प्रसिद्ध था बड़े पैमाने पर बुना जाता था और कम्पनी इसको मोल लेती थी*। रुई का उद्योग भी १८वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में बराबर उन्नति करता रहा और खैराबाद और दरियाबाद कमख़्वाब, छींट और गज़ी† (खद्दर की तरह का सफ़ेद मोटा कपड़ा) के उत्पादन के केन्द्र बने रहे। इलाहाबाद में शाहज़ादपुर अपनी छींट और रुई के मोटे कपड़े के लिये प्रसिद्ध था और हमारे समय के कुछ पहिले यह मुग़ल बादशाहों के लिये डेरे, शामियाने और क़नाते बनाता था। परन्तु यह अन्तिम उद्योग १८वीं शताब्दी में अवनत हो गया था। मिर्ज़ापुर ऊनी और रेशमी वस्त्रों की और कश्मीर, नैनीताल, कमाऊँ, बंगाल, ल्हासा और दूसरी जगहों की वस्तुओं की एक बड़ी मण्डी थी। क़स्बा धनी व्यापारियों से भरा पड़ा था जो स्थानीय उपजों और निर्मित वस्तुओं को भिन्न भिन्न प्रान्तों को भेजते और बाहर से ऐसी वस्तुओं को मगाते जो वहाँ न पैदा होतीं न बनतीं थीं। इतर, सुगन्धित सत और खुशबूदार तेल उच्च वर्गों को विशेष प्रिय थे और इस कारण से बहुत जगहों पर बनाये जाते थे। गुलाब का इतर और गुलाबजल बनाने का केन्द्र ग़ाज़ीपुर था। जौनपुर में भी सुगन्धित सत और खुशबूदार तेल, मुख्यतया बेला का, बनते थे। इनके अतिरिक्त भिन्नभिन्न जगहों पर अनेक स्थानीय उद्योग थे। लखनऊ जो इस समय अपने चिकन के काम के लिये और मिट्टी के बरतनों के लिये प्रसिद्ध है उस समय अपने उत्तम धनुषों और अच्छी मिठाइयों के लिये प्रसिद्ध था, परन्तु १८वीं शताब्दी के द्वितीय अर्ध के आरम्भ में यह दूसरा उद्योग अवनत होने लगा था।

---

* मोरलैण्ड—'अकबर से औरंगज़ेब तक' पृ० १२७-१२८।

† हादिक १५४।

गोरखपुर के क़स्बे में चावल, घी, मुर्गी, काँच के बरतन और दैनिक उपयोग की और बहुत सी चीज़ें प्रचुर मात्रा में मिलती थीं। वहाँ का जीवन इतना सस्ता था कि इस कहावत पर जन साधारण का विश्वास था कि जो कोई गोरखपुर आता है शायद ही बाहर जाता है। मिर्ज़ापुर प्रथम श्रेणी की शाक की मण्डी थी और फलों में भी अत्यन्त लाभदायक व्यापार करता था। नयपाल के पहाड़ी प्रदेशों की पैदावार की *प्रसिद्ध मण्डी बहराइच थी। पहाड़ियों के लोग वहाँ पर बेचने के लिये* सोना, काँच के गहने, शहद, मोम, कस्तूरी, अनार, अंगूर, मिर्ची, लहसन, अदरक, सोंठ, स्वादिष्ट अचार, शिकारी चिड़ियाँ जैसे बाज़ और शिकरा और बहुत सी दूसरी चीज़ें लाते*।

उच्च वर्ग जो जनता का अल्पांश था समृद्ध और अतिव्ययी था। बड़े ज़मीनदार और उच्च अधिकारी आराम से रहते थे और उस समय के अधिकांश भोग विलासों का आनन्द लेते थे जिन पर वे बहुत द्रव्य व्यय करते थे। एक छोटा-सा मध्यवर्ग भी था जिसमें व्यापारी, छोटे ज़मीनदार, लेखक और अच्छा वेतन पाने वाले सिपाही थे। व्यापारी और छोटे ज़मीनदार कृपण और मितव्ययी थे परन्तु लेखक और सिपाही उनको छोड़ कर जो गाँवों के रहने वाले थे अमितव्ययी थे। सवार का मासिक वेतन साधारणतया ३० रु० प्रति मास था और पैदल का सम्भवत: ८ या १० रु० सआदत ख़ाँ के समय में था। परन्तु सफ़दर जंग ने वेतन बढ़ा दिया था। वह हिन्दुस्तानी सवार को ३५ रु०, मुग़ल सवार को ५० रु० और पैदल को १० रु० मासिक देता था। राजपूत सरदारों, मुसलमान ज़मींनदारों और कर्मचारियों के सिपाहियों के अवश्य ही इससे कम वेतन मिलता होगा। समकालीन सामग्री के अभाव के कारण विद्यार्थी जन साधारण की आर्थिक स्थिति का ठीक अनुमान लगाने के समर्थ नहीं है। परन्तु यह विश्वास करने का पर्याप्त कारण है कि वे उस समय जैसे कि आजकल नीचे अस्वस्थ झोंपड़ों में रहते थे जिन पर फूस के छप्पर पड़े होते थे और वे मोटे अन्न और न्यूनतम वस्त्र से सन्तुष्ट थे। *आगरा की इच फैक्ट्री का प्रधान फ़ान्सिस्को पेल्सार्ट १६२६ ई० में उनके* बारे में लिखता है—"उनके मकान मिट्टी के हैं जिन पर फूस के छप्पर हैं। उपस्कर कम है या है ही नहीं—पानी रखने के लिये और खाना

* हादिक पृ० १५२-१५३ और ६६८-६७६।

पकाने के लिये कुछ मिट्टी के बरतन और दो खाट—क्योंकि यहाँ स्त्री और पुरुष साथ नहीं सोते हैं। उनके ओढ़ने और बिछाने के वस्त्र बहुत कम होते हैं—केवल एक या शायद दो चद्दरें जिनको बिछा भी लेते हैं और ओढ भी लेते हैं। गर्मियों में यह पर्याप्त होता है, परन्तु अति शीत रातें वास्तव में दुखदायी होते हैं और वे कण्डों की आग के चारों ओर बैठ कर अपने को गर्म रखने का प्रयत्न करते हैं। यह आग दर्वाजे के बाहर जलाई जाती है क्योंकि उनके घरों में अग्न्यागार या धुआँरे नहीं है। इन अलावों का धुआँ सारे शहर में इतना होता है कि आँखें कड़वी हो जाती हैं और मालूम पड़ता है कि गला बैठ गया है"* यह ऊपर का वर्णन और वे वर्णन जो बर्ने ने, जो इस देश में १६५६ ई० से १६५८ ई० तक रहा और टवर्ने ने जो इस देश में १६४० ई० से १६६० ई० तक रहा, छोड़े हैं—२० वीं शताब्दी के उत्तर भारतीय कृषक और श्रमिक पर सब आवश्यक बातों में लागू हैं। अतः यह स्वीकार किया जा सकता है कि १८ वीं शती के पूर्वार्ध में अवध और इलाहाबाद के जन साधारण का आर्थिक जीवन १७ वीं शती के उनके पूर्वजों के जीवन से कुछ अधिक भिन्न न था। परन्तु अन्न बहुत ही सस्ता था और इसलिये यह कहावत चल पड़ी कि नवाबी शासन के आरम्भिक दिनों में लोगों को अन्न का कष्ट नहीं था।

धर्म और समाज

भारतीय आर्यों के वहाँ पर स्थायी अधिवास के समय से अवध और इलाहाबाद हिन्दू संस्कृति और कट्टरता के मुख्य केन्द्र रहे हैं। १८ वीं शती में समस्त मुग़ल काल के समान ही, देश के सब भागों से यात्रियों के दल इस प्रदेश को तीर्थराज प्रयाग (इलाहाबाद), अयोध्या (फ़ैज़ाबाद) और काशी (बनारस) के दर्शन करने आते थे। अयोध्या और काशी हिन्दू भारत की सात पवित्र नगरियों में से दो हैं। सीतापुर ज़िले में नैमिषारण्य और मिश्रर्षि भी प्रसिद्ध तीर्थ स्थान थे और हज़ारों लोग प्रति वर्ष उनके दर्शन करने जाते थे†। काशी अब भी संस्कृत विद्या और संस्कृति का सर्वाधिक महत्वशाली स्थान था और समस्त देश के आये हुए उत्सुक विद्यार्थियों और ईश्वर भक्त साधुओं से परिपूर्ण था। परन्तु चूँकि हिन्दू धर्म की अवनति से इन प्रान्तों का सर्वाधिक ह्रास हुआ था, जाति

*मोरलैण्ड के 'अकबर से औरंगज़ेब' में पृ० १६६ पर उद्धृत।

पाँति और गुरु पूजा, जनता का धर्म बन गये और उनके तीर्थ स्थान भी भिखारियों, मूर्ख पुरोहितों और व्यभिचारी ढम्मियों के परजीवी वर्ग के आश्रय स्थान बन गये‡। १७५६ ई० में ममात चहार गुलशन का लेखक राय छत्रमल अपने समय के अनेक हिन्दू मतमतान्तरों का, उनके निराले विश्वासों का, आडम्बरी अभ्यासों का और हिन्दू साधुओं के पवित्र जीवन का सुचित्रित वर्णन देता है●। मुसलमान कुछ अधिक अच्छे न थे। अपने सरल और नियत धर्म सिद्धांत के होते हुये भी वे अवशेषों की पूजा करते, कब्रों का सम्मान करते और साधुओं और निरक्षर धर्म भिखारियों की वन्दना करते। अवध में अपने सर्वाधिक महत्वशाली तीर्थस्थान बहराइच के क़स्बे में प्रति वर्ष हज़ारों मुसलमान इकट्ठे होते कि सालार मसूद§ की क़बर पर अपनी भेंटें चढ़ावें और अपने सांसारिक मनोरथों की पूर्ति के लिये मृतक सैनिक की सहायता का आह्वान करें।

१८ वीं शती का पूर्वार्ध अवध और इलाहाबाद के लिए बहुत ही पतन का समय था और शेष भारत के लिए और भी अधिक। मनुष्य की प्रवृत्तियों की किसी शाखा में किसी विलक्षण पुरुष ने जन्म नहीं लिया। और न साहित्य और कला में कोई स्थायी प्रवर्धक रचना की गई। उच्च और नीच, हिन्दू और मुसलमान सभी शकुनों में, सामुद्रिक और फलित ज्योतिष में विश्वास करते थे। सफ़दर जंग जिसके हाथ में समाज की गतिविधि थी किसी यात्रा पर जाने के लिये या अभियान आरम्भ करने के लिए कई दिनों तक शुभ घड़ी की प्रतीक्षा करता*। मदिरा पान, व्यभिचार, बहुपत्नी प्रथा, उच्च और मध्यम वर्गों में पासवानें रखने के जनसाधारण के दोषों के अलावा समाज दासता के पाप से भी कलंकित था। स्त्री और पुरुष दास साधारण वस्तुओं की भांति मोल लिये जाते थे और गोरखपुर में बहुत सस्ते थे††। राजनैतिक नैतिकता न्यूनतम स्तर पर थी। नीच षड्यन्त्र और विश्वासघाती कुमन्त्रणायें सामन्तों और

†चहार गुलशन ४३; हादिक़ १५३-१५४
‡हादिक़ ६७५।
●चहार गुलशन ८० अ-८५ ब।
§हादिक़ १५३।
*सियर III ८५०।
†हादिक़ १५२।

अधिकारियों के जीवन की श्वास ही थे और १८ वीं शती के पूर्वार्ध में हमारे शासकों के लिए प्रतिज्ञा शब्द का भंग, विश्वासघात और हत्या साधारण घटनायें थीं। अपने वचन का घोर भंग करके सआदत खाँ एक हिन्दू सिंह चन्देला की रियासत छीन सकता था, हुसैन अली खाँ ऐसे महान आश्रय दाता का वध करने के लिए षड्यन्त्र में सक्रिय भाग ले सकता था और एक विदेशी आक्रान्ता को दिल्ली लूटने के कार्य में प्रोत्साहन दे सकता था और उसका उत्तराधिकारी सफ़दर जंग पृथ्वीपति व जावेद खाँ ऐसे आमन्त्रित अतिथि का अपने ही शिविर में वध कराने से पीछे हट न सकता था। राजपूत सरदार फ़ैज़ाबाद के अधिपति से युद्ध करते और पराजित होने पर अधीनता स्वीकार कर लेते और कर देने को तैयार हो जाते परन्तु उपयुक्त अवसर पर फिर विद्रोह करते और प्रान्त में अशान्ति पैदा कर देते। किसी राजनैतिक संकट के समय, फ़ैज़ाबाद में शासन परिवर्तन पर या सूबों पर किसी पड़ोसी शासक के आक्रमण पर उनमें कुछ तो अवश्य ही अवसर से जल्दी ही लाभ उठा लेते और नवाब के शत्रु की ओर जाकर मिल जाते। एक कारण से ऐसा आचरण न्यायसंगत माना जा सकता है—वह यह कि नवाब वंश से और जन्म से विदेशी थे और देश की सन्तान के लिये यह न्यायानुकूल ही था कि स्वाधीनता की इच्छा करें। नवाब की नौकरी में अत्यधिक हिन्दू पदाधिकारी अवश्य ही अपने नमक के सच्चे थे।

ऊपर के अधिकांश दोषों से जनसाधारण अवश्य ही मुक्त थे। वे निश्कपट, ईमानदार, विश्वासनीय और पुण्यात्मा थे। गांव अब भी एक स्वपर्याप्त सामाजिक इकाई था और इसके रहने वाले सब वर्गों के लोग एक बड़े परिवार या भ्रातृसंघ के सदस्यों के समान रहते थे। सामान्य संकट का सामना सब ऊँच और नीच मिलकर एक साथ करते थे और प्रत्येक सुख या दुख में दूसरे का साथ देता था। सिवाय भोजन, विवाह और आचारिक शुद्धता के उनमें कोई जाति भेद न था। उच्च कुलीन ब्राह्मण और राजपूत चमारों या पासियों और उनकी स्त्रियों को काका, दादा, काकी और दादी कहते और उनको उनके नामों से न पुकारते। उनके पुत्र और पुत्रियाँ एक साथ समता के आधार पर खेलते। ज़मीनदार के भी घर की स्त्रियां परदा न करतीं सिवाय अपने गांव के बड़े बूढ़ों के आगे और वह भी सम्मानार्थ। लोगों के झगड़ों को जाति या गांव की पंचायत तय करती या ज़मीनदार जो ग्राम जीवन का

केन्द्र था। अवध का यह ग्राम भ्रातृत्व १६वीं शती के अन्त के समीप टूटने लगा जब जमीनदारों को केवल लगान इकट्ठा करने का अधिकार रह गया और जब बाहर से सामान्य संकट की अनाशंका से और ब्रिटिश न्यायालयों की स्थापना से जनता का पारस्परिक अवलम्बन भूतकाल की बात बन गया। २०वीं शती के आरम्भ में यह विच्छेद पूरा हो गया और आज अवध के ग्राम जीवन ने अपनी बहुत सी सुन्दरता खोदी है और वह पारस्परिक ईर्षा, ग़लतफहमी, झगड़ा, मुकद्दमेबाजी और दरिद्रता का जीवन हो गया है‡।

‡ लेखक अवध के एक गांव का निवासी है (अंधना, जिला सीतापुर) और उसने वर्षों तक प्रान्त के ग्राम जीवन का अध्ययन सावधानी से किया है।

उच्च शिक्षा प्राप्त और सुसंस्कृत महाराजा को हिन्दू शास्त्रों का भी कुछ ज्ञान था। वह इतना धार्मिक था कि बिना प्रातःकालीन प्रार्थना और पूजा के बाहर न निकलता। हिन्दू धर्म पर अपनी भक्ति को उसने अयोध्या में दो प्रसिद्ध मन्दिर—नागेश्वर नाथ और लक्ष्मी जी के—बनाकर प्रगट की। दोनों स्थितियों में बख्शी और नायब की—उसके अधीन क्रूर अप्रबन्ध्य पठान, गर्वशील बारहा के सैयद और हिन्दू सिपाही भी थे और उनके हित के प्रति अपनी उत्कण्ठा से और उनके प्रबन्ध में अपने चातुर्य से वह उनको सन्तुष्ट रखता। वह योग्य और न्यायशील माल अधिकारी था और उचित न्याय के प्रशासन में वह व्यक्तियों या उनके पदों का ध्यान न रखता था। प्रजा पीड़न पर उसने हरदोई ज़िला के सण्डी के एक चौधरी सलामुल्ला को उदाहरण योग्य दण्ड दिया (उ० प्र० ऐतहासिक सभा का जर्नल, १९३४)। प्रशासक की हैसियत से वह चतुर और स्वतन्त्र विचारक; वह सफदर जंग के पुत्र या किसी नातेदार को प्रशासन में हस्तक्षेप न करने देता और नवाब वज़ीर को छोड़कर किसी की आज्ञा न मानता यद्यपि इस कारण से वह शुजाउद्दौला के अचल कोप का भागी हो गया (हादिक १५६)। अवध और इलाहाबाद के सब अधिकारी निश्चित रूप से उसके अधीनस्थ थे। जब अक्तूबर १७४३ ई० इतिहासकार *गुलाम हुसैन* खाँ के पिता सैयद हिदायत अली खां ने, जो खैराबाद की सरकार का फ़ौजदार नियुक्त किया गया था, महाराजा की आज्ञा वश रहना पसन्द न किया, सफ़दर जंग अपने नायब का गौरव बनाये रखने की इच्छा से सैयद को अपने साथ दिल्ली लेता गया। वास्तव में नवाब नवलराय का बहुत सम्मान करता था और उसको अपना पूरा विश्वास और समर्थन दिया। उसकी मृत्यु के समाचार पर वह अगाध दुख में डूब गया और उसकी मृत्यु पर उसकी भावना वही हुई जो प्रिय मित्र या नातेदार की मृत्यु पर होती है।

नवलराय का मुख्यदोष उसका मदिरापान का व्यसन प्रतीत होता है जो उसके शिविर से बंगश महिला बीबी साहिबा के भाग निकलने का मुख्य कारण था। परन्तु यह मालूम होता है कि वह केवल रात्रि को मदिरापान करता था।

नवलराय को भवनों का और जन साधारण की उपयोगता के लिये दूसरे कार्यों का शौक था। उसने अपने लिये दो मकान बनाये—एक

अयोध्या में और दूसरा इलाहाबाद में खुशहालगंज (अब दारागंज) पर जहाँ उसने एक तालाब भी खुदवाया। लखनऊ से १३ मील दक्षिण-पश्चिम पर उसने नवलगंज का क़स्बा बसवाया और उसको भव्य भवनों और सुन्दर बाग़ों से अलंकृत कर दिया। उसकी रक्षा के लिये उसने एक सुदृढ़ईंट की दीवार बनाई जिसमें चार दिशाओं में चार फाटक थे और जिसके चारों ओर गहरी खाई थी। उसने इसको लखनऊ और मोहान (नवलगंज से दो मील पश्चिम) से सड़क द्वारा जोड़ दिया जिसके दोनों ओर उसने छायादार वृक्ष लगवाये। उसने इस क़स्बे को अपने परिवार का मुख्य निवास स्थान बनाया और इसमें धनी व्यापारी और कारीगर बसाये। नवलगंज से चार मील पूर्व में उसने एक दूसरा क़स्बा और बसाया और अपने पुत्र खुशहालराय के नाम पर इसका नाम खुशहालगंज रखा। इसको उसने ऊँची इमारतों और सुन्दर बाग़ों से भर दिया। भाग्य के बहुत से उतार-चढ़ाव नवलगंज ने अनुभव किये हैं। संस्थापक की मृत्यु पर पड़ोस के ज़मींदारों ने इसको लूट लिया परन्तु अपनी समृद्धता को उसने पुनः प्राप्त कर लिया जब पठान उपद्रवों के बाद व्यवस्था पुनः स्थापित हुई। १७५४ में गद्दी पर बैठने के बाद शुजउद्दौला ने, जो महाराजा से डाह रखता था, नवलगंज को गिरवा दिया और उसकी सामग्री से लखनऊ और उस क़स्बे के बीच में उसने वज़ीरगंज बसाया। परन्तु नवाब आसफ़ुद्दौला ने अपने वंश के प्रति नवलराय की स्वामिभक्त सेवाओं को समझ कर, वज़ीरगंज को भूमिसात कर दिया और नवलगंज को पुनः निर्माण किया और बसाया। १७८० और १७८१ में यह समृद्ध क़स्बा था जब मुर्तज़ाहुसैन अपनी हक़ीक़त उल अक़लीम लिख रहा था। यह अब भी है और महाराजा नवलराय की स्मृतियों में से एक है।

नवलराय के पुत्र खुशहालराय के कोई पुरुष सन्तान नहीं थी। उसके केवल एक पुत्री थी जो राय ईश्वरीप्रसाद को ब्याही थी। उसके (पुत्री के) वंशज नवलराय के इलाहाबाद वाले मकान में अब भी रहते हैं जो शहर के दारागंज मुहल्ले में है।

वे प्रायः प्राकृतिक सामग्री हैं। अतः इस काल के ज्ञान के लिये वे अत्यन्त बहुमूल्य उद्‌भव ग्रन्थ हैं। मेरी पुस्तक के अनेक महत्वशाली परिच्छेद प्रायः सम्पूर्णतया उन्हीं के आधार पर लिखे गये हैं—उदाहरणार्थ १७३६ में तिलोई के विरुद्ध सफ़दर जंग का अभियान और कटेश्वर के राजा की पराजय। विद्वानों को वे प्रायः अज्ञात हैं। एक अप्रसिद्ध पुस्तकालय में केवल सौभाग्य से मैंने उनका आविष्कार किया। इस काल के इतिहासकार के लिये उनके विनाश का अर्थ होता—असाध्य हानि।

३—इन्शा-ए-रोशन कलाम (सरकार-हस्तलिखित ग्रन्थ)—१८वीं शती के प्रारम्भिक वर्षों में अवध में बैसवाड़ा के फ़ौजदार नवाब रद अन्दाज़ खां के मुन्शी, भूपतराय, द्वारा लिखित पत्रों का यह संग्रह है। ये पत्र बैसवाड़ा और प्रान्त के अन्य परगनों में सआदतखाँ के पहिले डकैतियों और स्वेच्छाचार की दशा का चित्रमय वर्णन देते हैं। यह ग्रन्थ अति मूल्यवान् है और इस ग्रन्थ का उपयोग चार्ल्स ऐल्फ्रेड इलियट ने अपने ग्रन्थ—१८६२ ई० में प्रकाशित—'उन्नाव का वृत्त विवरण' में किया है।

४—गुल्शने बहार (सरकार हस्तलिखित ग्रन्थ)—यह हरसेवकदास के पत्रों का संग्रह है जो सफ़दर जंग के समकालीन नवाब हकीमखाँ को नौकरी में एक लेखक था। गंगबिशन भटनागर ने ११६६ हि० में उनको संग्रहीत किया और पुस्तकाकार में उनका विन्यास किया। अन्य घटनाओं के साथ वे अली मुहम्मदखाँ रुहेला की उपप्लवी प्रवृत्ति का, सरहिन्द से उसके अपक्रमण का, और देवबन्द, सहारनपुर, बरेली और अन्य स्थानों की लूट का वे वर्णन करते हैं। उनमें जैता गूजर के राजद्रोही कार्यों का और सफ़दर जंग के उन दोनों का दमन करने के उपायों का भी वर्णन हैं।

५—तज़्किरातुस्सलातीन चग़ताई व तारीखे चग़ताई (वि० पु० उ० ह० लि०) यह ग्रन्थ मुहम्मद हादी उर्फ़ कमवरख़ाँ की रचना है। फ़र्रुखसियर, रफ़ीउद्दजात, रफ़ीउद्दौला और मुहम्मदशाह के अधीन लेखक भिन्न भिन्न पदों पर रहा और इस प्रकार अपने इतिहास में वर्णित बहुत सी घटनाओं को उसने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। यह ग्रन्थ दो मोटी जिल्दों में मुग़लराज वंश का इतिहास है। दूसरी जिल्द शाहजहाँ से आरम्भ होती है और मुहम्मदशाह के राज्यकाल के छटे वर्ष पर समाप्त

होती है। यद्यपि ग्रन्थ के समीप यह घटनाओं की संक्षिप्त दिन-पत्रिका का रूप धारण कर लेती है, मुख्यतया अधिकारियों की नियुक्तियों और पद-च्युतियों के वर्णनों का, परन्तु इसमें दी हुई तिथियां और घटनाएँ यथार्थ हैं और मुग़ल दरबार में सआदतखाँ के प्रारम्भिक चरित के लिये यह अति मूल्यवान् है। सआदतखाँ की हिन्डवान और बयाना में नियुक्ति की, दक्षिण को प्रयाण करने वाली शाही सेना में उसके सम्मिलित होने की, आगरा में उसकी नियुक्ति की, अवध में उसके स्थान्तर की और उसके प्रारम्भिक जीवन के अन्य सदृश प्रसंगों की शुद्ध तिथियाँ बिना इस ग्रन्थ के हम नहीं दे सकते थे।

६—मुन्तख़बुल्लुबाब (फ़ारसी ग्रन्थ ए० सु० बं० कलकत्ता द्वारा प्रकाशित) ख़फ़ीख़ां द्वारा रचित। इस ग्रन्थ में दो बड़ी जिल्दें हैं, जिनमें से दूसरी हमारे काल से सम्बन्ध रखती है। महत्व में कमवर ख़ां की तारीखे चग़ताई के बाद इसका दूसरा स्थान है। ख़फ़ीख़ां सआदतख़ां का समकालीन था। दरबार में सआदतख़ां के प्रारम्भिक चरित्र का, अवध में उसकी नियुक्ति तक—यह शुद्ध, परन्तु संक्षिप्त वर्णन देता है।

७—तज़किरे आनन्दराम (सरकार हस्तलिखित ग्रन्थ)। यह आनन्दराम मुख़लिस का है। लेखक उच्चकोटि का विद्वान था और क़मॉर क़मरुद्दीन ख़ां का सचिव था और इस प्रकार उस समय के महत्वशाली प्रसिद्ध व्यक्तियों और घटनाओं के सम्बन्ध में मौलिक ज्ञान प्राप्त करने के दुर्लभ अवसर उसको प्राप्त थे। बहुत सी घटनाओं को, जिनका वर्णन उसने किया है, उसने अपनी आँखों से देखा था। आनन्दराम की शैली सरल, सुबोध, और फिर भी सुन्दर है। तज़किरा के तीन भाग हैं नादिरशाह का आक्रमण, बानगढ़ को अभियान और अहमदशाह अब्दाली का आक्रमण। वर्णित घटनाओं के घटित होने के ठीक पश्चात् प्रत्येक भाग लिखा गया था और अपने विषय पर स्पष्टतया सर्वोत्तम प्रमाण है। इसकी तिथियां प्रायः विशुद्ध हैं और इसके विवरण चित्रवत सुन्दर हैं।

८—मीरातुल्वारिदात, तारीखे चग़ताई या तारीखे मुहम्मदशाही के नाम से भी प्रसिद्ध (वि० पु० उ० इ० नि० प्र०) इसका लेखक मुहम्मदशफ़ी तेहरानी उपनाम वारिद था। सम्भल मुरादाबाद के समीप २६ ज़िलहिज १०८७ हि० को लेखक का जन्म हुआ था। अपनी किशोरावस्था से उसको साहित्य में रुचि थी और ६ वर्ष की आयु से वह पद्य

लिखने लगा। १११७ हि० में अपने पिता की मृत्यु पर उसने शाहज़ादा अज़ीमुश्शान के यहाँ नौकरी करली। कुछ वर्ष पीछे उसने नौकरी छोड़दी और साधु बन गया। अपना ग्रन्थ उसने ११४२ हि० में आरम्भ किया और ११४७ हि० में सम्पूर्ण कर दिया। वह कहता है कि बहादुर शाह के समय से मुहम्मदशाह के समय तक उसने प्रत्येक घटना अपनी आँखों से देखी थी। लेखक का विवेचन मौलिक है, परन्तु उसने दिनाङ्कगत क्रम की उपेक्षा की है और बीच बीच में उसने उपाख्यानों को समाविष्ट कर दिया है। भगवन्त के विद्रोह के सम्बन्ध में कुछ बहुत महत्वशाली विवरण जो और कहीं नहीं मिलते है, उसने दिये हैं। सआदतख़ाँ के नाम का निर्देश वह केवल दो स्थलों पर करता है—एक बार प्रस्तावना में और दूसरी बार हुसेनअलीख़ाँ की हत्या के सम्बन्ध में।

९—शाहनामा मुनव्वर कलाम—(ए० मु० बं० ह० लि०) लेखक शिवचरणदास लखनवी। यह फ़र्रुख़सियर, रफ़ीउद्दजीत और रफ़ीउद्दौला के राज्यकालों का इतिहास है और मुहम्मद शाह के चतुर्थ राज्यवर्ष पर समाप्त होता है। यह विश्वासनीय और विशुद्ध ग्रन्थ है और नीलकण्ठ की पराजय और मृत्यु के और सआदतखां के जाटों के विरुद्ध निष्फल संघर्ष के विवरणात्मक वर्णन के लिये मुख्यतया उपयोगी है। संकलन की तिथि नहीं दी हुई है, परन्तु चूँकि लेखक लखनऊ का निवासी था, मेरा अनुमान है कि सितम्बर १७२२ के पहिले उसने ग्रन्थ को समाप्त कर लिया होगा क्योंकि वह दिन अवध में सआदत खां की नियुक्ति का है—नहीं तो खां का कुछ हाल वह अवश्य देता।

१० जौहरे समसम—(ए०मु०बं०ह०लि०) लेखक मुहम्मद मुहसिन बिजनौरी है। ख़ाँ दौरां समसुद्दौला उसका आश्रय दाता था। उसने इस ग्रन्थ को ११५३ हि० में तैयार किया और अपने दिवंगत आश्रयदाता के नाम पर इस का नाम रखा। मुख्यतया यह नादिर शाह के आक्रमण का इतिहास है, परन्तु बहादुरशाह से मुहम्मदशाह तक मुग़ल साम्राज्य का संक्षिप्तवर्णन भी इसमें है। सआदतखां के जीवन का मृत्युपर्यन्त वह कुछ हाल देता है यद्यपि वह कुछ अंश तक अशुद्ध है। ग्रन्थ कठिन और अलंकृत भाषा में लिखा गया है और खां दौरां की स्तुतियों से भरा हुआ है और ईरानी आक्रमण के दिनों में निज़ाम, कमरुद्दीन खां और सआदत ख़ाँ के आचरण की कटोर आलोचना करता है।

११—हिकायात फातेह नादिरशाह— (ए०मु०बं०ह०लि०) यह लेखक नामहीन ग्रन्थ नादिरशाह के आक्रमण के समय मुहम्मद शाह और उसके सामन्तों के आचरण की समालोचना है। हमले के मुख्य ध्येय खाँ दौरां और सआदतखां हैं। यद्यपि यह ग्रन्थ प्रतिशोधात्मक छिद्रान्वेषण की भाव से प्रेरित है और यद्यपि यह त्रुटियों से भरा पड़ा है, परन्तु इसका गहरा अध्ययन बहुत लाभप्रद है। इसके संकलन की तिथि नहीं दी हुई है परन्तु ऐसा मालूम होता है कि ईरानी आक्रमण के शीघ्र पश्चात यह लिखा गया होगा। अधिक सम्भव है कि यह जौहरे समसम के खण्डन में लिखा गया हो क्योंकि यह निजाम की प्रशंसा करता है जो दूसरे ग्रन्थ में हमले का मुख्य ध्येय है।

१२—जहाँ कुशा नादिरी—(वि० पु० उ० ह० लि० और फ़ारसी पाठ्य बम्बई में लिथो) लेखक नादिरशाह का मीर मुंशी मिर्ज़ा मेहदी खां है। वि० पु० उदयपुर की हस्तलिखित लिपि का प्रतिलेख १५ रबी प्रथम १२४० हि० को तैयार किया गया और इसका शिलामुद्रण ६ जमादी प्रथम १२४५ हि० को हुआ। पाठ्यांश में छापे की कुछ अशुद्धियां हैं और कहीं कहीं पर शब्द छूट गये हैं। ग्रन्थ नादिर शाह की जीवनी है। यद्यपि इसकी शैली कठिन है, यह नादिर के भारत पर आक्रमण संबंधी हमारे ज्ञान का सर्वाधिक महत्वशाली उद्भव है।

१३—तारीख़ अहमदशाही (ब्रिटिश म्यूज़ियम फ़ारसी हस्तलिखित प्रति) इसकी एक नक़लिपि सर जदु नाथ सरकार के लिये तैयार की गई जिन्होंने कृपा पूर्वक अपनी प्रति मुझे दी। बादशाह अहमदशाह के राज्यकाल का यह लेखक—नाम—हीन—इतिहास है जिसको उसके एक दरबारी ने लिखा था जो उसके सारे राज्यकाल में दिल्ली में उपस्थित रहा। उस समय पर, मुख्यतया सफ़दर जंग और उसके साथी के बीच युद्ध पर यह सर्वाधिक विवरणात्मक समकालीन ग्रन्थ है। अहमदशाह के जीवन के प्रारम्भिक वर्षों की कुछ तारीखों में कुछ छोटी त्रुटियों को छोड़कर किसी अन्य ग्रन्थ से वस्तुओं की विशुद्धता में और इसके द्वारा प्रस्तुत ज्ञान के अनेक रूपी विवरणों में इसकी तुलना नहीं हो सकती। ब्रिटिश म्यूज़ियम की हस्तलिखित प्रति के पत्रों का विन्यास विशुद्ध है।

१४—हदीक़तुल आलम—लेखक मीर आलम (हैदराबाद में फ़ारसी पाठ्य लिथोग्राफ्ड) इसकी रचना १७६६ ई० में हुई और

हैदराबाद के निज़ामों के, दिल्ली के साथ उनके सम्बन्धों के, और फीरोज़े जंग और इमादुलमुल्क की प्रवर्तियों के वर्णनों के लिये यह बहुमूल्य ग्रन्थ है।

१५—इबरतनामा (सरकार हलि० लि०) लेखक—मुहम्मदकासिम लाहौरी। यह महत्वशाली और विशुद्ध ग्रन्थ है। यह औरंगज़ेब की मृत्यु से आरम्भ होकर ११५७ हि० (१७४३ ई०) तक चलता है। सआदतखां और सफ़दर जंग दोनों का समकालीन इस ग्रन्थ का लेखक था और बहुतसी घटनाओं को, जिनका वर्णन उसने किया है, उसने अपनी आंखों से देखा था। हुसैन अली खां के प्राणों के विरुद्ध षडयन्त्र में सआदत खां के सक्रिय भाग के, गैरत खां से उसके युद्ध के, ईरानी राजदूतों के आमोद प्रमोद प्रबन्धों के, मराठों से संघर्ष के और नादिरशाह से कूटनीतिज्ञ वार्तालाप के उसके वर्णन विशेष रूप से महत्वशाली हैं।

१६—चहार गुलज़ारे शुजाई—(सरकार ह० लि० लि०) लेखक हरिचरणदास। यह दुष्प्राप्य ग्रन्थ पहिली रमज़ान ११९८ हि० को सम्पूर्ण हुआ (१७८४ ई०)। लेखक परगना मेरठ के एक क़ानून गो परिवार का था और दिल्ली के नवाब क़ासिम अली खां को नौकरी में था जो इसहाक़ खां नज्मुद्दौला का नातेदार था। आलमगीर द्वितीय के राज्यकाल के प्रथम वर्ष में वह अपने स्वामी के परिवार के साथ अवध को चला आया और नवाब क़ासिम खां की पुत्री खानमसाहिबा की सेवा में रहा। खानमसाहिबा फैज़ाबाद में रहती थी। लेखक को शुजाउद्दौला ने मदद-ए-मास (जीवन-निर्वाह वृत्ति) दी। ८० वर्ष की आयु में उसने अपना इतिहास आरम्भ किया और अपने दिवंगत आश्रयदाता के नाम पर उसका नाम रखा। चूँकि लखनऊ के दरबार में ग्रन्थ की रचना हुई, हरिचरणदास ने कुछ विषयों पर, जिनका सम्बन्ध सआदत खां और सफ़दर जंग के जीवन से है, पक्षपात किया है। कभी कभी वह दिनाङ्कों के देने में संभ्रांत हो जाता है। उदाहरणार्थ अवध में सआदत खां की नियुक्ति की तारीख वह ११४१ हि० देता है जब कि शुद्ध तारीख ११३४ हि० है। हमारे काल से संबंधित उसकी बहुत सी तारीखें ग़लत हैं।

१७—इबरतनामा (ए० मु० वँ० ह० लि० लि०)—इसका लेखक खैरुद्दीन मुहम्मद इलाहाबादी है जो कि बलवन्तनामा और तारीखे जौनपुर का भी लेखक है। इबरतनामा (चेतावनी) १९वीं शती के प्रथम

दशक में लिखा गया था। इसका आरम्भकाल आलम प्रथम से होता है और वह मुहम्मदशाह और अहमदशाह के राज्यकालों का केवल संक्षिप्त वर्णन देता है और इसलिये हमारे काल के लिये इसका मूल्य बहुत ही कम है। परन्तु चूँकि शाह आलम द्वितीय के पुत्र जहांदार शाह की सेवा में यह लेखक एक बड़े पद पर था, ग्रन्थ उस बादशाह के राज्यकाल के लिये और शुजाउद्दौला की भी प्रवृत्तियों के लिये उपयोगी है।

१८—तारीखे शाकिर खानी उर्फ तजकिरे शाकिरखां (सरकार ह० लि० नि०) लेखक पानीपत के एक विशिष्ट शेख परिवार से था जो शाह आलम द्वितीय के राज्यकाल की अराजकता में पटना को चला गया। उसका पिता लुत्फुल्ला खां ७ हज़ार का मनसबदार था और नादिर के आक्रमण के समय दिल्ली का राज्यपाल था। उस समय शाकिरखाँ रिसाले मुल्तानी में दस्या था। आलमगीर द्वितीय के समय में उन्नति करके वह दीवान हो गया। वह कहता है कि मुहम्मदशाह के राज्यारोहण से शाह आलम द्वितीय के राज्यरोहण तक उसने घटनाओं को अपनी आँखों से देखा और अपने ग्रन्थ में उनको अँकित किया। यद्यपि किसी बादशाह या किसी काल का नियमानुसार यह ग्रंथ नहीं है, यह बहुत मूल्यवान ग्रन्थ है और हमारे काल पर यह प्रकाश डालता है। इसका मुख्य अवगुण यह है कि लेखक घटनाओं के दिवाङ्कगत क्रम की उपेक्षा करता है—उदाहरणार्थ उसके अनुसार ईद दिवस—पदच्युत जावेद खां की हत्या के बाद होता है।

१९—बयाने वाकिया तारीखे नादिरशाह के नाम से भी प्रसिद्ध-(ह० पु० क० ह० लि० लि०) लेखक अब्दुलकरीम काश्मीरी। लेखक विस्तृत अनुभव और विशुद्ध अवलोकन का विद्वान पुरुष था और अरब, ईरान अफगानिस्तान में उसने सफ़र किया था। उसके ग्रंथ का प्रथम भाग नादिरशाह की जीवनी से और भारत पर आक्रमण से सम्बन्ध रखता है। दूसरा भाग भारतीय तैमूरियों का ११६१ हि० (१७८१ ई०) तक का इतिहास देता है। यह बहुत उपयोगी और विशुद्ध ग्रंथ है और नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली के आक्रमणों के लिये और अहमदशाह तैमूरी के राज्यकाल के लिये विशेषकर उपयोगी है। अवध रहेलखण्ड और पंजाब से सम्बन्धित उसके विवरण मूल्यवान और शुद्ध हैं। इम्पीरियल पुस्तकालय की हस्तलिखित प्रति के पीछे से अन्तिम पृ०

खो गये हैं। उनके लिये मैंने सर जदुनाथ की हस्तलिखित प्रति से काम लिया है और उनका हवाला दिया है।

२०—तबसीर तुल्लाज़िरीन (ए०-मु०-बं०-ह०-लि०) लेखक—सैयद मुहम्मद। लेखक का जन्म ११०१ हि० में हुआ था और वह बिलग्राम के एक विशिष्ट शेख परिवार से था जो मध्यकालीन अवध में इस्लामी विद्या का केन्द्र था। तब्सीर जो ११८२ हि० (१७६८ ई०) में समाप्त हुई ११०१ हि० से ११८२ हि० तक बिलग्राम के मुसलमान सज्जनों के जीवन वृतान्तों और उनके जीवन से सम्बन्धित प्रत्येक प्रसिद्ध घटना का शुद्ध दिनाङ्क सहित उल्लेख देती है। प्रसंगवश यह दिल्ली और अवध से सम्बन्धित विषयों का भी उल्लेख करती है और बहुत विशुद्ध और उपयोगी है। १७३७ ई० में तिलोई के नवलसिंह के नेतृत्व में राजपूत विद्रोह पर यह हमारा एक मात्र प्रमाण ग्रंथ है। क़ायम खां की पराजय और मृत्यु, नवलराय की पराजय और मृत्यु और बादशाह से सफ़दरजंग के युद्ध के उपयोगी विवरण भी इस ग्रन्थ में हैं।

२१—हदीक़तुलाक़ालीम (फ़ारसी पद्य-शिला मुद्रित न० कि० प्रेस, लखनऊ)। लेखक बिलग्राम निवासी मुर्तज़ा हुसैन। वह कैप्टिन जोनाथन स्वीफ़्ट का। (वारेन हेस्टिंग्ज का फारसी सचिव) मुन्शी (सचिव) था और उसकी प्रार्थना पर १७८०-१७८१ के बीच में इस ग्रंथ का सम्पादन किया। १७२३ हि० में लेखक का जन्म हुआ था और वह कुछ समय तक सरबुलन्द खाँ, सआदत खाँ, नवलराय, सफदर जंग अहमदखां बंगश आदि के सेवा में रहा था और अन्त में जमादी प्रथम ११६० हि० में उसने जोनाथन स्वीफ्ट की नौकरी की। यद्यपि यह ग्रंथ मु यतया संसार का स्थानवर्णात्मक वृतान्त है जैसा कि लेखक का उद्देश्य था, यह सआदत खां, सफ़दर जंग, नवलराय, अहमदखां वगैरा के चरित्रों के अत्यन्त बहूमूल्य वृत्तान्त देता है। उन सब को मुर्तज़ा हुसैन अच्छी तरह जानता था। लेखक ने छोटे परन्तु महत्वशाली प्रसंगों की ओर भी ध्यान दिया है और प्रसिद्ध व्यक्तियों के सम्बन्ध में उपयोगी उपा यान भी दिये हैं जो हमको अन्यत्र नहीं मिलते हैं।

२२—गुलिस्तानेरहमत—लेखक हाफिज़ रहमत खां का पुत्र नवाब मुस्तजीब खां—अनुवादक सर चार्ल्स इलियट। यह ग्रंथ हाफ़िज़ रहमत खां की जीवनी है और दाऊद से हाफ़िज़ रहमत खां के समय के अन्त

रुहेलखण्ड की घटनाओं सम्बन्धी हमारे ज्ञान का सर्वाधिक महत्वशाली उद्गम है। यद्यपि सब दूसरे पठान ग्रंथों के समान यह लेखक की जाति का पक्ष करता है—यह ग्रंथ बंगश नवाबों, अहमदशाह अब्दाली और अवध के नवाबों के इतिहास के लिये उपयोगी है। इस ग्रंथ में कुछ अशुद्धियों ने घर कर लिया है। निम्नलिखित एक प्रतिरूपक उदाहरण है। मुस्तजीब खां कहता है लखनऊ में साहिब राय ने बीबी साहिबा को विमुक्त किया। जब यह समाचार दिल्ली पहुँचा, सफ़दर जंग ने राजा नवलराय को आज्ञा दी कि फ़र्रुखाबाद जाकर उसको फिर से पकड़लावे। अतः उसने उस क़स्बे को प्रस्थान किया। जब अहमद खां ने यह बात सुनी, उसने उसको बीच ही में रोकने का निश्चय किया। अहमद खां रुस्तम खां ने मऊ से तीन कोस पर नवलराय पर आक्रमण किया उसके सिपाहियों को भगा दिया और उसकी बोटी बोटी काट डाली। शुद्ध विवरणों के लिये पाठ्यांश देखो।

२३—सियारुलमुताख़िरीन (फ़ारसी पाठ्य, शिला मुद्रित न० कि० प्रेस, लखनऊ)। लेखक सैयद गुलाम हुसैन खां तबतबाई। आदि समय से ११९५ हि० (१७८० ई०) तक जब यह ग्रंथ समाप्त हुआ भारत का यह बड़ विस्तीर्ण इतिहास है। दूसरी जिल्द औरंगज़ेब की मृत्यु से आरम्भ होती है और वृत्तान्त तीसरी जिल्द में वारेन हेस्टिंग्ज़ तक चलता है। ११४० हि० में लेखक का जन्म हुआ और वह सफ़दर जंग का समकालीन था। वह और उसका पिता हिदायत अली खां दिल्ली को नवाब के साथ गये थे। हिदायत अली खां ने सफ़दर जंग की सेवा में प्रवेश किया और प्रथम पठान युद्ध में वह उसके साथ उपस्थित था। इतिहासकार का चाचा अब्दुल अली खां, सफ़दर जंग की सेना में द्वितीय पठान युद्ध में लड़ा और अपने भूतपूर्व स्वामी के विरुद्ध गृह-युद्ध में हिदायत अली ने सक्रिय भाग लिया। लेखक स्वयं सफ़दर जंग और अन्य सामन्तों से अच्छी तरह घनिष्ठ था और इस प्रकार उसको उस समय के युद्धों और प्रश्नों के मौलिक ज्ञान प्राप्त करने के दुष्प्राप्य अवसर प्राप्त थे। अतः अहमदशाह के राज्य काल पर सियर मुख्य प्रमाण ग्रन्थ है। मुस्तफ़ा का इङ्गलिश अनुवाद प्रत्येक स्थल पर पूर्णतया विशुद्ध नहीं है। उदाहरणार्थ—फ़ारसी वाक्यांश [illegible] مردی و مروت داشت का वह सतत अनुवाद देता है—वह अपने धर्म का उदाराचारक था। फ़ारसी वाक्यांश में दिये हुये दिनों और दिनांकों को वह प्रायः छोड़ देता है।

२४—तारीखे मुज़फ़्फ़री (वि० पु० उ० ह० लि० लि०)—लुत्फ़ुल्ला खाँ पुत्र हिदायतुल्ला खाँ पुत्र मुहम्मद अली खाँ अन्सारी द्वारा रचित। लेखक ने अपने पैतृक निवास स्थान पानीपत को आजीविका की खोज में छोड़ दिया और बंगाल के नायब नाज़िम मुहम्मद रज़ा खाँ मुज़फ़्फ़रजंग के आश्रय से तिर्हुत और हाजीपुर फ़ौजदारी अदालत में दारोग़ा हो गया। तारीखे मुज़फ़्फ़री क़रीब १८०० ई० के लिखी गई और लेखक के आश्रय दाता के नाम पर इसका नाम रखा गया। मुग़ल साम्राज्य का यह साधारण इतिहास है और १२१२ हि० (१७७६ ई०) तक यह चलता है। मुहम्मदशाह के राज्यकाल के अन्त तक मालुम होता है लेखक ने अपनी सारी सामग्री सियर से प्राप्त की है। बंगाल और बिहार पर उसके अध्याय गुलाम हुसैन की पुस्तक के केवल सार हैं। परन्तु अहमद शाह के राज्यकाल पर यह महत्वशाली और मौलिक है।

२५—मीराते अहमदी (वि० पु० उ० लि० लि०)—लेखक अली मुहम्मद खाँ। लेखक गुजरात प्रान्त का दीवान था और यह ग्रन्थ ११७५ हि० (१६६१ ई०) में समाप्त हुआ। मुस्लिम शासन के आरम्भ से १७६१ ई० तक यह गुजरात का साधारण इतिहास है और तीन जिल्दों में विभाजित है। प्रसंगवश इसमें दिल्ली के स्वामिलों का भी वृत्तान्त देता है। इसमें हमको कुछ महत्वशाली तथ्य प्राप्त होते हैं जो अन्यत्र नहीं मिलते हैं—उदाहरणार्थ सरबुलन्द खाँ की गुजरात की प्रथम राज्यपाली का समय; सूरत में सफ़दर जंग के उतरने की यथार्थ तिथि।

२६—मशीरुलुमरा जिल्द १–३ (फारसी पाठ्यांश ए० सु० बं० द्वारा प्रकाशित) लेखक शाहनवाज़ खां समसमुद्दौला। लेखक हैदराबाद के निज़ाम का एक उच्च पदाधिकारी था। उसका पिता समसमुद्दौला ११६७ हि० में वकीले मुत्लक़ नियुक्त हुआ और ११७१ हि० में उसकी हत्या करदी गई। लेखक ने ११८२ हि० (१७६८ ई०) में समकालीन फ़ारसी हस्त लिखित ग्रन्थों के आधार पर अपना ग्रन्थ आरम्भ किया और १७८० ई० में उसको समाप्त कर दिया। मुग़ल सामन्त वर्ग का यह जीविनी-मय-कोष है और उपयोगी है।

२७—मशीरे आसफ़ी (ए० सु० बं० ह० लि०)—लेखक लक्ष्मी नारायण। यह कवि और इतिहास कार था और निज़ाम की सेवा में था। उसका उपनाम शफ़ीक़ था। उसने इस ग्रन्थ को १७६३ ई० में

रचना की। प्रथम निज़ाम से १७६३ ई० तक यह हैदराबाद के शासक वंश का साधारण इतिहास है। यह मूल्यवान ग्रन्थ है और निज़ाम के अवध से सम्बन्धों के विषय में विश्वासनीय सामग्री उपस्थित करता है।

२८—तोहफ़-ए-ताज़ा उर्फ़ बलवन्त नामा (ए०सु वं०इ०लि०लि०)। लेखक खैरुद्दीन मुहम्मद जो थोड़े से अन्य ऐतिहासिक ग्रन्थों का भी लेखक है। उपस्थित ग्रंथ मनसा राम से ११६५ हि० (१७८० ई०) तक बनारस के शासक वंश विवरण युक्त विशुद्ध इतिहास है। एक ओर सआदत खां और सफ़दर जंग और दूसरी ओर बनारस के मनसाराम और बलवन्त-सिंह के बीच में सम्बन्धों का अति मूल्यवान वृत्तांत इस ग्रंथ में मिलता है। लेखक की प्रथम योजना ५ बाब (अध्याय) लिखने की थी अर्थात् उस राज वंश के पंचम शासक उदित नारायण के समय के अन्त तक। परन्तु या तो अपनी योजना को वह पूरा न कर सका या इस लिखित प्रति के अन्तिम पृष्ठ खो गये हैं। ब्रिटिश म्यूज़ियम और इण्डिया आफ़िस की प्रतियों में भी तीन ही अध्याय हैं जैसे कि ए० सु-वं० की प्रति में।

२६—मआदनुस्सआदत (ए० सु-व० इ० लि०)—लेखक सैयद सुल्तान अली खाँ सफ़वी। लखनऊ के दरबार में १७६८ ई० और १८०२ ई० के बीच में लेखक ने इस ग्रंथ का निर्माण किया और अवध के पंचम शासक सआदत अली खां—अपने आश्रय दाता को समर्पण किया। चार बड़ी जिल्दों में यह सुग़ल राज वंश का साधारण इतिहास है। चौथी जिल्द बहादुर शाह प्रथम के राज्य काल से आरम्भ होती है और सआदत अली खां के शासन के ७ वें वर्ष १२१७ हि० (१८०२ ई०) पर समाप्त होती है। मआदन सियर का केवल शब्द विस्तार है। बहुत से स्थलों पर लेखक ने अक्षरशः सियर की नक़ल कर ली है। इसका विशेष लक्षण सआदत अली के शासन का अन्त में विवरणात्मक वृतांत है। दरबारी लेखक की भांति सुल्तान अली का दृष्टिकोण बहुत से विषयों पर पक्षपात-मय है—जैसे-सआदत खाँ की मृत्यु, सफ़दर जंग का पटना की अभियान; उसकी विज़ारत (प्रधान मन्त्री पद) पर नियुक्ति आदि।

३०—इमादुस्सआदत (फ़ारसी पाठ्य लिथो मुद्रित-न० कि० प्रेस, लखनऊ)—लेखक लखनऊ निवासी ग़ुलाम अली। सआदत खां बुर्हा-नुल्मुल्क से इस राजवंश के प्रथम शासक सआदत अली खाँ तक अवध के नवाबों का यह नियमानुसार इतिहास ग्रंथ है। लेखक को दिल्ली का

निवासी था, १२०२ हि० के अन्त के समीप लखनऊ में आकर बस गया था। लखनऊ के रेज़िडेण्ट कर्नल बेली की प्रार्थना पर लेखक ने १७०८ ई० में इस ग्रंथ की रचना की और अपने आश्रय दाता—सआदत अली खाँ के नाम पर इसका नाम रखा। यद्यपि गुलाम अली दरबारी लेखक था और यद्यपि अवध के नवाबों की यथा सम्भव रक्षा करने का उसने प्रयत्न किया, उसका ग्रंथ हमारे समय के लिये बहुत मूल्यवान उद्भव ग्रंथ है। बहुत से विषयों पर बहुत से नये ज्ञान के अतिरिक्त यह ग्रंथ सआदत खाँ और सफदर जंग के पूर्वजों की कथा और उनके प्रारम्भिक चरित देता है जो उस समय की किसी इतिहास पुस्तक में नहीं मिलते हैं।

३१—तारीखें खरोज नादिरशाह व हिन्दुस्तान उर्फ तारीखे मुहम्मद शाही, जिल्द २-मुहम्मद बख्श अशोब का—(सरकार ह० लि० प्रति) यह नादिरशाह के आक्रमण पर सर्वाधिक विस्तीर्ण ग्रन्थ है। इसकी रचना १७८५ ई० में हुई। अलीमुहम्मद खाँ रुहेला के विरुद्ध मुहम्मद शाह के अभियान का और प्रथम अब्दाली आक्रमण का भी संक्षिप्त वृत्तान्त इसमें है। अशोब की शैली वाग्बहुल और उद्धत है और ऐसा प्रतीत होता है कि आनन्दराम के तज़किरा पर यह ग्रन्थ आधारित है यद्यपि वह हमको विश्वास दिलाता है कि वह करनाल, बाग गढ़ और सरहिन्द में उपस्थित था।

३२—उमराये हैदराबाद और अवध—(पू०सा०पु०बाँ०प०ह०लि० प्रति) यह ग्रन्थ गुलामअली आज़ाद का है। यह ग्रन्थ सआदत खाँ और सफदर जंग के चरितों का अविरत वृत्तान्त देता है और लेखक के वृहदाकार ग्रन्थ खज़ाने अमीरा के उद्धरणों से निर्मित हुआ है। गुलामअली कवि और विद्वान था और ऐसा प्रतीत होता है कि उसने उन्हीं उद्गम ग्रन्थों का उपयोग किया है जिनका उसके समकालीन गुलामहुसैन खाँ तबतबाई ने। उसका ग्रन्थ यथार्थ और उपयोगी है।

३३—तारीखे बनारस—(पू०सा०पु०बाँ०प०ह०लि०प्रति) इसका लेखक हिम्मत खाँ का पुत्र गुलाम हुसैन खाँ है। खैरुद्दीन की भाँति लेखक मनसाराम के परिवार के इतिहास को गाँव उमरिया के दादू मिश्र से अनुसृत करता है और १२ शती के अन्त के समीप तक इसको देता है। यह अलंकृत और प्रशंसात्मक शैली में लिखा गया है और मनसाराम और बलवन्तसिंह के परिवार के प्रति स्तुति-मय है।

३४—हदीक़तुस्सफ़ा—(ए०मु०बं०ह०लि० प्रति) लेखक मूसुद्दमजी। यह इस्लामी देशों का ११८२ हि० (१७६६ ई०) तक का साधारण इतिहास है। दूसरी और तीसरी जिल्दें भारतीय तैमूर वंश का वृत्तान्त देती हैं। इस काल के लिये यह उपयोगी है, परन्तु लेखक अन्य पुस्तकों से अधिक कुछ नहीं देता है।

३५—तारीखे आली—(पू०सा०पु०बाँ०प०ह०लि०लि०) लेखक क़ुदरत उपाधिकारी शेख मुहम्मद सालेह है। लेखक एक इङ्गलिश पदाधिकारी जेम्स ब्राउन नामक की सेवा में था। ब्राउन की प्रार्थना पर शाह आलम द्वितीय के राज्य काल में उसने पुस्तक की रचना की। ग्रन्थ बहादुरशाह प्रथम से आरम्भ होकर शाह आलम द्वितीय पर अन्त को प्राप्त होता है। ईद-दिवस षड्यन्त्र और गृहयुद्ध से सम्बन्धित उपयोगी विवरण इसमें हैं।

३६—चहारे गुलशन—(वि०पु०उ०ह०लि०प्रति) लेखक राय छत्रमन रायज़ादा है। इसकी रचना ११७२ हि० (७५६ ई०) में हुई। मुग़ल प्रान्तों के स्थानात्मक विवरणों के लिये और १८वीं शती के पूर्वार्ध में धार्मिक सम्प्रदायों के इतिहास के लिये यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है।

३७—हुसैनशाही तारीख अहमद शाह दुर्रानी के नाम से भी प्रसिद्ध—(ए०मु०ब०ह०लि०प्र०) लेखक इमामुद्दीन हुसैनी। १७६६ ई० में लेखक को, जो भारतीय मुसलमान था, अफ़गानिस्तान में यात्रा करने का अवसर मिला। वहाँ पर उसने दुर्रानी वंश का इतिहास ज्ञात किया। वह लखनऊ को वापस आया और १७६६ ई० में अपने ग्रन्थ का निर्माण किया और उसको अपने धर्मगुरु अबु महसिन हुसैनी को समर्पित किया। जैसा कि इसके नाम से प्रकट होता है—यह पुस्तक अहमदशाह अब्दाली की जीवनी है। प्रारम्भिक चरित्र सुन्दर और यथार्थ है परन्तु पीछे के भाग त्रुटिमय हैं और अर्धसत्यों और अशुद्ध कथानकों से भरा हुआ है। समस्त ग्रन्थ श्लाघामय है और तब भी इसमें इतने विवरण नहीं है जितने सियर ऐसे साधारण इतिहास में हैं।

३८—मअसरुल्तारीख बहादुर नादिरिया—(फारसी पाण्डुलिपि सर ज० सरकार के पुस्तकालय में। लेखक मुहम्मद अमीन अब्दुल हसन गुलिस्तानी है। लेखक ईरानी था जो नादिरशाह की मृत्यु के दस वर्ष पीछे अपना देश छोड़कर मुर्शिदाबाद में बस गया। पुस्तक ....

अब्दाली की जीवनी है और भारत पर उसके आक्रमण का सविस्तार देती है। चूँकि गुलिस्तानी शिया था और सफ़दरजंग का उत्साही प्रशंसक वह सरहिन्द के समीप अब्दाली पर भारतीय विजय का एक मात्र कारण नवाब की ईरानी फौजों को बताता है और यह असत्य कहता है कि तूरानियों और हिन्दुस्तानियों ने कुछ नहीं किया। यह हमारे काल के लिये केवल अप्रधान उद्भव है।

३६—तारीखे इमादुलमुल्क— (पू०सा०पु०बाँ०प०इ०लि० प्रति) लेखक अब्दुल क़ादिर उर्फ़ गुलाम क़ादिरखां जायसी। लेखक का पिता बनारस का बड़ा क़ाज़ी था। १२५० हि० में ग्रन्थ की रचना हुई—बनारस में एक इङ्गलिश अफसर की प्रार्थना पर। यह इमादुलमुल्क की जीवनी है और यद्यपि यह समकालीन ग्रन्थ नहीं है, इसका अध्ययन लाभकारी है।

४०—तफ्ज़ीहे गाफिलाँ—(वि० होये द्वारा अनूदित और १८८५ ई० में प्रकाशित) लेखक अबुतालिब लन्दनी। कलकत्ता के कैप्टिन रिचर्ड सन की प्रार्थना पर १२११ हि० (१७६७ ई०) में ग्रन्थ की रचना हुई। आसफ़ुद्दौला की नौकरी में लेखक एक राजस्व अधिकारी था। नवाब वज़ीर के समय का यह इतिहास है, परन्तु सआदत खां और सफ़दरजंग के विषय में भी इसमें कुछ महत्वशाली तथ्य हैं।

४१—गुले रहमत—,पू०सा०पु०बां०प०इ०लि० प्रति) हाफिज़ रहमत खां के पौत्र सआदत यार खां द्वारा रचित। इस ग्रन्थ में, जो १२४६ हि० में तैयार हुआ, चार अध्याय हैं, और इसका आधार गुलिस्ताने रहमत है। इसका क्षेत्र वही है जो पूर्व ग्रन्थ का और इसमें कोई नई बात नहीं है। कुछ स्थलों पर लेखक दुखद सत्य को छुपा देता है। उदाहरणार्थ— वह अली मुहम्मद खां की मूल जाति नहीं देता है, न उसके माता पिता का नाम देखो पृ० ६ ब०।

४२—तारीखे फर्रुखाबाद (ए० सु० बं० इ० लि० प्रति)—लेखक मुहम्मद वली उल्ला। लखनऊ के कर्नल बेली की प्रार्थना पर पुस्तक का निर्माण हुआ। फ़र्रुखाबाद के बंगश नवाबों का यह मुख्यतया इतिहास है, परन्तु दिल्ली और अवध के इतिहास का भी यह वृत्तान्त देता है। अवध के प्रश्नों पर इसका एक मात्र आधार इमादुस्सआदत है और लेखक ने इमाद की वर्णन शैली का सफलता पूर्वक अनुकरण किया है।

४६—सुल्तानुल हिकायत (म० ब० पु० इ० लि० प्रति)—लेखक शीतलप्रसाद का पुत्र लालजी। रमज़ान १२६६ हि० (जून १८५३ ई०) में इस ग्रन्थ की रचना हुई। सआदतख़ां से वाजिदअली शाह तक अवध का संक्षिप्त इतिहास इस ग्रन्थ में है और केवल कालानुसारिणी चक्रों के लिये जो इसमें है, वह उपयोगी है। हाल में रामपुर पुस्तकालय में इस ग्रन्थ का एक दूसरा और अधिक पूर्ण संस्करण मुझे मिला। यह भी इस विषय पर कोई नवीन प्रकाश नहीं डालता है।

५०—बोस्ताने अवध (फ़ारसी पाठ्यांश लखनऊ में मुद्रित)—लेखक सन्डीला का राजा शिवप्रसाद। सआदतख़ाँ से वाजिदअली शाह तक यह अवध का इतिहास है और इसका आधार इमाद है।

५१—यादगारे बहादुरी (फ़ारसी इ० लि० प्रति केन्द्रीय पत्रक कार्यालय, इलाहाबाद)—बहादुरसिंह भटनागर द्वारा १८३३-३४ ई० (१२४६ हि०) में रचित। अपने पूर्व निवास स्थान दिल्ली से लेखक १८१७ ई० में लखनऊ आकर बस गया और वहाँ पर एक बृहदाकार ग्रन्थ का निर्माण आरम्भ किया जिसका नाम उसने अपने नाम पर रखा। ग्रन्थ अतिदुष्प्राप्य है और लेखक के संस्मरण देता है। ग्रन्थ दिनांकगत वृत्तान्त नहीं है—परन्तु संस्मरणात्मक गज़ेटियर। ऐतिहासिक कथानक का आधार इमाद और मअदन हैं; परन्तु देश के स्थानों, इसकी पैदावार, उद्योग और वाणिज्य के वृत्तान्त और हिन्दुओं के धार्मिक सम्प्रदायों के वर्णन और फ़ारसी और हिन्दी कवियों की जीवनियाँ आदि उपयोगी हैं।

इ—मराठी

१—पेश्वा दफ्तर संग्रह, जिल्द १-४५ (बम्बई सरकार द्वारा प्रकाशित और सरकारी केन्द्रीय मुद्रणालय, बम्बई द्वारा मुद्रित)—ये पत्र अब तक विद्यार्थियों को प्राप्त न थे। उनको प्रकाशित कर और भारतीय इतिहास के विद्यार्थियों के लिये सस्ते दामों में उनको प्राप्य बना कर बम्बई सरकार ने विद्वता के हित में बहुत बड़ी सेवा की है। ये पत्र सम-*कालीन फ़ारसी इतिहास ग्रन्थों के बहुमूल्य पूरक हैं। मराठों के प्रति* सआदतख़ाँ और सफ़दर जंग की नीति का, दिल्ली में उनके कार्यों का, और अपने शत्रुओं से सफ़दर जंग की युद्धों का हमारा बहुत सा ज्ञान उनसे प्राप्त हुआ है। इस अज्ञात समय का हमारा ज्ञान उनके बिना पूर्ण न होता।

२—ऐतिहासिक पत्रें यदि वगारा लेख (द्वितीय संस्करण)—राइ० एम० काले और बी० एस० वकासकर की सहायता से जी० एस० सरदेसाई द्वारा सम्पादित सर जदुनाथ सरकार के अग्रलेख सहित, चित्रशाला प्रेस-पूना। ये पत्र और लेख १६५६ से १८५० ई० तक के काल से सम्बन्धित हैं और सफ़दर जंग की द्वितीय पठान युद्ध और मराठों से उसके सम्बन्धों के लिये बहुत उपयोगी हैं।

३—मराठाच्यॉइतिहास ची साधनें—जिल्द १-२१ राजवाड़े और अन्य विद्वानों द्वारा सम्पादित। इन जिल्दों में संग्रहीत ये पत्र और लेख जन प्रवाद समाचारों के अपवाद बाद अतिमूल्यवान हैं।

४—पुरन्दरे दफ़्तर—तीन जिल्दें। बहुत उपयोगी। जिल्द प्रथम की पत्र नं० १५४ सफ़दर जंग और मराठा वकील महादेव भट्ट के बीच एक विवाद का और एक अमहत्व विग्रह का, जिससे भट्ट की मृत्यु हो गई, उल्लेख करता है।

५—दिल्ली येथिल मरा राजकरनें—डॉ-बी-परसनिस द्वारा सम्पादित— दो जिल्दें।

६—हिंगने दफ़्तर—२ जिल्दें—ये और नं० ५ की दो जिल्दें दिल्ली में मराठा वकीलों के लेख देती हैं। वे बहुमूल्य हैं।

७—होल्करशाही इतिहास च्या साधनें—२ जिल्दें बी-बी-ठाकोर द्वारा सम्पादित। उपयोगी।

८—सिन्धे शाही इतिहास च्या साधनें—२जिल्दें-ए-बी फालके द्वारा सम्पादित। उपयोगी।

९—मराठी रियासत—जी-एस-सरदेसाई कृत-जिल्द II (१७०७—१७४०) जिल्द III (१७४०—१७६०); और जिल्द IV (पानीपत प्रकरण) ये ऊपर के ग्रन्थ औरंगज़ेब की मृत्यु से पानीपत के तृतीय रण तक मराठों का सम्बन्द्ध इतिहास देते हैं और उपयोगी हैं। परन्तु चूँकि लेखक ने फारसी ग्रन्थों का मूल में उपयोग नहीं किया है, ग्रंथों में कुछ अशुद्धियाँ रह गईं हैं। इस पुस्तक की पद-टिप्पणियों में, जहाँ कहीं सम्भव हो सका है, मैंने उनकी ओर संकेत कर दिया है।

ब० हिन्दी

१—नादिरशाह और मुहम्मदशाह पर एक कविता—ज०-ए० सु०-ब १८६७ में। इस कविता का रचयिता तिलोकदास है। इसी विषय पर वह रोचक ज्ञान देता है।

२—सुजान चरित—सूदन का—(द्वितीय संस्करण १६८० वि०)—काशी नागरी प्रचारिणी सभा, बनारस द्वारा प्रकाशित। सूदन सफदर जंग का समकालीन था। वह मथुरा का निवासी था और उसका प्रस्तुत ग्रंथ एक लम्बा काव्य है जो उसने अपने आश्रय-दाता भरतपुर के सूरजमल की प्रशंसा में लिखा है। यह सूरजमल अपने जाति भाइयों में सुजानसिंह के नाम से सुप्रसिद्ध था। यद्यपि वह अपने नायक की बहुत प्रशंसा करता है, सूदन अपने आश्रय दाता के शत्रुओं के गुणों का भी सूरजमल के गुणों के साथ-साथ वर्णन करता है। ग्रन्थ में उन रणों के वर्णन हैं जो सूरजमल ने अपने हित में व अपने मित्रों के हित में लड़े। यह कठिन और बहु अलंकृत शैली में लिखा गया है और सारा ग्रन्थ स्तुतिमय है। तब भी अधिकांश घटनायें जिनका कवि ने वर्णन किया है यथार्थ है (जैसा कि मुझे मालुम हुआ जब मैंने फारसी और मराठी समकालीन ग्रन्थों से उसकी तुलना की)। उसने प्रत्येक रण का मास और वर्ष भी दिया है और वे भी शुद्ध हैं। ऐसा मालुम होता है कि इन रणों में से अत्याधिकांश को सूदन ने स्वयं देखा था और उसके अन्त के शीघ्र ही पश्चात् उसने प्रत्येक का वर्णन किया।

३—रास भगवन्त सिंह—सदानन्द कवि कृत—काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका जिल्द ५ में बृजरत्न दास द्वारा सम्पादित (१६८१ वि०) यद्यपि सआदत खां के विरुद्ध भगवन्त के युद्ध पर यह स्तुतिमय पद्य ग्रन्थ है और यद्यपि खीची सरदार के अद्भुत विक्रम का यह कवि की भाषा में वर्णन करता है, यह ग्रन्थ घटनाओं और दिनांकों के कथन में यथार्थ है। मालुम होता है कि सदानन्द ने रण को अपनी आंखों से देखा था क्योंकि उसका वर्णन फ़ारसी दिनांकगत वृत्तांतों से मिलता है। प्रसंगवश वह 'विलियम इर्विन के अज्ञात समकालीन' की कल्पना को, कि इस समय सआदत खां की आयु ६० वर्ष की थी, दृढ़ करता है। सआदत खां के कुछ पूर्वकालीन निष्पत्तियों का भी वर्णन करता है जो और किसी ग्रंथ में नहीं पाई जाती हैं।

४—वंशभास्कर (रामर याम प्रेस, जोधपुर द्वारा मुद्रित)—लेखक बूंदी का सूरजमल चारण। यह आधुनिक ग्रन्थ है और क़रीब १८४० ई० में इसकी रचना हुई। लेखक (जन्म १८७२; मृत्यु १६२० वि०) राजस्थान के राजपूत शासक वंशों का, विशेष कर बून्दी का और मुग़ल सम्राटों का

को इतिहास देता है। ग्रन्थ का आधार मुख्यतया लोक-कथा व राजस्थान के राजकवियों की अर्ध ऐतिहासिक कवितायें हैं। यह त्रुटियों से भरा हुआ है। निम्नलिखित एक प्रतिरूप उदाहरण है—लेखक कहता है कि सफ़दर जंग ने सरहिन्द के पास वज़ीर क़मरुद्दीन ख़ाँ को विश्वासघात कर गोली से मार दिया। यह ऐतिहासिक तथ्य नहीं है।

ख—उर्दू

१—सवानिहाते-सलातीन-अवध—लेखक कमालुद्दीन हैदर (न० कि० प्रेस, लखनऊ में मुद्रित, १८७९ ई०)। फ़ारसी में उसी नाम के लेखक के ग्रन्थ का यह उर्दू संस्करण है और वाजिद अली शाह के राजत्व काल के लिए उपयोगी है।

२—गुलदस्त-ए-अवध—मुनालालदास कृत (मयूर प्रेस, दिल्ली में मुद्रित) निर्मूल्य छोटी सी पुस्तिका।

३—तारीखे अवध—(द्वितीय संस्करण, न० कि० प्रेस, लखनऊ) लेखक रामपुर का नज्मुलग़नी। ग्रन्थ की पाँच जिल्दें हैं और इसमें सआदत ख़ाँ के वंश का वाजिद अली शाह के अन्त तक का वृत्तान्त है। लेखक में सिवाय परिश्रम के इतिहासकार का और कोई गुण या उसका विशेष शिक्षण नहीं है। उसको यह भी पता नहीं है कि इस काल के लिए कौन से ग्रन्थ परम मान्य, कौन से मान्य और कौन से अमान्य हैं।

४—अख्बारुस्सनादीद, दो जिल्दों में—(न० कि० प्रेस, लखनऊ, १९१८)—लेखक वही। दाऊद से आज तक रामपुर के नवाबों का यह इतिहास है। यह दरबारी चाटुकार की भावना से लिखा ग्रन्थ है और त्रुटियों से भरा हुआ है।

५—तारीखे हैदराबाद दक्खिन—(न० कि० प्रेस, लखनऊ) लेखक वही। हैदराबाद के निज़ामों का यह इतिहास है। थोड़े से फ़ारसी पत्रों के, जो रामपुर में सुरक्षित हैं, अनुवाद के अतिरिक्त इसका कोई मूल्य नहीं है।

६—तारीखे बनारस—(सुलेमानी प्रेस, बनारस, १९१६)—लेखक सैयद मज़हर हुसैन। नज्मुलग़नी की तरह लेखक भारतीय इतिहास का गम्भीर विद्यार्थी नहीं है। उसके ग्रन्थ का कोई मूल्य नहीं है।

ग—इंगलिश

१—भारत का इतिहास—उसी के इतिहासकारों द्वारा—इलियट

८ वीं—सर एच० एम० इलियट और प्रो० डाउसन। ग्रन्थ में अनुवाद की कुछ अशुद्धियाँ हैं। कहीं-कहीं पर व्यक्ति-विशेष नाम ग़लत पढ़ लिये गये हैं। उदाहरणार्थ राम नारायण का राम हुसैन और राजा युगुल किशोर का राजा जगत किशोर। (देखो जिल्द VIII पृ० ११८)

२—उन्नाव का दिनाङ्क-गत-वृत्तान्त—चार्ल्स ऐल्फ्रेड इलियट द्वारा रचित, इलाहाबाद में १८६२ ई० में प्रकाशित, फ़ारसी उद्भव ग्रन्थों पर आधारित। उपयोगी।

३—भारत का व्यापक इतिहास, जिल्द प्रथम (१८७८ ई०)—एच० बिवरिज द्वारा रचित। सआदत खाँ का केवल नाम-मात्र उल्लेख; सफ़दर जंग पर अर्ध पृष्ठ।

४—भारत का इतिहास—षष्ठ संस्करण (१८७८ ई०)—इसके संशोधन की आवश्यकता है।

५—रायबरेली जिले की मुख्य राजपूत जातियों के पारिवारिक इतिहास पर वार्ता—डब्ल्यु० सी० बेनेट सी० एम० द्वारा रचित, अवध राजकीय प्रेस, लखनऊ में मुद्रित (१८७० ई०)। उपयोगी।

६—अवध का सारा—लेखक एच० सी० इर्विन बी०ए० (ऑक्सन) (१८८० ई०)। सआदत खाँ और सफ़दर जंग का केवल संक्षिप्त वृत्तान्त देता है और इसमें बहुत सी अशुद्धियाँ हैं।

७—अन्तिम मुग़ल—विलियम इर्विन कृत, सर जदुनाथ सरकार द्वारा सम्पादित। मराठा विषयों को छोड़ कर मूल्यवान् अप्रधान प्रमाण ग्रन्थ।

८—फ़र्रुख़ाबाद के बंगश नवाब—विलियम इर्विन द्वारा—१८७८ और १८७९ ई० के ज० ए-सु-बं० में। विषय पर पूर्णतम और उत्तम। कुछ स्थलों पर केवल पठान उद्भव ग्रन्थों पर आधारित और इस कारण से एक पक्षीय।

९—अवध पर लेख—१८८१ ई० के कलकत्ता रिव्यू में सर हेनरी लारेन्स द्वारा लिखित। उपयोगी।

१०—मुग़ल साम्राज्य का पतन, जिल्द प्रथम—सर जदुनाथ सरकार कृत। जब मेरी पुस्तक छापाखाने में थी, इसका प्रथम प्रकाशन हुआ। विषय पर सर्वाधिक उत्तम ग्रन्थ।

उपरिलिखित पुस्तकों के अतिरिक्त मैंने इम्पीरियल और ज़िला गज़ेटियरों का और पुराने अवध गज़ेटियरों का भी अध्ययन किया है।

प्रति इञ्च ४ मील के परिमाण वाले इम्पीरियल सर्वे आव् इण्डिया के विवरणात्मक नक्शों का भी मैंने उपयोग किया है। मेरी पुस्तक में सब दिनांक नयी शैली में हैं। स्वामी कन्नु पिल्लाई के भारतीय ऐफेमेरिस में परिवर्त्त चक्रों का मैंने अनुसरण किया है।

सहायक पुस्तक सूची में प्रयुक्त संक्षेप :—

ए-सु-बं०—बंगाल की एशियाटिक सुसाइटी।

म० ब० पु०—महाराजा बनारस पुस्तकालय।

पू० सा० पु० बां० प०—पूर्वीय सार्वजनिक पुस्तकालय, बांकीपुर, पटना।

वि० पु० उ०—विक्टोरिया पुस्तकालय, उदयपुर।

सरकार—सर जदुनाथ सरकार का पुस्तकालय।

अनुक्रमणिका

अ

क

ख

ग

च

छ

ज

ड

त

द

न

प

फ

ब

भ

म

य

र

'अवध के प्रथम दो नवाब' पर सम्मतियाँ

(सआदतखाँ और सफ़दरजंग १७०८—१७५४)

१—"इस वंश के अभ्युदय का समालोचक इतिहास लिखने में डा० आशीर्वादीलाल की पुस्तक प्रथम प्रयास है और इस पुस्तक ने श्रेष्ठता का उच्च स्तर प्राप्त कर लिया है। समस्त प्राप्य उद्गत ग्रन्थों का उपयोग किया गया है और फारसी के इतिहासों और पत्रों के मौलिक स्रोतों से उन्होंने पूरा लाभ उठाया है। परिणाम स्वरूप यह वैज्ञानिक इतिहास है जिसको बहुत समय तक विद्वान् विशिष्ट प्रमाण ग्रन्थ मानेंगे।....

"इस नवयुवक लेखक की जिस बात की सर्वाधिक प्रशंसा मैं करता हूँ, वह उसकी निष्पक्ष वृत्ति है। वह जीवनी लेखक के सर्व साधारण दोष—ग्रन्थ नायक पूजा—से मुक्त है...."डाक्टर' की उपाधि प्राप्त करने के उद्देश्य से लिखी हुई पुस्तकों में यह पुस्तक श्रेष्ठता की पराकाष्ठा को प्राप्त है।"

आमुख] —सर जदुनाथ सरकार।

२—"उस समय के इतिहास के रूप में यह प्रबन्ध मूल्यवान् देन है।" सितम्बर १९३२।

"मुझे विश्वास है कि भारतीय इतिहास के विद्यार्थी इस अति सावधान पुस्तक का आदर करेंगे। यह एक प्राचीन अभाव की पूर्ति करती है और मैं बहुत खुशी से इस स्कूल के बी० ए० ऑनर्स के विद्यार्थियों के लिए इस पुस्तक की सिफारिश करूँगा। (प्राच्य अध्ययन का स्कूल, लन्दन विश्वविद्यालय)।

२६ अगस्त १९३३ —सर ई० डेनिसन रौस।

३—"मैंने बहुत रुचि से इस पुस्तक को पढ़ा है। मैं इसे प्रशंसनीय ग्रन्थ और भारतीय इतिहास के प्रति मूल्यवान् देन मानता हूँ। सहायक पुस्तक सूची से मैं विशेष कर प्रसन्न हुआ जो यह प्रकट करती है कि आपने समकालीन प्रमाण ग्रन्थों पर कितना पूरा अधिकार प्राप्त कर लिया है और ग्रन्थ स्वयं यह सिद्ध करता है कि कितनी निपुणता से और निष्पक्षता से आपने उनका उपयोग किया है।"

—सर विलियम फ़ास्टर।

४—"....कार्य सावधानी से और शुद्ध भाव से किया गया है।"

—'बंगाल भूत और वर्तमान' में सर इवन काटन।

५—"यह पुस्तक मुझे बहुत आशापूर्ण मालूम होती है। आपने ऐतिहासिक प्रमाण के मुख्य नियमों पर अधिकार प्राप्त कर लिया है और आपके द्वारा समालोचन सामग्री का उपयोग सावधानी और विवेक प्रकट करता है।"

—प्रो० रशब्रुक विलियम।

६—"मुझे निश्चय है कि भारतीय इतिहास के समस्त विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक बहुत उपयोगी होगी। आरम्भिक और अब तक अज्ञात सामग्री के आधार पर अवध के इतिहास का सावधान अनुसन्धान अवश्य मूल्यवान् होगा।"

—प्रो० पी० ई० राबर्टस।

७—"यह बहुत योग्य, सुलिखित पुस्तक है और तत्कालीन इतिहास के हमारे ज्ञान में विच्छेद की पूर्ति करती है।"

—प्रो० एच० जी० रालिन्सन।

८—"इस ग्रन्थ का आधार उच्च स्तर का मौलिक अनुसन्धान है। पाठ्य विषय का रचना-क्रम और व्यक्तियों और घटनाओं पर निर्णय ग्राह्य और सारगर्भित है।"

—सर शफात अहमदखाँ।

९—"अवध के प्रथम दो नवाबों के चरितों का पूर्ण और प्रमीणीकृत वृत्तान्त प्रकाशित कर प्रो० श्रीवास्तव ने भारतीय इतिहास की महती सेवा की है....अनेक सन्देहास्पद विषयों और उपघटनाओं को यथार्थता और निष्पक्षता से स्पष्ट करने में वह समर्थ हुए हैं।....प्रो० श्रीवास्तव का परिश्रम निश्चय ही अमूल्य सिद्ध होगा।"

—'माडर्न रिव्यू' में आर० बी० जी० एस० सरदेसाई।

१०—"यह कहा जा सकता है कि पुस्तक का आकस्मिक अध्ययन भी लेखक की....गम्भीर विद्वत्ता और धीर परिश्रमशीलता को प्रकट करता है। वास्तव में विषय पर इतना उत्कृष्ट अधिकार, अनुपात का इतना और इतना समालोचक सामर्थ्य और ऐसा वास्तविक ऐतिहासिक भाव—उसने प्रकट किया है कि उसकी सर्व प्रथम कृति विषय पर प्रमाण-ग्रन्थ की स्थिति को प्राप्त हो गई है।"

—'हिन्दुस्तान टाइम्स'—२ अक्टूबर १९३३।

११—"मालूम होता है कि डा० श्रीवास्तव ने परिश्रमपूर्वक उस समय के फारसी इतिहास ग्रन्थों का अध्ययन किया है। अवध के प्रान्त का वृत्तान्त और प्रान्त के बड़े सामन्तों की शक्ति को दमन करने का नवाबों का प्रयत्न रुचिकर है। जनता की दशा और प्रशासन पर उसका अन्तिम अध्याय सर्वाधिक रुचिकर है।"

—'टाइम्स' का साहित्यिक परिशिष्ट, मार्च ८, १६३४।

१२—"सग्रादत खाँ और बुर्हानुल्मुल्क, उसके भांजे सफदरजंग का यह श्रेष्ठ वृत्तान्त है। लेखक ने विख्यात-सामग्री पर ही परिश्रम नहीं किया है, वरन् उसने नये उद्धृत ग्रन्थों की भी खोज की है—जैसे मन्सूरुलमक्तूबात, दोनों नवाबों की पत्र-पुस्तिका और सर जदुनाथ सरकार की अप्रकाशित पुस्तकों का उपयोग करने की अनुमति उसको प्राप्त है। इस प्रकार वह इस में समर्थ हुआ है कि पूर्व लेखकों के वृत्तान्तों में अनेक विवरणों को वह शुद्ध कर सके और भारत में १७२० से १७५४ तक आधिपत्य के लिए जटिल संघर्षों में मुख्य नायकों के उद्देश्यों की अधिक विस्तार से वह व्याख्या कर सके। १७५१ में बंगश पठानों के विरुद्ध मराठों को अपनी सहायता के लिए आमन्त्रित करने का सफ़दर जंग के कार्य का उसका विश्लेषण विशेष रूप से तीक्ष्ण है। राजनैतिक प्रगतियों के वृत्तान्त के साथ-साथ उसने प्रशासनीय उपायों और जनता की दशा का भी वर्णन किया है। समालोचक सहायक-पुस्तक-परिचय पुस्तक के मूल्य को और भी बढ़ा देता है।"

—रौयल एशियाटिक सोसाइटी के जर्नल में
रिचर्ड बर्न—लन्दन, अक्तूबर १६३६।

शुजाउद्दौला, प्रथम खण्ड (१७५३-१७६५)

कुछ सम्मतियाँ

संशोधित और द्वितीय संस्करण मुद्रणालय में

लगभग ३२५ पृष्ठ अष्टपत्रक मूल्य १२॥)

१—"मैंने सावधानी से इस पुस्तक का अध्ययन किया है और बहुमूल्य और सर्वथा पूर्ण अनुसन्धान पर आपको मुबारकबाद देता हूँ। मेरा विचार है कि आप समस्त पुस्तक में बहुत ही निष्पक्ष और दुराग्रह-रहित वृत्ति का पालन करते हैं।"

प्रो० पी० ई० राबर्ट्स, आक्सफ़र्ड।

२—"मेरी सम्मति में प्रो० श्रीवास्तव का 'शुजाउद्दौला का इतिहास' सुविज्ञापित और अवध के इतिहास पर विद्वत्तापूर्ण देन है। फ़ारसी, मराठी, फ्रेञ्च और इङ्गलिश में मौलिक हस्तलिखित उद्भव ग्रन्थों का समालोचक परीक्षण इसका आधार है। भारतीय विश्वविद्यालयों में विद्यार्थियों के लिए यह पुस्तक बहुमूल्यवान् सिद्ध होनी चाहिये।"

डा० सी० कालिन० डैविस, आक्सफ़र्ड।

३—"फ़ारसी, मराठी, हिन्दी, इङ्गलिश और फ्रेञ्च में विद्यमान अति-विस्तृत भिन्न सामग्री पर लेखक का अधिकार अत्यन्त आश्चर्यकारी है। समस्त प्राप्य उद्भव ग्रन्थों का सफल प्रयोग और उनसे चलित राजनैतिक विकासों की व्याख्या का निष्कर्ष अतिविशाल कार्य था। लेखक ने इससे भी बढ़कर कार्य किया है। जो बहुत समय से रणों और अवरोधों के अरोचक और शुष्क विवरण माने जाते थे, लेखक ने उनको आकर्षक कथा-प्रबन्ध में परिवर्तित कर दिया है।"

आर० बी० जी० एस० सरदेसाई,
१६ अप्रैल १९४० के टाइम्स आफ् इण्डिया में।

४—"प्रकाशित और अप्रकाशित सामग्री से, जो भिन्न-भिन्न भाषाओं—फ़ारसी, मराठी, फ्रेञ्च, इङ्गलिश और उर्दू—में मुरक्षित है, बहु विवरणों सहित शुजा के चरित्र के इन रुचिकारक तथ्यों का

अनुसन्धान किया गया है। लेखक विशेष प्रशंसा का पात्र है कि उसने विशिष्ट स्पष्टता से राजनैतिक संयोग और संघर्ष की सदैव चलायमान स्थितियों में शुजा की रीति के आवर्तनों और प्रत्यावर्तनों का अनुसन्धान किया है।

"लेखक द्वारा घटनाओं का आख्यान अद्भुत रूप से स्पष्टवादी है। उसने यह प्रयत्न नहीं किया है कि अपने प्रतिपादित विषय के नायक को निर्लेप या आदर्श सिद्ध करे। नवाब के समस्त कार्यों का—सुन्दर और असुन्दर—वर्णन पक्षपात व आग्रह रहित है। वास्तव में यह पुस्तक अथक अनुसन्धान का परिणाम है और सब विद्यार्थी, विशेषकर अवध के इतिहास के, डा० श्रीवास्तव के प्रति कृतज्ञ और ऋणी हैं।"

'माडर्न रिव्यु', अगस्त १६४०।

५—"यह पुस्तक ठोस योग्यता की है और बहुत बड़ी सामग्री का, जिसके गुण बहुत भिन्न-भिन्न हैं, शान्त विश्लेषण है।

"बहुत निपुणता और विवेक से आपने इस बहुत कठिन समय की उलझी हुई गुत्थी को सुलझा दिया है और इस स्थायी अनुसन्धान पर मैं आपको हार्दिक धन्यवाद देता हूँ।"

सर शफ़ात अहमदखाँ।

६—"मेरा विचार है कि अवध के इतिहास में आपकी खोज अत्यधिक मूल्यवान् और महत्वशाली है और मैं यह देखकर प्रसन्न हूँ कि इस रुचिकारक काल का आखिरकार उचित अध्ययन हो रहा है।"

प्रो० जे० सी० पोवेल प्राइस्।

७—"वर्षों के कठोर परिश्रम का पुरस्कार उच्च सफलता के रूप में प्राप्त हुआ है। भारतीय इतिहास के एक अन्धकारमय काल को यह पुस्तक प्रकाश में लाई है। कहीं कहीं पर सम्भव हो सकता है इसकी पूर्ति की आवश्यकता हो, परन्तु ग्रन्थ का स्थान जल्दी छीना नहीं जा सकता है, क्योंकि प्राप्त सामग्री का उत्तम उपयोग किया गया है।"

—डा० का० रं० कानूनगो।

८—हस्तलिखित और अन्य भाषाओं में साधारण लेखों और अन्य पुस्तकों के अतिरिक्त मराठी, फारसी और फ्रेंच सामग्री को सम्मिलित कर, प्रमाणित पत्रों से विस्तृत आधार पर पुस्तक की सुरचना की गई है। अनुचित निन्दा से शुजाउद्दौला के चरित्र और कार्यों के सुविदित स्वरूप

की धारा इस पुस्तक के सामान्य वर्णन में प्रवाहित है, जिसकी सावधान विद्यार्थी के लिए अत्यधिक महत्वशाली शिक्षा है—मर्मभेदी पानीपत के अभियान में नवाब के भाग की विशेष रूप से स्पष्ट और शिक्षाप्रद व्याख्या।"

भारतीय इतिहास पत्रिका दिसम्बर १९३९ में
राव बहादुर प्रो० सी० एस० श्रीनिवासाचार्य।

९—"प्रो० श्रीवास्तव का यह कार्य सराहनीय है कि वह अवध का इतिहास अविरत लिख रहे हैं, जिसका आरम्भ उन्होंने 'अवध के दो नवाब' नामक पुस्तक से किया। इस पुस्तक में शुजाउद्दौला की राज्यपाली के प्रथम ११ वर्षों का वर्णन है। अपनी पूर्व पुस्तक के अनुसार उन्होंने ने नवीन सामग्री का श्रेष्ठ उपयोग किया है, विशेष कर उसका जो मराठी लेखों के प्रकाशनों में प्राप्य है और जिनसे फारसी ग्रन्थों की पूर्ति और शुद्धि होती है। अवध के दरबार में मराठा पत्र लेखकों के समाचार पत्र घटनाओं का उनके घटित होते समय वर्णन करते हैं और स्मरणों की अपेक्षा प्रायः उत्तम प्रमाण हैं। इङ्गलिश और फ्रेञ्च पुस्तकों की भी परीक्षा की गई है।

"अपने प्रारम्भिक जीवन में शुजाउद्दौला का चरित्र कदापि प्रशंसनीय नहीं था। लेखक इसका स्पष्ट वर्णन करता है और यह तर्क करने में युक्तियुक्त प्रतीत होता है कि बंगाल में अङ्गरेजों का यह भय आधार-रहित था कि १७६१ में नवाब विहार पर आक्रमण करना चाहता था। दो वर्ष आगे चलकर जब कि बादशाह उसके साथ हो गया और जब पटना के जनसंहार के बाद मीरकासिम भाग गया, उसकी महत्वाकांक्षा बढ़ गई क्योंकि बंगाल से कर के शेष धन को प्राप्त करने का अब अवसर था जो नाममात्र को बादशाह को दिया जाने को था, परन्तु जो वास्तव में नवाब अपने पास रख लेता। आक्रमण और उसकी असफलता का आख्यान रुचिकारक एवं विवरण पूर्ण है, परन्तु इस पर कथा समाप्त हो जाती है जब १७६५ की आरम्भिक ग्रीष्म में उसके मराठा मित्र मल्हार राव की पराजय हुई और जब शुजाउद्दौला ने अंग्रेजों के सामने झुक जाने का निश्चय कर लिया।"

लन्दन की रौयल एशियाटिक सोसायटी की पत्रिका में
सर रिचर्ड बर्न—१९४१, भाग २।

शुजाउद्दौला, द्वितीय खण्ड (१७६५-१७७५)

कुछ सम्मतियाँ

पृष्ठ संख्या ४२४+१६ अष्ट पृष्ठी।

१—"इस प्रबन्ध के लेखक ने किसी भी प्राप्य उद्धरण ग्रन्थ को अनुपयोगित नहीं छोड़ा है, और भारत सरकार के अप्रकाशित लेखों की राशि का उपयोग करने में उसने अलौकिक परिश्रमशीलता और यथार्थता के प्रति प्रेम प्रकट किया है और इस प्रकार सूक्ष्म से सूक्ष्म प्रत्येक विषय पर उसने अपने को प्रमाण से सुरक्षित कर लिया है, जब उसने इस विषय पर स्ट्रैची, फ़ारेस्ट और डेवीस सदृश प्रसिद्ध पूर्व लेखकों का प्रतिवाद व समर्थन किया है। साधक सावधानी, जिसके द्वारा अप्रकाशित इङ्गलिश लेखों और हस्तलिखित और फारसी ग्रन्थों से (जो प्रायः दुर्वाच्य हैं) उसने प्रत्येक विवरण को संकलित किया है, यह उद्योगशील अनुसन्धान में उसकी अद्भुत क्षमता को और सत्य की खोज में उसके शुद्धभाव को सिद्ध करती है।

"इस गुण से भी अधिक मूल्यवान् लेखक की विवेकपूर्ण निष्पक्षता है। उसने उस लोभ का सफल प्रतिरोध किया है जिसके शिकार ऐतिहासिक जीवनियों के बहुत से लेखक हो जाते हैं, जब वे मैकाले के प्रखर शब्दों में 'अपने को परतन्त्र सामन्त मान लेते हैं, जिसका कर्तव्य है कि विपत्ति में अपने अधिपति (अपने नायक) को प्रत्येक सहायता दें'। शुजा के दुर्व्यसनों और अवगुणों का वर्णन करने में और अन्य आरोपों पर ब्रिटिश लेखकों द्वारा अन्यायपूर्ण निन्दा पर उसकी रक्षा करने में डा० श्रीवास्तव बिलकुल स्पष्ट हैं। शुजा के चरित्रांकण के अन्तिम भाग की विवेकपूर्ण कठोरता और खरी हुई भाषा भारतीय इतिहास के अन्य लेखकों के लिए आदर्श रूप होनी चाहिए।

"विशेषकर तात्कालिक कष्ट कारक कूटनीति के, समाज की दशा के और सर्व विभाग सहित प्रशासनीय तन्त्र के क्षेत्रों में हमारे ज्ञान की प्रशंसनीय वृद्धि इस प्रबन्ध से होती है। इस अन्तिम भाग पर—अध्याय ११-२४, पृष्ठ

३१२-४०१—लगभग एक चौथाई पुस्तक लिखी गई है और यह भाग सिद्ध करता है कि ऐतिहासिक पट्टकार की अपेक्षा डा० श्रीवास्तव अधिक शोभनीय और भिन्न गुण सम्पन्न हैं।

"पुस्तक के कुछ कष्ट-वाक्य हैं, परन्तु लेख की शैली स्पष्टतया इस तथ्य पर निर्णीत है कि बर्क और शेरिडन के समय में वाद-प्रतिवादपूर्ण विषय पर वह विवश था कि साहित्यिक सौन्दर्य की बलि देकर भी वह युक्तियुक्त और सविस्तार लेख प्रमाणयुक्त सविवक निर्णय दे।"

सर जदुनाथ सरकार।

२—"सर जदुनाथ के इङ्गलिश भाषा पर अधिकार को छोड़कर, यथार्थता और पूर्णता में, विवरणों की अधिकता में, और प्रतिपादन की कला में डा० श्रीवास्तव का 'शुजाउद्दौला' शायद सर जदुनाथ सरकार के 'शिवाजी' का निकटतम सनिकर्ष है। तथापि डा०आशीर्वादीलाल की द्रुतगामी ऐतिहासिक गद्य अपना ही सौन्दर्य और प्रवाह रखती है।

"प्रस्तुत पुस्तक के प्रकाशन पर लेखक हमारे धन्यवाद का पात्र है। इसके द्वारा भारतीय इतिहास के क्षेत्र में अनुसन्धान-कर्त्ताओं के अग्रदल में उनका प्रवेश हो गया है। बहुत से वृद्ध, अनुभवी विद्वान् यद्यपि इस समय रचना-शून्य पीछे रह गये हैं।"

डा० का० र० कानूनगो।

३—अवध के तीन नवाबों के अपने तृतीय भाग को प्रकाशित कर डा० श्रीवास्तव ने भारतीय इतिहास में बहुत महत्व के वृहद्काय उद्योग को पूर्ण कर दिया है। इस खण्ड में शुजाउद्दौला के राज्यकाल का उत्तरार्ध है (१७६५-१७७५) और यह इस जीवनदायी कहानी को प्रस्तुत करता है कि भारत के पूर्वीय प्रान्त किस प्रकार ब्रिटिश शासन में आ गये। स्वार्थी महत्त्वाकांक्षा द्वारा मार्गदर्शित सुदृढ़ आक्रमण की ब्रिटिश नीति का सूक्ष्म अनुसन्धान वर्षों के घोर परिश्रम के फलस्वरूप आविष्कृत नवीन प्रमाण पर किया गया है। ग्रन्थ का आरम्भ बंगाल की दीवानी के विख्यात पट्टे से होता है, जो क्लाइव ने चतुरता से बादशाह से प्राप्त कर लिया और जिसके द्वारा समस्त भारत का भाग्य परिवर्तित हो गया। "अवध के भाग्य में लिखा था कि भारत में कम्पनी के कर्त्ताओं की मुख्य शिक्षण भूमि बने, जिन्होंने शुजाउद्दौला के सम्पर्क में आने के बाद भारतीय राज्यों के प्रति लगभग स्थायी नीति का विकास किया।" इस परिवर्तन

का स्पष्ट परिणाम यह हुआ कि बादशाह शाहआलम ने ब्रिटिश पक्ष का त्याग कर दिया और मराठों का संरक्षण प्राप्त करने की चेष्टा की। यह रोमाञ्चक अध्याय मौलिक और स्पष्टीकारक पत्र-व्यवहार के आधार पर पहिली बार इस पुस्तक में दृष्टिगोचर होता है। शुजा की योग्यता और चरित्र का निरूपण न्यायसंगत है।

"*अवध पर इस आख्यान के पढ़ता हुआ पाठक अन्य तीन नवाबों*—अर्थात् बंगाल, अर्काट और हैदराबाद के भाग्य पर विचार करने से अपने आप को रोक नहीं सकता और न नवाबों के विषय में दुःखद चिन्तन में ग्रस्त होने से। बादशाह के प्रति भक्ति-रत रहने के स्थान पर उन्होंने अपनी निष्ठा से हटना और आत्म-संरक्षण के लिए विदेशी सहायता ढूँढ़ना ग्राह्य समझा और इस प्रकार भारतीय महाद्वीप के राजनैतिक पतन को उन्होंने पूरा कर दिया।"

मार्च १९४७ के मद्रास रिव्यू में जी० एस० सरदेसाई।

४—"आपके अध्ययन की पूर्णता से और आपकी शैली से जिसके द्वारा आपने अपने तथ्यों की सुरचना की है और अपने परिणामों पर पहुँचे हैं, मैं बहुत प्रभावित हुआ हूँ। मैं इसको बहुत विद्वत्तापूर्ण ग्रन्थ समझता हूँ। आपने एक अज्ञात विषय पर पर्याप्त प्रकाश डाला है। वह काल जिसका आपने वर्णन किया है भारतीय इतिहास के लिए महत्वशाली है। आपकी पुस्तक आधुनिक भारतीय इतिहास के आरम्भ को समझने के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी।"

डा० आर० सी० मजूमदार, एम०ए०, पी-एच० डी०

५—"आपकी आश्चर्यकारी और विवेकपूर्ण यथार्थ विद्वत्ता के लिये, जो इन पुस्तकों से प्रकट होती है, मेरे पास प्रशंसा के अतिरिक्त कुछ नहीं है। इस प्रान्त में जो कुछ हम लोगों ने करनाटक के नवाबों के विषय में किया है, उससे बहुत ज्यादा आपने अकेले ही अवध के नवाबों के इतिहास के प्रति किया है।"

रावबहादुर प्रो० सी० एस० श्रीनिवासाचार्य।

६—"तत्व सम्बन्धी, समालोचक और व्यवस्था-क्रम की विचार-दृष्टियों से डॉ० श्रीवास्तव की पुस्तक, जिसमें १७६५ से १७७५ के समय का वर्णन है, महत्वशील है।

"ऐतिहासिक आख्यान के बाद शुजाउद्दौला के चरित्र का, उसके नागरिक और सैनिक प्रशासन का, और उस समय की समाज और संस्कृति का विस्तृत वृत्तान्त दिया गया है। उस शासक के समय में अवध स्वतन्त्र था, परन्तु उसके उत्तराधिकारी के समय में नहीं।

"सहायक ग्रन्थ-परिचय सम्पूर्ण और आधुनिकतम है। अनुक्रमणिका विश्लेषणात्मक और पर्याप्त है और नक्शा विशुद्ध और आकर्षक है।"

'हिन्दू' मद्रास, दिसम्बर ३०, १९५५।

दिल्ली सल्तनत (७११-१५२६ ई०)

(जिसमें सिन्ध पर अरब आक्रमण शामिल है)

पूर्णतया पुनरीक्षित और संशोधित द्वितीय संस्करण

सम्मतियाँ

मूल्य १०)

१—"आपका दिल्ली सल्तनत का इतिहास उपयोगी है और साधारण पाठ्य पुस्तकों की अपेक्षा कहीं अधिक सुपाठ्य है। कहीं पर भी यह बहिःस्थ नहीं है, और इसके अतिरिक्त उसमें बहुत से विषयों की ओर (युद्ध और परदेशापहरण को छोड़कर) ध्यान दिया गया है जिनकी साधारणतया उपेक्षा की जाती है।"

—सर यदुनाथ सरकार, के० टी०, सी० आई० ई०, डी० लिट्०।

२—"अवध के नवाबों के इतिहास से सम्बन्धित उनकी पूर्व विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों में डा० आशीर्वादी लाल की नवीनतम रचना 'दिल्ली सल्तनत' स्वागतार्ह सकलन है..................बहुत से प्रसिद्ध व्यक्तियों को जिन्होंने भारत के भूतकालीन परम्परागत भाव को मूलतः परिवर्तित कर दिया, आधुनिक-तम जीवन-गाथायें और उनके समस्त मुख्य लक्षण छोटी सी परिधि में अधिकार पूर्ण संक्षेप रूप में इस पुस्तक में दिये गये हैं। गज़नी के सुल्तानों से आरम्भित और लोदियों पर समाप्त समस्त भिन्न-भिन्न राजवंशों की, जिन सब में भिन्न अंशों में वीरता, दुर्दिनता और राजनीतिज्ञता के प्रसिद्ध व्यक्ति हैं, यह विवेचना करता है।

"दिल्ली सल्तनत वास्तव में विशेषज्ञों और सामान्य पाठकों—दोनों के लिए—आधार-पुस्तक है और स्टैनले लेनपूल के मध्यकालीन भारत की अपेक्षा उत्तम है जो लगभग अर्धशताब्दी पूर्व प्रकाशित हुई थी और तब से इस समय तक ऐतिहासिक अनुसन्धान ने अपनी सब शाखाओं में बहुत अधिक प्रगति कर ली है। 'सल्तनत' का एक और विशेष लक्षण एक दर्जन निर्देशक नक्शे हैं जो परिश्रमसे तैयार किये गये हैं और जिनके अभाव के कारण विद्यार्थियों को समुचित अध्ययन में बहुत बड़ा विघ्न उपस्थित

होता था। समस्त कालों में इस अति अन्धकारमय काल के अन्धकार में उनको अपना रास्ता टटोलना ही पड़ता था। अन्त में समालोचना पूर्ण सहायक पुस्तक-परिचय है और प्रत्येक अध्याय में विशेष पठन के लिए पुस्तकों और प्रमाणों का वर्णन है। इस प्रकार इन पाँच शताब्दियों का इतिहास क्रिया रूप से इस लघु भार पुस्तक में नवनिर्मित हुआ है। इस समस्त कृति का अधिकतम भाग, जिसका निकटतम सम्बन्ध *वर्तमान आवश्यकताओं* से है, इस्लामी राज्य की प्रकृति का सुस्पष्ट विवेचन है, जो लेखक ने पुस्तक के अन्त में अध्याय १६ से १८ तक दिया है।"

—'माडर्न रिव्यू' (जनवरी १६५२) में
इतिहासकार जी० एम० सर देसाई।

३—"यह विश्वास से कहा जा सकता है कि डा० आशीर्वादी लाल की पुस्तक इस काल के इतिहास की विभावना और निरूपण में विशेष उन्नति का परिचय देती है।

"अपने विषय पर बहुत उपयोगी और प्रमाणिक पाठ्य पुस्तक के रूप में यह हमारे कालेजों और विश्वविद्यालयों में विस्तीर्ण मान्यता की पात्र है।"

—डा० का० रं० कानूनगो, एम० ए०, पी-एच० डी०
इतिहास विभागाध्यक्ष, लखनऊ विश्वविद्यालय।

४—"बहुत आनन्द और लाभ से मैंने आपकी पुस्तक का अध्ययन किया है। इसमें मध्यकालीन भारतीय इतिहास का लघु परिधि में श्रेष्ठ अवलोकन है। मुझे विशेषकर आपकी सुस्पष्ट शैली और माध्य सामग्री का समालोचक प्रतिपादन पसन्द है। निर्देशक नक्शों और सहायक पुस्तक परिचय से पुस्तक का मूल्य और भी बढ़ जाता है। मुझे सन्देह नहीं है कि यह पुस्तक समान रूप से विद्यार्थियों, विद्वानों और सामान्य पाठकों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।"

—डा० र० श० त्रिपाठी, एम० ए०, पी-एच० डी० (लन्दन),
इतिहास विभागाध्यक्ष, बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय।

५—"भारत के मध्यकालीन इतिहास की द्वितीय कला में उसकी पुरावृत्त कथा का आपकी पुस्तक श्रेष्ठ परिचय है। यह सुसंगठित, सुस्पष्ट और अपने विचारों में सन्तुलित है। यह बहुत रुचिकर शैली में लिखी

गई है और हमारे बी० ए० के विद्यार्थियों के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होगी। दिये हुए नक्शे बहुत अच्छी तरह तैयार किये गये हैं और प्रकाशन का अपूर्व उदाहरण है।"

—प्रो० कालीशंकर भटनागर, इतिहास विभागाध्यक्ष,
डी० एस० एस० डी० कालेज, कानपुर।

६—"डा० ए०एल० श्रीवास्तव कृत 'दिल्ली सल्तनत' मध्यकालीन भारतीय इतिहास का सुन्दरप्रद ग्रंथ है। ७११ से १५२६ई० के काल का यह श्रेष्ठतम अवलोकन है, जिसका आनन्द समान रूप से विशेषज्ञ और सामान्य पाठक लेंगे। कालेज के विद्यार्थियों के लिए यह बहुत उपयोगी होगी।"

—स्वर्गीय प्रो० जे० सी० तालुकदार,
इतिहास विभागाध्यक्ष, सेन्ट जान्स कालेज, आगरा।

७—"मैंने डा० श्रीवास्तव की 'दिल्ली सल्तनत' का बहुत आनन्द से अध्ययन किया है।"......इनकी पुस्तक कालेज और विश्वविद्यालयों के छात्रों के लिए ही नहीं वरन् साधारण पाठक जनता के लिए भी मूल्यवान् सिद्ध होनी चाहिये।"......मौलिक उद्गम ग्रन्थों के स्वतन्त्र अध्ययन का यह परिणाम है। भिन्न-भिन्न राजकालों का चित्रण करते हुए बारह नक्शे पुस्तक का अद्भुत लक्षण हैं और इसके मूल्य को परिवर्धित करते हैं। प्रत्येक अध्याय के अन्त पर सहायक पुस्तक परिचय है जो बहुत उपयोगी होगा।"

—प्रो० एस० आर० राय, इस्लामी इतिहास भाषक,
कलकत्ता विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करण।

८—"......प्रो० श्रीवास्तव की मुख्य देन यह बल है जो वह उचित रूप से उन प्रभावों, भावों और अंगों पर देते हैं जिन्होंने भारतीय राजनैतिक और सांस्कृतिक संस्थाओं का रूपान्तर कर दिया। सामान्य भावों और प्रगतियों में मुख्य अंगों के रूप में वे भिन्न-भिन्न घटनाओं का वर्णन करते हैं। यह पुस्तक स्टैनले लेनपूल के 'मध्यकालीन भारत' से निश्चय ही उन्नत है जो लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व प्रकाशित हुई। ऐतिहासिक अनुसन्धान से, जिसने अपने सब विभागों में बहुत प्रगति कर ली है, यह पुस्तक पूरा लाभ उठाती है। पुस्तक के अन्तिम अध्यायों १६ से १८ में इस्लामी राज्य की प्रकृति का लेखक द्वारा सुस्पष्ट निरूपण बहुत मूल्यवान् है"......"

—भारतीय इतिहास पत्रिका (अप्रैल १९५४) में
के० ए० नीलकण्ठ शास्त्री।

९—"हमारे जनवरी '५१ के अंक में इस बहुत उपयोगी और विद्वत्ता पूर्ण पुस्तक के प्रथम संस्करण की सानुग्रह आलोचना की गई थी। इस पुस्तक के मूल्य और पठनीयता को सिद्ध करने के लिए तीन वर्षों में नवीन और उत्कृष्ट संस्करण की आवश्यकता मालूम पड़ने लगी। मुगल-पूर्व इतिहास पर हमारे कालिजों में प्रचलित पाठ्य-पुस्तकों की अपेक्षा इस पुस्तक में कई बातों में बहुत आवश्यक प्रगति हुई है। डा० आशीर्वादी-लाल की विद्वत्ता ने उनको हमारे अनुसन्धानकर्ताओं के बीच में सम्मान का स्थान प्राप्त करा दिया है और इस पुस्तक से उन्होंने अपने को सर्व-प्रिय, परन्तु सत्य इतिहास-लेखन का अधिकारी सिद्ध कर दिया है। उनके विचार-स्वातन्त्र्य के कारण लोक-प्रचलित वार्दों को मान्यता देने वालों से उनका संघर्ष होता है, परन्तु उनके तर्क पुस्तक में उपस्थित हैं। मुद्रण स्वच्छ और स्पष्ट है।"

—'माडर्न रिव्यू', (जून १९५४) में सर जदुनाथ सरकार।

१०—"फ़ारसी आदि भाषाओं में प्राप्य मूल-उद्भव-ग्रन्थों से सुपरिचित, समर्थ विद्वान् द्वारा लिखित यह पुस्तक, मुग़लों के आगम पूर्व ७११ से १५२६ ई० तक भारतीय इतिहास से सम्बन्ध रखती है। यद्यपि मुख्यतया विद्यार्थियों के हित के लिए यह पुस्तक लिखी गई है, तथापि यह समस्त इति-हासज्ञों के लिए बहुत उपयोगी है क्योंकि यह पुस्तक यह स्पष्ट कर देना चाहती है कि उस काल के भारत के मुसलमान शासक सर्वथा विदेशी थे, जिन्होंने केवल सैनिक बल पर देश को अपना दास बनाये रखा, और जिनको भारतीय जनता के जीवन, संस्कृति, सामाजिक और धार्मिक परम्पराओं से लेश-मात्र भी सहानुभूति न थी। परिणामस्वरूप जनता भी अपने शासकों के प्रति कदापि मित्रवत् आचरण न करती थी। बहुत व्यक्तियों को आश्चर्य है कि क्यों और कैसे भारत इसमें असफल रहा कि मुसलमानों को अपनी राजनैतिक और सामाजिक व्यवस्था में अन्तर्गत कर ले जैसा कि अपने इतिहास में अनेक बार अन्य विदेशियों को उसने कर लिया था। अतः लेखक के तर्क गम्भीर विचार के पात्र हैं, क्योंकि वे इस पहेली का सत्याभासी उत्तर प्रस्तुत करते हैं।"

—इण्डो-एशियन कल्चर (अप्रैल १९५४)।

११—"....इस पुस्तक का एक विशेष गुण यह है कि यद्यपि घटनाओं के लेख सम्बन्धी साधारण रूप-रेखा में लेखक परम्परा-गत वृत्तान्त का

अनुसरण करता है और बहुत सी नई बातें नहीं बनाता है, वह उन घटनाओं का उल्लेख करता है जिनके विषय में विद्वानों में मत-भेद रहा है और वह अपने विशेष परिणामों पर पहुँचता है......

'व्याख्या-पक्ष में पुस्तक अपनी उत्तम श्रेष्ठता का दिग्दर्शन कराती है।

"मुसलमान विद्वानों द्वारा प्रस्तुत एक अति असंगत अभिमान यह रहा है कि तुर्की शासन में हिन्दुओं की दशा केवल अच्छी ही नहीं थी परन्तु अपने ही देशी शासकों के दीर्घकालीन शासन की अपेक्षा वे तुर्की शासन काल में अधिक सुखी थे। इस अभिमान की परीक्षा कर श्री श्रीवास्तव ने स्वयं मुसलमान इतिहासकारों के प्रमाण देकर यह सिद्ध कर दिया है कि यह अभिमान निराधार है। और भी अनेक विवादास्पद विषय हैं जिन पर उनके निर्णय उनके विरोधियों और समालोचकों के निर्णयों से अधिक विश्वासप्रद हैं।"

—'हिन्दुस्तान टाइम्स' (जनवरी २४, १९५४)।

लेखक के अन्य ग्रन्थ

अङ्गरेजी में

			मूल्य
१—अवध के प्रथम दो नवाब	....	....	१२॥)
२—शुजाउद्दौला—प्रथम खण्ड (१७५४-१७६५) द्वितीय संस्करण	....	....	१२॥)
३—शुजाउद्दौला—द्वितीय खण्ड (१७६५-१७७५)			
४—दिल्ली सल्तनत ७१२-१५२६ (द्वितीय संस्करण—संशोधित और परिवर्धित)		....	१०)
५—मुग़ल साम्राज्य १५२६-१८०३ (द्वितीय संस्करण—संशोधित और परिवर्धित)	....	....	८)
६—शेरशाह और उसके उत्तराधिकारी	....	....	३।)

हिन्दी में

७—दिल्ली सल्तनत ७१२-१५२६	....	....	१०)
८—मुग़ल कालीन भारत—भाग १, १५२६-१६२७		....	५)
९—मुग़ल कालीन भारत—भाग २, १६२७-१६०३		....	५)
१०—भारतवर्ष का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास—भाग १, प्रारम्भ से १५२६ तक	....	....	६)
११—भारतवर्ष का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास—भाग २, १५२६ से १९५२ तक	....	....	६)
१२—संसार का इतिहास	....	....	२॥)
१३—अवध के प्रथम दो नवाब	....	....	१२॥)
१४—शुजाउद्दौला—प्रथम खण्ड १७५४-१७६५		....	
१५—शुजाउद्दौला—द्वितीय खण्ड १७६५-१७७५		....	

लेखक के अन्य ग्रन्थ

अङ्गरेजी में

			मूल्य
१—अवध के प्रथम दो नवाब	....	....	१२॥)
२—शुजाउद्दौला—प्रथम खण्ड (१७५४-१७६५) द्वितीय संस्करण	....	....	१२॥)
३—शुजाउद्दौला—द्वितीय खण्ड (१७६५-१७७५)			
४—दिल्ली सल्तनत ७१२-१५२६ (द्वितीय संस्करण—संशोधित और परिवर्धित)		....	१०)
५—मुगल साम्राज्य १५२६-१८०३ (द्वितीय संस्करण—संशोधित और परिवर्धित)	....	....	८)
६—शेरशाह और उसके उत्तराधिकारी		....	३।)

हिन्दी में

७—दिल्ली सल्तनत ७१२-१५२६	....	....	१०)
८—मुगल कालीन भारत—भाग १, १५२६-१६२७		....	५)
९—मुगल कालीन भारत—भाग २, १६२७-१८०३		....	५)
१०—भारतवर्ष का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास—भाग १, प्रारम्भ से १५२६ तक	....	....	६)
११—भारतवर्ष का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास—भाग २, १५२६ से १९५२ तक	....	....	६)
१२—संसार का इतिहास	....	....	२॥)
१३—अवध के प्रथम दो नवाब	....	....	१२॥)
१४—शुजाउद्दौला—प्रथम खण्ड १७५४-१७६५		....	
१५—शुजाउद्दौला—द्वितीय खण्ड १७६५-१७७५		....	